

५७७—५८४. संख्या

हिन्दी

विश्वकोष



s
ad



NCE



श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव,

सिद्धान्त-वारिधि, शब्दरत्नाकर, तत्त्वचिन्तामणि, एम, आर, ए, एस

तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्कलित।

पञ्चविंश भाग

THE

ENCYCLOPÆDIA INDICA

IN HINDI

VOL. XXV.

(हि—ह्वे ल)

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

NAGENDRANATH VASU, Prāchyavidyāmahārnava,

Siddhānta-vāridhi, Sabda-ratnâkara, Tattva-chintāmani, M. R. A. S

Compiler of the Bengali Encyclopædia ; the late Editor of Banglya Sâhitya Parishad
and Kâyastha Patrikâ ; author of Castes & Sects of Bengal, Mayura-
bhanja Archæological Survey Reports and Modern Buddhism ;
Hony. Archæological Secretary, Indian Research Society,
Associate Member of the Asiatic
Society of Bengal &c. &c. &c.



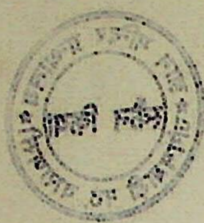
Printed by A. C. Sen, at the Visvakosha Press.
Published by

Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu

9, Visvakosha Lane, Bagbazar Calcutta

1931.

इस अन्तिम खण्डका मूल्य ४) रु० और सजिल्दका ५)



हिन्दी
विश्वकोष

पञ्चविंश भाग

हि (सं० अव्य०) १ हेतु, कारण। २ अवधारण, निश्चय। ३ पादपूरण। श्लोकके पादपूरणस्थलमें च, वा, तु, हि इन चार शब्दोंका प्रयोग होता है। ४ सम्भ्रम। ५ असूया। ६ शोक।

हि—हिन्दीकी एक पुरानी विभक्ति। इसका प्रयोग पहले तो सब कारकोंमें होता था, पर पीछे कर्म और सम्प्रदानमें ही (को के अर्थमें) रह गया।

पालीमें तृतीया और पंचमीकी विभक्तिके रूपमें 'हि' का व्यवहार मिलता है। पीछे प्राकृतोंमें सम्बंधके लिये भी विकल्पसे अपादानकी विभक्ति आने लगी और सब कारकोंका काम कभी कभी सम्बंधकी विभक्तिसे ही चलाया जाने लगा। 'रासो' आदिकी प्राचीन हिन्दीमें 'ह' रूपमें भी यह विभक्ति मिलती है। अपभ्रंशमें 'हो' और 'हे' रूप सम्बंध विभक्तिके मिलते हैं। यह 'हि' या 'ह' विभक्ति मालूम होता है, कि संस्कृतके 'सिस्' या 'भ्यस्'से निकली है।

हिंकरना (हिं० क्रि०) घोड़ोंका बोलना, हिनहिनाना।

हिंगनबेर (हिं० पु०) इङ्गुदी वृक्ष, हिंगोट।

हिंगली (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका तम्बाकू।

हिंच (अ० पु०) आघात, चोट।

हिंडोरा (हिं० पु०) हिंडोला देखो।

हिंडोरी (हिं० स्त्री०) छोटा हिंडोला।

हिंडोल (हिं० पु०) १ हिंडोला। २ एक राग जो गान्धार स्वरकी सन्तान कहा गया है।

विशेष विवरण हिन्दोल शब्दमें देखो।

हिंडोला (हिं० पु०) १ नीचे ऊपर घूमनेवाला एक चक्कर, इसमें लोगोंके बैठनेके लिये छोटे छोटे मञ्च बने रहते हैं। २ पालना। ३ झूला।

हिंद (फा० पु०) भारतवर्ष, हिन्दुस्तान। हिन्द देखो।

हिंदवाना (फा० पु०) तरबूज, कलोंदा।

हिंदवी (फा० स्त्री०) हिन्द या भारतवर्षकी भाषा।

हिंदी (फा० वि०) १ भारतीय, हिन्दुस्तानका। (स्त्री०) २ भारतवर्षकी बोली, हिन्दुस्तानकी भाषा। ३ हिन्दुस्तानके उत्तरी या प्रधान भागकी भाषा।

विशेष विवरण हिन्दी भाषा शब्दमें देखो।

हिंदीरेंवद (फा० पु०) एक प्रकारका पौधा। यह हिमालयमें ११००० से १२००० फुटकी ऊंचाई तक उगता है। यह काश्मीर, लदाख, नेपाल, सिकिम और भूटानमें पाया

जाता है। इसका मूल औषधके काममें आता है। उसे चीनी रेंवद या रेवंदचीनी कहते हैं। इसका रंग भी मैला होता है और सुगन्ध भी कम होती है। परन्तु चीनी रेवंदकी जगह बाजारोंमें इसकी बराबर बिक्री होती है। चीनी जातिका पौधा तिब्बतके दक्षिणपूर्व भागमें तथा चीनके पश्चिमोत्तर भागमें होता है। उसका मूल क्राई-सोफेनिक एसिडके अंशके कारण पोसनेपर खूब पीला निकलता है। रेवंदका मूल औषधके काम आता है और पुष्ट, उदरशूलनाशक तथा कुछ रेचक होता है। यह आमातिसारमें उपकारी होता है, पर ग्रहणीमें नहीं।

हिंदुस्तान (फा० पु०) भारतवर्ष। भारतवर्ष देखो।

हिंदुस्तानी (फा० वि०) १ भारतवर्षका, हिन्दुस्तानसम्बन्धी। (पु०) २ भारतवासी। (स्त्री०) ३ हिन्दुस्तानकी भाषा।

हिंदुस्थान (फा० पु०) भारतवर्ष। भारतवर्ष देखो।

हिंदू (फा० पु०) हिन्दू देखो।

हिंदूपन (फा० पु०) हिन्दूका भाव या गुण।

हिंदोरना (हिं० क्रि०) पानीके समान पतली चीजमें हाथ या कोई चीज डाल कर इधर उधर घुमाना, फेंकना।

हिंदोस्तान—हिंदुस्तान देखो।

हिंवार (हिं० पु०) हिम, बर्फ।

हिंस (हिं० स्त्री०) घोड़ोंके बोलनेका शब्द, हिनहिनाहट।

हिंसक (सं० त्रि०) हिंस-ण्वुल्। १ हिंसाकर्त्ता, हत्यारा, घातक। भोक्ता, अनुमन्ता, संस्कर्त्ता, क्रेता, विक्रेता, वधकर्त्ता, उपहर्त्ता और घातयिता, यही आठ प्रकारके हिंसक हैं। ये अधम होते हैं। (काशीखण्ड) २ बुराई करनेवाला, हानि पहुंचानेवाला। (पु०) ३ हिंस्र पशु, खूंखार जानवर। ४ शत्रु, दुश्मन। ५ अथर्ववेदविद् ब्राह्मण, तान्त्रिक ब्राह्मण।

हिंसन (सं० पु०) १ जीवोंका वध करना, जान मारना। २ जीवोंको पीड़ा पहुंचाना, कष्ट देना। ३ बुराई करना, अनिष्ट करना। ४ द्वेष, ईर्षा।

हिंसनीय (सं० त्रि०) १ हिंसा करने योग्य। २ जिसकी हिंसा की जानेवाली हो।

हिंसा (सं० स्त्री०) हिंस-अ टाप्। १ हत्या, वध। यजुर्वेदने कहा है, कि "मा हिंसी" हिंसा मत करो। दर्शन और स्मृतिशास्त्रमें हिंसा पापजनक है या नहीं, इस विषयकी विशद आलोचना की गई है, पर यहां संक्षेपमें लिखा जाता है। जो व्यक्ति आत्मतृप्तिके लिये अर्थात् शरीरको मजबूत बनानेके लिये निरीह जीवोंका वध करते हैं वे इस लोकमें या परलोकमें कभी भी सुख नहीं पा सकते। प्राणिवध स्वर्गजनक नहीं है, इसलिये उनका वध नहीं करना चाहिये। क्या वैध, क्या अवैध सभी प्रकारकी हिंसा निन्दनीय है। मनुने कहा है, कि यज्ञार्थ मांसभोजनको दैवविधान और शरीरको पुष्टि आदिके लिये जो मांस भोजन किया जाता है उसे राक्षसोचित अनुष्ठान कहना होगा। (मनु ५।३१)

किसी किसीका कहना है, कि हिंसा मत करो, यह सामान्य विधि है। यज्ञमें पशुहिंसा करे, फिरसे विशेष कर कहनेके कारण यह विशेष विधि है। अतएव सामान्यतः हिंसा निषिद्ध होने पर भी विशेष विधिके अनुसार यज्ञमें हिंसा निषिद्ध नहीं है। दर्शनशास्त्रकारका कहना है, कि किसी भी प्राणीकी हिंसा न करे, यह सामान्य विधि सत्य है और अग्निषोम यज्ञमें पशुहिंसा करे, यह विशेष विधि है। शास्त्रीय नियमानुसार विशेष विधि सामान्य विधिका बाधक होने पर भी यहां वैसा नहीं होगा, क्योंकि विरोधस्थलमें ही पूर्वोक्त प्रकारका बाध्यबाधक भाव हुआ करता है। परस्पर विरोध नहीं होनेसे बाध्यबाधक भाव नहीं होता। यहां पूर्वोक्त दोनों श्रुतिमें कुछ भी विरोध नहीं है, इसलिये विशेष विधि द्वारा सामान्य विधि निषिद्ध हो नहीं सकती।

सांख्याचार्यने साबित कर दिखलाया है, कि वैध हिंसामें भी पाप नहीं होगा। पर हां, वे यह भी कहते हैं, कि वैदिक यज्ञ करनेसे जिस प्रकार प्रभूत पुण्यसञ्चय होता है, उसी प्रकार वह यज्ञानुष्ठान हिंसासाध्य होनेके कारण प्रभूत पुण्यके साथ साथ यत्किञ्चित् पापका भी सञ्चय होता है। अतएव यज्ञानुष्ठानकर्त्ता जब स्वोपार्जित पुण्यराशिके फलस्वरूप स्वर्गसुखका उपभोग करेंगे तब हिंसाजन्य पापके फलस्वरूप कुछ दुःखका भी उन्हें उपयोग करना ही होगा। परन्तु स्वर्गवासी पुरुष सुखकी मोहनी शक्तिके प्रभावसे ऐसे मुग्ध हो जाते हैं, कि उस दुःखकणाको दुःख बिलकुल नहीं समझते, आसानीसे उसे सहन कर लेते हैं।

श्राद्धविवेकटीकामें वृद्धमनुवचनमें लिखा है, कि ब्राह्मण वैध हिंसा भी न करें, क्योंकि वे सात्त्विक अर्थात् सत्त्वगुणप्रधान हैं । इससे यह साबित हुआ, कि सात्त्विक व्यक्ति वैधहिंसा न करें, राजसिक और तामसिकगण वैधहिंसा कर सकते हैं ।

वैधहिंसा और बलिदान देखो ।

२ हानि पहुंचाना, अनिष्ट करना । हिंसा तीन प्रकारसे हो सकती है, मनसा, वाचा और कर्मणा । पुराणोंमें हिंसा लोभकी कन्या और अधर्मकी भार्या कही गई है। जैन शास्त्रानुसार हिंसा चार प्रकारकी होती है—आकुट्टी हिंसा, दर्प-हिंसा, प्रमाद-हिंसा और कल्पहिंसा । ३ चौरादि कर्म, चोरी आदि करना । ४ द्वेष । ५ ईर्षा ।

हिंसाकर्म (सं० क्ली०) १ दूसरेका अनिष्ट करनेके लिये मारण, उच्चाटन, पुरश्चरण आदि तान्त्रिक प्रयोग । २ वध या पीड़ा पहुंचानेका कर्म, मारने या सतानेका काम ।

हिंसात्मक (सं० त्रि०) जिसमें हिंसा हो, हिंसासे युक्त ।

हिंसारु (सं० पु०) हिंस-आरु । १ व्याघ्र, बाघ । २ हिंस्र पशु, खूंखार जानवर ।

हिंसालु (सं० त्रि०) हिंस-आलु । १ वधशील, मारनेके योग्य । २ घातक, मारनेवाला ।

हिंसालुक (सं० पु०) १ हिंसाशील, कुत्ता । २ हननशील, घातक ।

हिंसित (सं० त्रि०) हिंस-क्त । १ हिंसाप्राप्त । २ हत, नष्ट ।

हिंसितव्य (सं० त्रि०) हिंसा करने योग्य या जिसकी हिंसा करनी हो ।

हिंसीर (सं० पु०) हिंस (हिंसेरीरनीरचौ । उण् ५।१८) इति ईरन् । १ व्याघ्र, बाघ । (त्रि०) २ खल, दुष्ट, सतानेवाला ।

हिंस्य (सं० पु०) १ हिंसाके योग्य । २ जिसकी हिंसा होनेवाली हो ।

हिंस्र (सं० त्रि०) हिंस (नमिकम्पीति । पा ३।२।१६७) इति र । १ हिंसाशील, घातक । (पु०) २ हिंसाकारक जन्तु, खूंखार जानवर । ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि हिंस्र पशुकी हिंसा करनेमें कोई पाप नहीं । ३ भीमसेन । ४ घोर । ५ हर ।

हिंस्रक (सं० पु०) १ हिंस्रपशु, खूंखार जानवर । (त्रि०) २ हिंसाशील, हिंसा करनेवाला ।

हिंस्रपशु (सं० पु०) हिंस्रजन्तु, खूंखार जानवर ।

हिंस्रा (सं० स्त्री०) हिंस्र-टाप् । १ जटामांसी । २ कण्टकारी, भटकटैया । ३ शिरा । ४ कण्टकपालीलता । ५ गवेधुका ।

हिआ (हिं० पु०) १ हृदय । २ छाती ।

हिआव (हिं० पु०) साहस, हिम्मत ।

हिउपनसियं — ह्युएनसियं देखो ।

हिकड़ा (फा० पु०) धोबीकी बोलीमें तीन कोड़ी कपड़ोंका समूह ।

हिकमत (अ० स्त्री०) १ तत्त्वज्ञान, विद्या । २ कला कौशल, निर्माणकी बुद्धि । ३ कार्यसिद्ध करनेकी युक्ति, तदबीर । ४ चतुराईका ढंग, चाल । ५ किफायत । ६ हकीमका काम या पेशा, हकीमी । ७ मल्लाही ।

हिकमती (अ० वि०) १ कार्य साधनकी युक्ति निकालनेवाला, तदबीर सोचनेवाला । २ चतुर, चालाक । ३ किफायती ।

हिकलाना (हिं० क्रि०) हकलाना देखो ।

हिकविकानिक (सं० क्लो०) सामभेद ।

हिकायत (अ० स्त्री०) कथा, कहानी ।

हिक्कल (हिं० पु०) बौद्ध संन्यासियों या भिक्षुओंका दंड ।

हिक्का (सं० स्त्री०) १ रोगका उपसर्गविशेष, हिचकी । सभी रोगोंमें यह उपसर्ग हो सकता है । वायुके प्रबल होनेसे यह उपसर्ग होता है । २ बहुत हिचकी आनेका रोग । वायुका पसलियों और अंतड़ियोंको पीड़ित करते हुए ऊपर चढ़ कर गलेसे झटकेसे निकलना ही हिक्का या हिचकी है ।

पेटमें अफरा, पसलियोंमें तनाव, कण्ठ और हृदय का भारी होना, मुंह कसैला होना हिक्का रोग होनेके पूर्व लक्षण है । वायु और कफके मेलसे पांच प्रकारकी हिक्का कही गई है, यथा—अन्नजा, यमला, क्षुद्रा, गम्भीरा और महती ।

ऊर्द्धगामी हो कर जो हिक्कारोग उत्पन्न होता है उसे अन्नजा हिक्का, जो हिक्का बार बार हो या देरीसे अधिक संख्यामें वेगके साथ देरीसे आती है और जिस हिक्कामें

रोगीका मस्तक और गला कंपने लगता है उसे यमला हिक्का, जो हिक्का जत्रु के मूलदेशसे निकल कर थोड़े वेगके साथ देरीसे प्रकाशित होती है उसे क्षुद्रा, जो हिक्का गम्भीर शब्दके साथ नाभिदेशसे निकलती है और जिस हिक्कामें रोगी तृष्णा और ज्वरादि नाना प्रकारके उपद्रवोंसे प्रपीड़ित होता है उसे गम्भीरा हिक्का और जो हिक्का वस्ति, हृदय और मस्तक आदि मर्म स्थानोंको पीड़न कर हमेशा आती रहती है और रोगीका सारा शरीर कंपने लगता है उसे महती हिक्का कहते हैं।

जिस हिक्कामें रोगीको कंप हो, ऊपरकी ओर दृष्टि चढ़ जाय, आंखके सामने अंधेरा छा जाय, शरीर दुबला होता जाय, छींक बहुत आवे और भोजनमें अरुचि हो जाय, वह असाध्य कही गई है। हिक्काके प्रबल होनेसे रोगीको शीघ्र ही मृत्यु होती है। यदि रोगविशेषमें हिक्का उपस्थित हो, तो रोग चंगा करनेकी चेष्टा न कर पहले जिससे हिक्का प्रशमित हो वही उपाय करे।

चिकित्सा—हिक्का और श्वासरोगीको पहले शरीरमें तेल लगा कर स्वेद प्रदान करे। परन्तु दुर्बल व्यक्तिको विरेचन नहीं देना चाहिये, उन्हें संशमन औषध देना उचित है। तर्जन, विस्मयजनन, शीतल जल परिषेक और विविध हितवाक्यके प्रयोग द्वारा हिक्का प्रशमित होती है। बकरीके दूधको पका कर उसमें सोंठका चूर्ण मिला पान करनेसे हिक्का कम हो जाती है। मुलेठीका चूर्ण चीनीके साथ और सोंठका चूर्ण गुड़के साथ नस्य लेनेसे; प्रवाल, शङ्ख और त्रिफला तथा पीपल और गेरूमिट्टी समान भागमें चूर्ण कर मधु और घृतके साथ चाटनेसे तथा गोल उड़दके चूर्णका काढ़ा बना कर उसमें हींग डाल पान करनेसे हिक्का शीघ्र प्रशमित होती है। (भावप्रका० हिक्कारोगाधि०)

भैषज्यरत्नावलीमें इस रोगका विविध मुष्टियोग और औषध लिखा है। पहले हिक्कारोगीके पेटके ऊपर तथा श्वासरोगीकी छाती पर तेलकी मालिश कर उष्णस्वेद या जलस्वेद दे। घृतादि स्निग्ध द्रव्य लवणके साथ सेवन करा कर वायुकी लघुता सम्पादन करे। बलवान् व्यक्तिको वमन और विरेचन तथा दुर्बल व्यक्तिको औषध सेवन द्वारा पित्त और कफकी समता कर आरोग्यकी चेष्टा करे।

हरें और सोंठका चूर्ण समान भाग ले कर गरम जल के साथ अथवा कुटका चूर्ण यवक्षार और मरिचचूर्ण गरम जलके साथ पान करनेसे हिक्का प्रशमित होती है। इसके सिवा हरिद्रादिचूर्ण, शृङ्ग्यादिचूर्ण, भार्गीगुड़, भार्गीशर्करा, शृङ्गीगुड़घृत, डामरेश्वराभ्र, पिप्पलाद्यलौह, कनकसार और वृहच्चन्दनादि तैल आदि औषध इस रोगमें प्रयोज्य है। (भैषज्यरत्ना० हिक्काश्वासाधि०) चरक सुश्रुत आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें और गरुड़पुराणके १४५वें अध्यायमें इसके निदान और चिकित्सादिका विशेष विवरण लिखा है।

३ रोने या सिसकनेका वह शब्द जो रुक रुक कर आवे।

हिक्किका (सं० स्त्री०) अल्प हिक्का, हिचकी।

हिक्कित् (सं० त्रि०) हिक्का अस्त्यर्थे इनि। हिक्कारोगी, जिसे हिक्का रोग हो।

हिङ्कार (सं० पु०) १ व्याघ्र, बाघ। २ रंभानेका वह शब्द जो गाय अपने बछड़ेको बुलाते समय करती है। ३ बाघके बोलनेका शब्द। ४ सामगानका एक अङ्ग जिसमें उद्गाता गीतके बीच बीचमें 'हिं' का उच्चारण करता है।

हिङ्ग (सं० पु०) १ जनपदविशेष। २ हिङ्गु, हींग।

हिङ्गु देखो।

हिङ्गनघाट—१ मध्यप्रदेशके वर्द्धा जिलान्तर्गत एक महकमा। यह अक्षा० २०° १८′ से २०° ४६′ उ० तथा देशा० ७८° ३२′ से ७९° १४′ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ७२६ वर्गमील और जनसंख्या लाखके करीब है। शासनसुविधाके लिये यहां २ दीवानी और ३ फौजदारी अदालत तथा ३ थाना है।

२ वर्द्धा जिलान्तर्गत उक्त महकमेका एक शहर। यह अक्षा० २०° ३४′ उ० तथा देशा० ७९° ५१′ पू० बुना नदीके किनारे अवस्थित है। यह शहर रूई व्यवसायका एक केन्द्र है। यहांकी रूई सभी जगहकी रूईसे अच्छी होती है। यह रूई विलायत भेजनेके लिये यहां अंगरेज वणिकोंने कोठी खोल रखी है। १८८२ ई०में 'काटन मिलस कम्पनी' नामक रूईसे सूत निकालनेके लिये हिङ्गनघाटमें एक अंगरेज समिति प्रतिष्ठित हुई है। मारवाड़ी ही यहांके प्रधान व्यवसायी हैं। अन्यान्य स्थान विशेषतः वम्बईके साथ इन

लोगोंका वाणिज्य सम्बन्ध है। वर्त्तमान शहर नया हिङ्गन घाट और पुराना हिङ्गनघाट ले कर बना है। पुराना शहर वर्द्धा नदीकी बाढ़से नष्ट हो जानेकी आशङ्का है। यहां वर्द्धा-आलि-स्टेट रेलवेका एक स्टेशन, सराय, बंगला और अंगरेजी स्कूल आदि भी हैं।

हिङ्गलाची (सं० स्त्री०) यक्षिणी। (तारनाथ)

हिङ्गलाज—बलुचिस्तानका एक प्रसिद्ध प्राचीन नगर और तीर्थस्थान। यह अक्षा० २५°३०´ उ० तथा देशा० ६५°३१´ पू०के मध्य विस्तृत है। सिन्धुनदके मुहानेसे ८० मील पश्चिम तथा अरबसमुद्रसे १२ मील दूर जहां गिरिमाला मकरान और लूसको पृथक् करती है उसी गिरिमालाके प्रान्तभागमें यह शहर बसा हुआ है। पहाड़के ऊपर एक भीषण कालीमन्दिर है। स्थानीय लोगोंके निकट वह काली 'नानी' या 'महामायी' कहलाती है। इसी देवीके कारण हिन्दू लोग इसे महापीठस्थान समझते हैं।

तन्त्रचूड़ामणि और बृहन्नीलतन्त्रमें यह स्थान 'हिङ्गुला' तथा शिवचरित नामक तान्त्रिकग्रन्थमें 'हिङ्गला नामसे परिचित है। उक्त तन्त्रोंके मतसे यह ५१ महापीठोंमेंसे एक है। यहां देवीका ब्रह्मरन्ध्र गिरा था। यहांकी शक्तिका नाम कोट्टरी या कोट्टरीशा तथा भैरवका नाम भीमलोचन है। पीठ देखो।

यह तीर्थ अत्यन्त दुर्गम होनेके कारण बहुतसे हिन्दूयात्रियोंको यहां आनेका साहस नहीं होता। यहां अंधेरी गुफामें ज्योतिके उसी प्रकार दर्शन होते हैं जिस प्रकार कांगड़ेकी ज्वालामुखीमें। करांची बन्दरसे उत्तरकी ओर समुद्रके किनारे किनारे ४५ कोस चल कर लोग यहां पहुंचते हैं।

हिङ्गलाजगढ़—देशी इन्दोर राज्यके अन्तर्गत एक गिरिदुर्ग। यह अक्षा० २४°४०´ उ० तथा देशा० ७५°५०´ पू०के मध्य विस्तृत है। २०० फुट चौड़ी खाईने शहरको घेर रखा है तथा दुर्भेद्य प्राचीर ऊद्‌र्ध्वमुखी पर्वतगात्रसे निकला है। तीन भिन्न मुखी सेतु द्वारा बाहरके साथ इसमें आने जानेका सम्पर्क है। पहले लोगोंकी धारणा थी, कि यह दुर्ग अभेद्य है, परन्तु १८०४ ई०में मेजर सिनक्लेयर साहब ने महाराष्ट्रयुद्धके समय इस दुर्गको अधिकार किया।

हिङ्ग्वष्टकचूर्ण (हिं० पु०) वैद्यकमें प्रसिद्ध एक अजीर्णनाशक और पाचक चूर्ण। सोंठ, पीपल, काली मिर्च, अजमोदा, सफेद जीरा, भुनी हींग और सेंधा नमक इन सबको एक साथ चूर्ण कर डाले। सेवनकी मात्रा १ या २ टंक है।

हिङ्गु (सं० क्ली०) स्वनामख्यात द्रव्य, हींग। इसे बम्बईमें हींग, हिङ्गु, महाराष्ट्रमें इङ्गु, कलिङ्गमें लेमु और तैलङ्गमें इङ्गुर कहते हैं।

हींगका पौधा दो ढाई हाथ ऊंचा होता है। इसकी पत्तियोंका समूह एक गोल राशिके रूपमें होता है। इसके पौधे अफगानिस्तान, फारसके पूर्वी हिस्से, (खुरासान, यज्द) तुर्किस्तानके दक्षिणी भाग तथा एशियाके कास्पियन और अरब हदके मध्यवर्त्ती प्रदेशोंमें बहुतायतसे होते हैं। भारतवर्षमें हींग नहीं होती यहां जो देखनेमें आती है, वह कंधारी (अफगानिस्तानकी) हींग है। मूलतानमें भी हींगके पौधे कम देखनेमें आते हैं। यूरोपके उद्भित्तत्त्वविद्गण बहुत दिनोंसे इसका इतिहास संग्रह करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। उनके भैषज्यशास्त्रमें हिंगुका नाम Ferula asafoetida रखा गया है। परन्तु उन लोगोंमें भी इसका जातिगत विचार ले कर मतभेद देखनेमें आता है। १८३८ ई०में डाक्टर फालकोनरने कश्मीरकी आस्तर उपत्यकामें इस जातिका उद्भिद् देखा था। पहले उन्होंने समझा था, कि शायद इस बार आसाफिटिडाके विषयकी अच्छी मीमांसा हो जायेगी। डाक्टर फालकोनर संगृहीत उक्त उद्भिद्का मूल साहारनपुरके बोटानिक गार्डन और पीछे एडिनबराके रायेल बोटानिक गार्डनमें भी भेजा गया था। इन दोनों स्थानोंमें बहुत दिनोंमें और बहुत चेष्टाके बाद १८४२ ई०में इसका स्वाभाविक अङ्कुरोद्‌गम देखनेमें आया और १८५६ ई०में किसी किसीमें फूल निकलनेके कारण उसमें बीज पाया गया। वे सब बीज संसारके भिन्न भिन्न स्थानोंके बोटानिकल गार्डनमें भेजे गये। पीछे वैदेशिक उद्भित्तत्त्ववित् पण्डितोंका ध्यान इसके तथ्य संग्रहकी ओर दौड़ा। परन्तु बहुत सोच विचारके बाद देखा गया, कि यूरोपके वाणिज्यक्षेत्रमें जो हींग देखनेमें आती है वह इससे सम्पूर्ण भिन्न जातिकी है। डाक्टर हुकारने ५१६८वें अङ्कके बोटानिकल मैगेजिनमें उस

उद्भिज्जकी आकृतिका एक चित्र प्रकाशित किया और उस सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा कि "इस जातिका उद्भिद बहुत बढ़िया हींग उत्पादन करता है तथा यहां दूध जैसे सफेद रससे भरा है, पर यूरोपमें जिस हिंगुका व्यवहार देखनेमें आता है, वह ऐसा उत्कृष्ट और ऐसा सुन्दर नहीं है।"

उक्त मासिक पत्रिकामें डाकृर हुकार स्पष्ट स्वीकार कर गये हैं, कि इसका ठीक ठीक विचार करना अभी एकदम असम्भव है। डाकृर फालकोनरके बहुत पहले जर्मन-भ्रमणकारी किम्फरने पारस्यदेशके एक जातिका उद्भिद देखा था। आसफिटिडा समझ कर उसे वे यूरोप ले गये। वह वृटिश म्युजियममें रखा गया था। डाकृर लिनियसने इसीको 'फेरिउला आसाफिटिडा' बताया है। परन्तु फालकोनरने बहुत परीक्षाके बाद स्थिर किया, कि उन्होंने काश्मीरप्रदेशमें जो उद्भिद देखा था उससे वह सम्पूर्ण विभिन्न है। अतएव इसे यदि 'फेरिउला आसिफिटिडा' कहा जाय, तो उनका संगृहीत उद्भिद उक्त नामसे कदापि पुकारा नहीं जा सकता। अतः उन्होंने अपने आविष्कृत उक्त उद्भिदका Narthex asafœtida नाम रखा। इस प्रकार बहुत दिनों तक इसके सम्बन्धमें मतभेद चलता रहा। आखिर डाकृर डाइमकने पहले पहल इस प्रश्नकी मीमांसा की। उन्होंने कहा, कि भारतमें खूब ऊंची दर पर जो हींग बिकती है, वह यूरोपके बाजारमें बिकनेवाली 'आसाफिटिडा' से सम्पूर्ण विभिन्न है। उन्होंने इसके देशीय नामकी पृथकता दिखा कर भी इसका भेदाभेद समझा दिया। हिङ्गु और हिङ्गारा ये दो देशीय नाम बहुत पहलेसे ही प्रचलित है। भारतवर्षमें अधिक दर पर जो 'आसाफिटिडा' बिकता है उसीका नाम हींग है। फिर यूरोपमें जिसकी खपत देखी जाती है वह असली 'हींग' नहीं है, उसका नाम 'हिङ्गारा' है। यह हींग बहुत खराब होती है। परन्तु बहुतेरे फिर इसे भी स्वीकार नहीं करते। इस सम्बन्धमें दो प्रकारका मत देखनेमें आता है। एकके मतसे नाना प्रकारकी वस्तुओंके मिलनेसे उसका ऐसा पार्थक्य होना सम्भव है। दूसरेके मतसे भिन्न देशकी आबहवाके पार्थक्यवशतः ऐसी विभिन्नता हुई है। परन्तु सबसे आधुनिक परीक्षा द्वारा डाकृर ऐत्रिसनने इस प्रश्नकी एक प्रकारसे अन्तिम मीमांसा की है। उनके मतानुसार जिससे ठीक हींग पाई जाती है उसको 'आसाफिटिडा' नहीं कह सकते। उन्होंने उसका Ferula alliacea और Ferula Foetida नाम रखा है और जिससे गोंद आदि पाया जाता है उसीका नाम Ferula asafoetida है। इस सम्बन्धमें पूर्वोक्त डाकृर और डाइमकके बीच लिखा पढ़ी चली। आखिर दोनोंने एक मत हो कर यह स्थिर किया, कि भारतमें जिस हींगका व्यवहार देखनेमें आता है और जो मसाला आदिमें व्यवहृत होती है वह उक्त 'फेरिउला आलिसिया'से निकली है। उद्भिदके अच्छे अच्छे फूलोंसे जो निर्यास संग्रह किया जाता है उसीको कन्धारी (मूलतानी) हींग कहते हैं, यही भारतवर्षमें ऊंची दर पर बिकती है। यूरोपके वाणिज्यमें 'आसाफिटिडा' नामसे जो प्रचलित देखा जाता है, वह उक्त उद्भिदकी जड़के अपरिष्कृत निर्याससे निकला है। कहनेका तात्पर्य यह है, कि वे मतभेद रहते हुए भी अन्तमें यही देखा जाता है, कि किसी एक जातिके उद्भिदसे हिंगु और हिङ्गारा ये दोनों पदार्थ निकले हैं अथवा ये दोनों प्रकारके भैषज्य पदार्थ ही अवस्थाभेदसे उत्कृष्ट और अपकृष्ट गुणविशिष्ट हैं। अभी बहुत दिनोंसे अनुसंधान करनेके बाद वे लोग केवल इतना ही स्थिर कर सके हैं, कि फारससे समुद्रकी राह अधिकांश उक्त भैषज्य द्रव्य जो भारतवर्ष लाये जाते हैं वह हींग है और वह पूर्वोक्त फेरिउला आलसियासे निकली है। परन्तु फारस और तुर्किस्तानसे भी हिंगाराकी यथेष्ट आमदनी देखनेमें आती है। इसके सिवा आसाफिटिडा नामक भैषज्य द्रव्य जो अफगानिस्तानसे नदीपथ हो कर भारतवर्षमें लाया जाता है, वह सभी फेरिउला फिटिडासे निकला है।

भारतवर्ष ही उक्त हींगका प्रधान वाणिज्यस्थान है। बम्बई, सिन्धुप्रदेश, करांचीबंदर, मन्द्राज और बङ्गदेशमें हींगकी काफी आमदनी होती है। इसमें से बम्बई और कराची बन्दरमें ही इस हींगका वाणिज्य सबसे अधिक है। क्योंकि, पारस्य-उपसागरसे जलपथसे जो आमदनी होती है, वे सभी बम्बई और कराची बंदरमें भेजी जाती हैं पारस्यसे जो आमदनी होती है, वह पारस्य-उपसागरसे

समुद्रपथ द्वारा बम्बई लाई जाती है तथा अफगानिस्तानके काबुल और कंधारसे जो स्थलपथ द्वारा भेजी जाती है, वह कंधार-स्टेट-रेलवे और नार्थ वेष्टर्न रेलवे हो कर आती है। सिंहल और आदेनसे भी जलपथ द्वारा इसकी आमदनी देखनेमें आती है। वह हींग केवल बङ्गदेशमें ही आती है, अन्यान्य स्थानोंमें इसकी आमदनी बहुत कम है।

कंधारी या मूलतानी हींग जो अधिक दर पर मिलती है, वह बम्बईके बाजारमें बहुत कम देखनेमें आती है। हींग जब पहले पहल भारतवर्षमें आती है, तब सफेद पत्थरके टुकड़ों जैसी दिखाई देती है, हाथमें रखनेसे कुछ गीली मालूम होती है, घिसनेसे लाल तिल जैसा एक प्रकारका निर्यास निकलता है, परन्तु कुछ समय रखनेके बाद ही वह कठिन हो जाती है। वर्ण भी उसका पहले जैसा नहीं रहता। गंधकी तीव्रता भी पहलेसे अधिक होती है। गंधकी तीव्रताके सम्बन्धमें बहुतोंका यह भी कहना है, कि ज्यादे दाम पर बेचनेके लिये दूसरे द्रव्यके साथ मिला कर व्यापारी लोग ऐसा किया करते हैं। साधारणतः इसके प्रति मनका दाम २५) रु० है। उत्तम हिङ्गराकी आकृति टुकड़े टुकड़े पत्थरके खंड जैसी और तोड़ने पर उसके भीतर बालूका चूर दिखाई देता है। ऊपरी भाग देखनेमें पीला होता है, परन्तु पहली अवस्थामें तोड़नेसे वह सफेद दिखाई देती है। ज्यों ज्यों इसमें हवा लगती जाती है, त्यों त्यों इसका रंग अपरिष्कृत पीला होता जाता है। इसकी दर कंधारी हींगसे मन पीछे २०) रु० कम है। परन्तु किसी किसीका कहना है, कि कंधारी हींगकी दर बीस रुपये मन तक देखी गई है और हिङ्गारा चौदह रुपये मनमें भी बिकता है।

गुण—हृद्य, कटु, उष्ण, कृमि, वात, कफ, विबन्ध, आध्मान, शूल और गुल्मनाशक, चक्षुष्य। (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—पाचक, उष्ण, रुचिकर, तीक्ष्ण, वात और बलासरोगनाशक, रस और पाकमें कटु, स्निग्ध, शूल, गुल्म, उदर, आनाह और कृमिनाशक तथा पित्तजनक।

२ वंशपत्री। ३ काकादनी।

हिङ्गुक (सं० पु०) हिङ्गु स्वार्थे कन्। हिङ्गु देखो।

हिङ्गुनाड़िका (सं० स्त्री०) नाड़ीहिङ्गु, हिंगारा या हिंगड़ा।

हिङ्गुनिर्यास (सं० पु०) १ निम्बवृक्ष, नीमका पेड़। २ हिङ्गुरस, हींग।

हिङ्गुपत्र (सं० पु०) इङ्गुदी, हिंगोट।

हिङ्गुपत्री (सं० स्त्री०) वंशपत्रतृण। गुण—कटु, तीक्ष्ण, तिक्त, उष्ण, कफ, वात, आम और कृमिनाशक, रुचिकर, पथ्य, दीपन, पाचन। (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे यह रुचिकर, तीक्ष्ण, उष्ण, पाचक, कटु, हृद्रोग, वस्ति, त्रिविध अर्श, श्लेष्म, गुल्म और वायुनाशक है।

हिङ्गुपर्णी (सं० स्त्री०) वंशपत्री।

हिङ्गुल (सं० पु० क्ली०) खनामख्यात पारदभूयिष्ठ द्रव्य, इङ्गुर, सिंगरफ। गुण—मधुर, तिक्त, उष्ण, वात, कफ, त्रिदोष, द्वन्द्वदोष और ज्वरनाशक।

वैद्यकशास्त्रमें लिखा है, कि हिङ्गुलको औषधमें प्रयोग करते समय उसे शोध लेना चाहिये। अशोधित हिंगुल हानिकारक है। भावप्रकाशमें लिखा है, कि गंधक और हिङ्गुल आदि उपरसमें गिने जाते हैं। आंशिक रसका गुण होनेके कारण इसको उपरस कहते हैं। दरद, म्लेच्छ, चिलाङ्ग और चूर्णपारद ये सब हिङ्गुलके पर्याय हैं। हिङ्गुल तीन प्रकारका होता है, चर्मार, शुकतुण्डक और हंसपाद। ये सब उत्तरोत्तर अधिक गुणदायक हैं। चर्मार श्वेतवर्ण, शुकतुण्डक पीतवर्ण और हंसपाद जवापुष्प जैसा लोहितवर्ण होता है। हंसपाद हिङ्गुल ही सबसे बढ़िया है।

विशुद्ध हिङ्गुल तिक्त, कटु, कषायरस तथा चक्षुरोग, कफ, पित्त, हृल्लास, कुष्ठ, ज्वर, कामला, प्लीहा, आमवात और गरदोषनाशक है। (भावप्र०)

भेड़ोंके दूधमें सात बार और अम्लवर्गमें सात बार भावना देनेसे भी हिङ्गुल शोधित होता है। जंबीरी नीबूके रसमें दोलायंत्रमें हिङ्गुल पाक करके अम्लवर्गमें सात बार भावना देनेसे भी शोधित होता है। मकरध्वज बनाते समय जो पारा लिया जाता है वह हिङ्गुलसे बाहर कर लेना होता है। औषधकार्यमें हिङ्गुलोत्थ पारद ही श्रेष्ठ है। जंबीरी और कागजी नीबूके रसमें एक दिन हिङ्गुल घोंट कर ऊर्द्ध्व-पातनयंत्रमें पाक करे, पीछे उसमेंसे पारा ले ले। यह पारा नागवङ्गादि दोषरहित और रसकर्ममें उत्तम है। २ एक नदीका नाम।

हिङ्गुलक (सं० पु० क्ली०) हिङ्गुल स्वार्थे कन्। हिङ्गुल देखो।

हिङ्गुला (सं० स्त्री०) पीठस्थानविशेष। हिङ्गलाज देखो।

इस पीठस्थान पर सतीका ब्रह्मरन्ध्र गिरा था। यहां जो शक्ति है, उसका नाम कोट्टरी है, तथा भैरव भीमलोचन है। वामनपुराणके ६७वें अध्यायमें भी इस स्थानका उल्लेख देखनेमें आता है।

हिङ्गुलाजा (सं० स्त्री०) हिङ्गुलाजमें अधिष्ठिता देवी। हिङ्गलाज देखो।

हिङ्गुलाकृष्टरस (सं० पु०) हिंगुलसे लिया हुआ पारा। रसेन्द्रसारसंग्रहमें रस ग्रहण करनेका नियम लिखा है।

हिङ्गुलि (सं० पु०) हिङ्गुल, सिंगरफ।

हिङ्गुलिका (सं० स्त्री०) हिङ्गुल-ठन्। कण्टकारी, भटकटैया।

हिङ्गुली (सं० स्त्री०) १ वार्त्ताकी, भंटा। २ बृहती, भटकटैया।

हिङ्गुलु (सं० पु० क्ली०) हिङ्गुल, सिंगरफ।

हिङ्गुलेश्वर (सं० पु०) हिङ्गुलसे बनी हुई एक रसौषध जिसका व्यवहार वातज्वरकी चिकित्सामें होता है।

हिङ्गुलोत्थितरस (सं० पु०) हिङ्गुलसे निकाला हुआ पारा। हिङ्गुल और पारद देखो।

हिङ्गुशिराटिका (सं० स्त्री०) वंशपत्री तृण।

हिङ्गूल (सं० क्ली०) १ मधुमूल, आलू। २ हिज्जल नामक पौधा।

हिङ्गोट (सं० पु०) एक झाड़दार कंटीला जंगली पेड़। यह मझोले आकारका होता है और इसकी इधर उधर निकली हुई टहनियां गोल गोल और छोटी तथा श्यामता लिये गहरे हरे रंगकी पत्तियोंसे गुछी होती है। इसमें बादामोंकी तरहके गोल छोटे फल लगते हैं। फलकी गुठलियोंसे बहुत अधिक तेल निकलता है। छाल और पत्तियोंमें कसाव होता है। प्राचीन कालमें जंगलमें रह कर तपस्या करनेवाले मुनियों और तपस्वियोंके लिये यह पेड़ बड़े कामका होता था, इसीसे इसको तापसतरु भी कहते थे। संस्कृतमें इसका नाम इङ्गुदी है।

हिङ्गोना—ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत एक ग्राम। यह कुवारी नदीके बांये किनारे अवस्थित है।

हिङ्गोली—निजामराज्यके अन्तर्गत गर्भाणो महकमेका एक शहर। यह अक्षा० १९° ४३´ ३० तथा देशा० ७७° १७´ पू०के मध्य हैदराबादसे एकोला जानेके रास्ते पर अवस्थित है। यहां रूईका एक बड़ा बाजार है।

हिङ्ग्वादि गुटिका (सं० स्त्री०) हींगके योगसे बनी हुई एक विशेष प्रकारकी गोली। इसके सेवनसे पेटका दर्द दूर होता है। भुनी हींग, अमलबेत, काली मिर्च, पीपल, अजवायन, काला नमक, इन सबको पीस कर बिजौरे नीबूके रसमें गोलियां बनाते हैं। इसका अनुपान उष्ण जल है।

हिङ्ग्वादिचूर्ण (सं० पु०) हींगके योगसे बनी हुई एक बुकनी। यह गुल्म, अनाह, अर्श, संग्रहणी, उदावर्त्त, शूल और उन्माद आदि रोगोंमें दी जाती है।

भूनी हींग, पिपला मूल, धनिया, जीरा, बच, चव्य, चीता, पाठा, कचूर, अमलबेत, सांभर नमक, काला नमक, सेंधा नमक, जवाखार, सज्जी, अनारदाना, हड़का छिलका, पुष्करमूल, डांसरा, झाऊकी जड़, इन सबका चूर्ण कर डाले और अदरक तथा बिजौरेके रसके सात सात पुट दे कर सुखा डाले।

हिचक (हिं० स्त्री०) किसी कामके करनेमें वह रुकावट जो मनमें मालूम हो, आगा पीछा।

हिचकना (हिं० क्रि०) १ हिचकी लेना, वायुका उठा हुआ झोंका कंठसे निकलना। २ किसी कामके करनेमें कुछ अनिच्छा, भय या संकोचके कारण प्रवृत्त न होना।

हिचकिचाना (हिं० क्रि०) हिचकना देखो।

हिचकियाहट (हिं० स्त्री०) हिचक देखो।

हिचकिचो (हिं० स्त्री०) हिचक देखो।

हिचकी (हिं० स्त्री०) १ हिक्का देखो। २ रह रह कर सिसकनेका शब्द, रोनेमें रह रह कर कंठसे सांस छोड़ना।

हिचर मिचर (हिं० पु०) १ किसी कामके करनेमें भय, संकोच या कुछ अनिच्छाके कारण रुकना या देर करना, आगा पीछा। २ किसी कामको न करना पड़े, इसीलिये

देर करना या इधर उधरकी बात कहना, टालमटूल।

हिजड़ा (हिं० पु०) होजड़ा देखो।

हिजरी (अ० पु०) मुसलमानी सन् या सम्वत् जो मुहम्मद साहबके मक्कासे मदीने भागनेकी तारीख (१५ जुलाई सन् ६२२ ई० अर्थात् विक्रम-सम्वत् ६७६ श्रावण शुक्ल २का सायंकाल)-से चला है। हिजरी शब्दका मूल अर्थ भागना है। महम्मद और उनके शिष्योंका भागना ही प्रधानतः 'हिजरी' कहलाता है। महम्मद देखो। विपक्षोंके अत्याचारसे छुटकारा पानेके लिये महम्मद पन्द्रह शिष्योंके साथ 'हावस' देशमें जो भाग गये, वही प्रथम हिजरी है। महम्मदके इस पहली बारके भागनेसे हिजरी अब्द आरम्भ नहीं हुआ है। परन्तु मक्कासे मदीनामें उनकी दूसरी बारके पलायन-कालसे ही हिजरी अब्द प्रचलित हुआ है।

खलीफा उमरने विद्वानोंकी सम्मतिसे यह हिजरी सन् स्थिर किया था। हिजरी सन्का वर्ष शुद्ध चान्द्र वर्ष है। इसका प्रत्येक मास चन्द्रदर्शन (शुक्ल द्वितीया)से आरम्भ होता है और दूसरे चन्द्रदर्शन तक माना जाता है। हर एक तारीख सायंकालसे आरम्भ हो कर दूसरे दिन सायंकाल तक मानी जाती है। इस सन्के बारह महीनोंके नाम इस प्रकार हैं—

१ मुहर्रम	दिन संख्या	३०
२ सफर	"	२६
३ रबी उल् अव्वल	"	३०
४ रबी उस्सानी	"	२६
५ जमादि उल अव्वल	"	३०
६ जमादि-उल् आखिर	"	२६
७ रजब	"	३०
८ शाबान	"	२६
६ रमज़ान	"	३०
१० शब्वाल	"	२६
११ ज़िलकाद	"	३०
१२ ज़िलहिज्ज	"	२६

संवत्सर देखो

हिजली—मेदनीपुर ज़िलेका एक समुद्रतीरवर्त्ती भूभाग। यह भूभाग रूपनारायणके मुहानेसे पश्चिम हुगली या भागीरथी-तीर तथा उत्तरमें बालेश्वर ज़िलेकी सीमा तक अक्षा० २१° ३६' से २२° ११' ३० तथा देशा० ८७° २७' से ८८° १' ४५" पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण १०१४ वर्गमील है। लवणका व्यवसाय गवर्मेण्टके खास कर लेनेके पहले यहां लवणका जोरों कारबार चलता था। समुद्रके खारे जलको उबाल कर यह लवण तैयार किया जाता था। लीवरपुललवणकी प्रतियोगितासे यहांका कारोबार बन्द हो गया। देशावली-विवृतिग्रन्थमें यह स्थान हिज्जल नामसे वर्णित है।

हिजाज़ (अ० पु०) १ अरबके एक भागका नाम। इसमें मक्का और मदीना नामक नगर हैं। २ फारसी सङ्गीतके १२ मुकामोंमेंसे एक।

हिजाब (अ० पु०) १ परदा। २ लज्जा, शर्म।

हिज्ज (सं० पु०) हिज्जल देखो।

हिज्जल (सं० पु०) एक प्रकारका पेड़, समुद्रफल। इसे महाराष्ट्रमें पर्यालु, कलिङ्गमें तोरेगणगिल, उत्कलमें फिञ्जोलो, बम्बईमें समुद्रफल और परेल कहते हैं। इसका गुण—कटु, उष्ण, पवित्र, भूत, वातामय और नाना ग्रहचारादि दोषनाशक। भावप्रकाशके मतसे यह जलवेंतकी तरह गुणवाला और विषनाशक है।

हिज्जे (अ० पु०) किसी शब्दके आये हुए अक्षरोंको मात्रा सहित कहना।

हिज्र (अ० पु०) जुदाई, वियोग।

हिञ्जीर (सं० पु०) हस्तिपादबन्धनरज्जु या शृङ्खल, हाथीके पैरमें बांधनेकी रस्सी या जंजीर।

हिड़िम्ब (सं० पु०) एक प्रसिद्ध राक्षस। महाभारतमें इसका विषय यों लिखा है—पाण्डवगण जतुगृहसे भाग कर जब वन चले गये, तब एक रातको वे सभी सो रहे थे। केवल भीम जगे रह कर उन सबोंकी रक्षा करते थे। इसके पास ही एक शाल वृक्ष पर हिड़िम्ब और उसकी बहन हिड़िम्बा राक्षसी रहती थी। हिड़िम्बने बहुत दिनोंके बाद मनुष्यका शब्द पा कर अपने बहनसे उसे देख आने कहा। हिड़िम्बाने वहां जा कर देखा कि युधिष्ठिरादि सो रहे हैं, केवल भीम जगा है। हिड़िम्बा भीमकी अनिन्द्य कमनीय कान्ति देख कर कामातुर हो गई। वह अत्यन्त सुन्दरी स्त्रीका रूप धारण कर भीमके पास गई और उनसे बोली, 'इस वनमें हिड़िम्ब नामक एक अत्यन्त क्रूर

प्रकृतिका राक्षस रहता है। मैं उसकी बहन हूं, आपका देवोपम रूप देख कर कामवती हो गई हूं इसलिये मेरी इच्छा पूरी कीजिये। पीछे मैं आप लोगोंकी यथा साध्य भलाई करूंगी। इस वनमें रहनेसे हिड़िम्बके हाथसे बचनेकी कोई आशा नहीं। आप इन लोगोंको उठाइये। मैं सबोंको ले कर बहुत दूरमें रख आती हूं।'

भीमने हिड़िम्बाकी बात सुन हंस कर कहा, 'राक्षस, देवता, यक्ष आदि किसीसे भी मैं नहीं डरता।' इधर हिड़िम्ब हिड़िम्बाको आनेमें विलम्ब देख वृक्ष परसे उतरा और उसी ओर जाने लगा। वहां जा कर उसने देखा, कि हिड़िम्बा अत्यन्त रमणीय मूर्त्ति धारण कर भीमके साथ बातचीत कर रही है। इस पर हिड़िम्ब बहुत बिगड़ा और बहनको तिरस्कार कर कहा, "नीच, कुलकलंकिनी! तुम कामवशवर्त्तिनी हो मनुष्यकी कामना कर मेरा अपकार कर रही हो! इसलिये पहले तुम्हारा ही विनाश करूंगा, पीछे इन लोगोंको सुखसे खाऊंगा।"

भीमने उसकी यह बात सुन कर कहा, 'मेरे भाई लोग सुखसे सो रहे हैं, इस प्रकार चिल्ला कर उन सबोंकी नींद न तोड़ो। मालूम होता है, तुम्हारा अन्तिम समय आ पहुंचा, इसीलिये तो इस तरह बड़बड़ कर बोलते हो।' भीमके इस वचन पर हिड़िम्ब आग बबूला हो गया और भीम पर टूट पड़ा। दोनोंमें घनघोर युद्ध चलने लगा। युद्धके शब्दसे युधिष्ठिरादि सभी जग उठे। भीमने बात-की बातमें हिड़िम्बको यमपुर भेज दिया।

इधर कुन्तीने हिड़िम्बाका अमानुषरूप देख कर उससे पूछा, 'तुम कौन हो? क्या इस वनकी देवी हो, यक्ष हो, गन्धर्व हो या किन्नरकन्या हो?' उत्तरमें हिड़िम्बाने कहा, 'मैं हिड़िम्ब राक्षसकी बहन हूं, हिड़िम्बा मेरा नाम है।' इसी समय भीम हिड़िम्बको मार कर वहां पहुंच गये और हिड़िम्बासे बोले, 'हिड़िम्बे! अब तुम भी अपने भाईका पद अनुसरण करो।' भीमके इतना कहने पर युधिष्ठिरने भीमको रोक कर कहा, 'स्त्री अवध्य है, इस लिये इसके प्रति निष्ठुराचरण न करो।'

इसके बाद हिड़िम्बा कृताञ्जलि हो कुन्तीसे कहने लगी, 'आर्य्ये! मैं सुहृद, आत्मीयस्वजन और स्वधर्मका परि-त्याग कर आपके पुत्रको अपना स्वामी वर चुकी हूं, इस-लिये प्रार्थना है, कि मुझे निराश न करें।' अनन्तर भीमने कुन्तीके आदेशानुसार उससे कहा, 'जब तक तुम्हारे पुत्र न होगा, तब तक मैं तुम्हारे साथ रहूंगा।'

अनन्तर हिड़िम्बा परमरूप धारण कर रात्रिकालमें भीमसेनको ले रमणीय स्थानोंमें विहार करने लगी। इस प्रकार वह रातको भीमसेनके साथ विहार करती थी और सबेरे उन्हें यथास्थान पहुंचा देती थी। इस प्रकार कुछ दिन रहनेके बाद उसे गर्भ रह गया। इस गर्भसे घटो-त्कचकी उत्पत्ति हुई। पुत्र होने पर भीमने हिड़िम्बाको छोड़ दिया। यह घटोत्कच महाभारतकी लड़ाईमें कर्णके हाथसे मारा गया था। (भारत आदिपर्व)

विशेष विवरण घटोत्कच शब्दमें देखो।

हिड़िम्बजित् (सं० पु०) भीमसेन।

हिड़िम्बनिसूदन (सं० पु०) भीम।

हिड़िम्बभिद् (सं० पु०) भीम।

हिड़िम्बा (सं० स्त्री०) हिड़िम्बराक्षसकी बहन, घटोत्कच-की माता। हिड़िम्ब और घटोत्कच देखो।

हिड़िम्बापति (सं० पु०) १ भीम। २ हनूमान्।

हिड़िम्बारमण (सं० पु०) १ भीमसेन। २ हनूमान्।

हिडोर (हिं० पु०) हिंडोला देखो।

हिडोल (हिं० पु०) हिंडोला देखो।

हिण्डक (सं० पु०) १ चालक। २ भ्रमणशील।

हिण्डन (सं० क्ली०) १ भ्रमण, घूमना, फिरना। २ यान, सवारी। ३ क्रीड़ा, खेल। ४ रति, मैथुन।

हिण्डिक (सं० पु०) लग्नाचार्य्य।

हिण्डिर (सं० पु०) हिण्डीर देखो।

हिण्डी (सं० स्त्री०) दुर्गा देखो।

हिण्डीबदाम (हिं० पु०) एक प्रकारका बड़ा पेड़ जो अंड-मन टापूमें होता है। इसमें एक प्रकारका गोंद निकलता है और इसके बीजोंमें बहुत-सा तेल होता है।

हिण्डीर (सं० पु०) १ एक प्रकारकी समुद्री मछलीकी हड्डी जो 'समुद्रफेन'के नामसे प्रसिद्ध है। २ वार्त्ताकु, बैंगन। ३ पुरुष, मर्द। ४ रुचक। ५ दाड़िम, अनार।

हिण्ड्क (सं० पु०) शिव।

हिण्डोली (सं० स्त्री०) एक रागिणी जो हनुमत्के मत-से हिंडोल रागकी प्रिया है।

हित (सं० त्रि०) हि-क्त। १ लाभदायक, उपकारी। २ अनुकूल, मुवाफिक। ३ अच्छा व्यवहार करनेवाला, खैरख्वाह। ४ पथ्य। ५ गत। ६ धृत। ७ योग्य। ८ प्रिय। (पु०) ९ लाभ, फायदा। १० कल्याण, मङ्गल। ११ मित्र। १२ ज्योतिषके मतानुसार ग्रहोंके अवस्थानभेदसे संज्ञाविशेष।

ग्रहोंके स्वाभाविक हित, अधिहित और सम हैं, परन्तु अवस्थानविशेषमें इसको अन्यथा होती है। ग्रहोंके जो स्वाभाविक हित अर्थात् मित्र हैं, वे उस समय अर्थात् जातचक्रके अवस्थान कालमें भी हित होते हैं। १३ अनुकूलता, मुवाफिकत। १४ स्वास्थ्यके लिये लाभ, तंदुरुस्तीको फायदा। १५ प्रेम, स्नेह। १६ मित्रता, खैरख्वाह। १७ सम्बंध, नाता। १८ संबंधी, नातेदार। (अव्य०) १९ लाभके हेतु, खातिर। २० निमित्त हेतु।

हितक (सं० पु०) १ शिशु, बच्चा। हित स्वार्थे कन्। २ हित देखो।

हितकर (सं० त्रि०) १ मङ्गलदायक, भलाई करनेवाला। २ उपयोगी, लाभ पहुंचानेवाला। ३ स्वास्थ्यकर, शरीरको आराम या आरोग्यता देनेवाला।

हितकर्त्ता (सं० पु०) भलाई करनेवाला।

हितकर्मन् (सं० क्ली०) मङ्गलजनक कर्म, हितकार्य।

हितकाम (सं० त्रि०) १ हितकामी, भलाई चाहनेवाला। (पु०) २ भलाईकी कामना या इच्छा।

हितकाम्या (सं० स्त्री०) हितेच्छा, हिताभिलाष।

हितकारक (सं० त्रि०) १ मङ्गलकारक, भलाई करनेवाला। २ लाभ पहुंचानेवाला, फायदेमंद। ३ स्वास्थ्यकर।

हितकारी (सं० त्रि०) १ हित या भलाई करनेवाला, उपकार या कल्याण करनेवाला। २ लाभ पहुंचानेवाला, फायदेमंद। ३ स्वास्थ्यकर।

हितकृत (सं० त्रि०) हितकारी, भलाई करनेवाला।

हितचिन्तक (सं० पु०) भला चाहनेवाला, खैरखाह।

हितचिन्तन (सं० पु०) किसीकी भलाईकी कामना या इच्छा, उपकारकी इच्छा।

हितप्रणी (सं० पु०) चर, दूत।

हितप्रयस (सं० त्रि०) प्रेरित अन्न। (ऋक् १०।६१।१५)

हितवचन (सं० पु०) भलाईका वचन, कल्याणका उपदेश।

हितवादी (सं० त्रि०) हितकी बात कहनेवाला, बेहतरीकी सलाह देनेवाला।

हितमित्र (सं० त्रि०) हितकर मित्रविशिष्ट।

हितरामराय—एक हिन्दी कवि। कृष्णानन्द व्यासने अपने रागकल्पद्रुममें 'भगवान् हितरामराय' नामक इनकी कविता उद्धृत की है।

हितलेहित (सं० पु०) यावनाल, जुआर, मक्का।

हितहरिवंश स्वामी गोसाईं—एक विख्यात हिन्दी कवि। ये हरिराम शुक्ल बनाम व्यासस्वामीके पुत्र तथा नरवाहन आदि कितने हिन्दीकविके गुरु थे। इन्होंने संस्कृत भाषामें 'राधा-सुधानिधि' और हिन्दीभाषामें 'हित चौरासी धाम' को रचना की। १६वीं सदीके मध्यभागमें ये विद्यमान थे। इनके साधुचरित्रके लिये सभी इनको बड़ी श्रद्धा भक्ति करते थे।

हिता (सं० स्त्री०) १ नाली, बरहा। २ एक विशेष प्रकारकी रक्तवाहिनी नस या शिरा।

हिताइत—हिताइत बाइबिलवर्णित एक पराक्रान्त जाति। चार हजार वर्ष पहलेसे इन लोगोंने सिरियामें अपना आधिपत्य फैलाया था। प्राचीन मिश्रवासी इन्हें 'खेत' और आसिरीयगण 'खेता' नामसे पुकारते थे। कुछ दिन हुए, एशियामाइनरके अन्तर्गत बोघजकोई नामक स्थानसे प्रायः १४०० ई०सन्‌के पहलेकी कुछ शिलालिपि आविष्कृत हुई हैं। उनसे जाना जाता है, कि उसके पहलेसे ही हिताइतगण एशियामाइनरका शासन करते थे। मितानी या उत्तर मेसोपोटामियाके अधिपतियोंके साथ हिताइतपतिका हमेशा युद्ध हुआ करता था। अन्तमें दोनों जातिने मेल कर लिया। उक्त सुप्राचीन शिलालिपिमें दोनों पक्षके राजवंशको उपास्य देवदेवीका परिचय है।* इस लिपिसे यह भी जाना जाता है, कि हिताइतोंके प्रतिपक्ष मितनीगण मित्र,

---

* Mitteilungen der Deutschen Orientgesellschaft, Nro. 35.

वरुण, इन्द्र और नासत्ययुगल आदि वैदिक देवताओंके उपासक थे। आश्चर्यका विषय है, कि उस दूर अतीत-कालमें भी एशियामाइनरमें वैदिक देवपूजा प्रचलित थी।†

१३४० ई०सन्के पहिले हिताइतगण २य रमेशसे पराजित हुए और उनकी राजधानी केतेश तहस नहस कर डाली गई। वह राजधानी 'कदस'-नामसे भी परिचित थी। आधुनिक पुराविदोंका अनुमान है, कि ओरन्तिन नदीके बाएं किनारे वर्त्तमान 'तेल-नबिमिहन्दि' नामक जो विस्तीर्ण ध्वंसावशेष है, वहीं पर एक समय हिताइतोंकी राजधानी थी। यह सुप्राचीन राजधानी कैसी दुर्भेद्य थी, पहाड़के ऊपर इसकी अवस्थिति और ओरन्ति हृदका बांध तथा प्राचीन गढ़खाई देखनेसे ही उसका सहजमें पता लग जाता है।

हिताइतोंके अभ्युदयकालमें उन लोगोंकी व्यवहृत लिपि ही एशियाके प्रतीच्य और यूरोपके प्राच्यभूभागमें तमाम प्रचलित थी। ८३५ ई०सन्के पहले शालमनेसरने सभी हिताइतपतियोंको परास्त किया। इसी समयसे इस जातिकी अवनतिका सूत्रपात तथा आसिरीयपति सारगणके समय ७१७ ई०सनके पहले हिताइतपति पिसिरीके पतनके साथ हिताइत राज्य विलुप्त और हिताइतलिपिका प्रचलन बंद हुआ। इस समयसे ही आसिरीय कोणाकार लिपि हिताइतलिपिका स्थान अधिकार कर बैठी। एशियामाइनर और साइप्रसके नाना स्थानोंमें हिताइतोंकी सुप्राचीन पुराकीर्त्तिका ध्वंसावशेष दिखाई देता है।

हिताई (हिं० स्त्री०) सम्बन्ध, नाता।

हिताधायिन् (सं० त्रि०) हितकर, हितकारक।

हितानुबन्धिन् (सं० त्रि०) हितकामी, भलाई चाहनेवाला।

हितार्थी (सं० त्रि०) हितकामी, भलाई चाहनेवाला।

हितावली (सं० स्त्री०) स्वनामख्यात औषध वृक्षविशेष, हियावली। पर्याय—हड्डगात्री, कुष्ठघ्नी, अङ्गारग्रन्थि, ग्रन्थिल। गुण—सारक, तिक्त, प्लीहा, गुल्मोदर, कृमि और कुष्ठ आदि रोगनाशक। (राजनि०)

हितावह (सं० त्रि०) हितकारी, जिससे भलाई हो।

हिताहित (सं० त्रि०) हित और अहित, भलाई बुराई।

हिती (हिं० वि०) १ भलाई चाहनेवाला, हितू। २ मित्र, दोस्त।

हितू (हिं० पु०) १ भलाई करने या चाहनेवाला। २ दोस्त, संबंधी, नातेदार। ३ सुहृद, स्नेही।

हितेच्छा (सं० स्त्री०) भलाईकी चाह, उपकारका ध्यान।

हितेच्छु (सं० त्रि०) कल्याण मनानेवाला, खैरख्वाह।

हितैषिता (सं० स्त्री०) भलाई चाहनेकी वृत्ति, खैरख्वाही।

हितैषी (सं० त्रि०) १ भला चाहनेवाला, कल्याण मनानेवाला। (पु०) २ मित्र, दोस्त।

हितोक्ति (सं० स्त्री०) हितके वचन, भलाईका उपदेश।

हितोपदेश (सं० पु०) हितवाक्योपदेश, भलाईका उपदेश। २ विष्णुशर्मा रचित संस्कृतका एक प्रसिद्ध ग्रंथ। यह एक नीतिग्रन्थ है। मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह और संधि ये चार विषय ले कर यह ग्रन्थ रचा गया है। यह अति प्राचीन और उपादेय है।

पञ्चतन्त्र नामक जो अति प्राचीन आख्यायिका पुस्तक प्रचलित थी, हितोपदेश उसीका एक संस्करण है। राजकुमारोंके भविष्य जीवन सुधारनेके लिये यह हितोपदेश उन्हें पढ़ाया जाता था। पाटलीपुत्रपति एक दिन मूर्ख राजकुमारोंके जीवनकी अवस्था सोच कर दुःख कर रहे थे। विष्णुशर्मा नामक एक पण्डितको यह मालूम हो गया। उन्होंने छः मासके भीतर राजकुमारोंको नीतिशास्त्रमें अभिज्ञ करनेके लिये इस हितोपदेशकी रचना की।

६ठी सदीमें पारस्यसम्राट् नसीर्वानके आदेशसे हितोपदेशका प्राचीन पारस्यभाषामें अनुवाद हुआ। उस अनुवादसे फिर ६वीं सदीमें अरबी अनुवाद हुआ था। इस अनुवाद ग्रंथका नाम 'कालला-ओ-दमना' है। यह हितोपदेश वर्णित करटक और दमनक नामक दो धूर्त्त शृगालोंका नामान्तर है। 'कलिला और दमना' ग्रन्थका फिर हिब्रु, सिरीय और ग्रीक भाषामें अनुवाद हुआ। १५वीं सदीके शेषभागमें कापुआवासी जोहन (John) नामक एक व्यक्तिने हिब्रुका अनुवाद निकाला। वही देख कर यूरोपकी सभी भाषाओंमें इसका अनुवाद होने लगा। वृटिश वालकोंके निकट हितोपदेश Pilpay's Fables: नामसे परिचित है। पूर्वतन पारस्यानुवादको छोड़ आधुनिक पारस्य और तुर्कीभाषामें इसका यथेष्ट अनु-

† Journal of the Royal Asiatic Society for 1910, p. 456 off.

वाद हुआ है। इनमेंसे पारसीपण्डित हुसेन-वैज-कशोफो-का 'आनवर-इ-सुहैलि' समस्त मुसलमान-जगत्में प्रसिद्ध है। यूरोप और मुसलमान-जगत्के नाना स्थानोंमें इसके अनेक संस्करण प्रकाशित हुए हैं। इस ग्रंथमें हुसेनवैज ने हितोपदेशकी कुछ गल्पोंको ले कर उसमें स्वरचित कुछ गल्प भी जोड़ दो है। परंतु हितोपदेशकी सरल, सुललित और चित्ताकर्षी गल्पके सामने उनका रूपक अलङ्कार और अत्युक्तिपूर्ण कल्पना समान आसन नहीं पा सकती। अकबर बादशाहके मंत्री अबुलफजल हुसेन वैज-के उक्त दोषोंको व्यक्त कर पारस्यभाषामें यार-इ-दानिस (ज्ञानकी स्पर्शमणि) नामक एक और सरल अनुवाद प्रकाश कर गये हैं। यार-इ-दानिसका फिर 'खिराद अफ-रोज' नामक उर्दू अनुवाद हुआ है। इन दो ग्रंथोंका भारतीय मुसलमानसमाजमें बड़ा आदर है। इसके सिवा भारतकी आधुनिक सभी श्रेष्ठ भाषाओंमें हितोपदेश-का अनुवाद दिखाई देता है।

हिदायत (अ० स्त्री०) १ पथप्रदर्शन, रास्ता दिखाना। २ आदेश, निर्देश।

हिनहिनाना (हिं० क्रि०) घोड़ेका बोलना, हींसना।

हिनहिनाहट (हिं० स्त्री०) घोड़ेकी बोली।

हिना (अ० स्त्री०) मेंहदी।

हिन्ताल (सं० पु०) स्वनामख्यात वृक्षविशेष। एक प्रकारका जंगली खजूर। इसके पेड़ छोटे छोटे, जमीनसे दो तिन हाथ ऊँचे होते हैं। यह पेड़ देखनेमें बहुत सुन्दर होता है और दक्षिणके जंगलोंमें दलदलोंके किनारे और गोली जमीनमें बहुत पाया जाता है। अमरकंटकके आसपास यह बहुत होता है। संस्कृतके पुराने कविने इसका बहुत वर्णन किया है। यह तृणराजमें गिना जाता है। इस हिन्तालपत्र द्वारा दन्तधावन नहीं करना चाहिये। इसका गुण मधुराम्ल, कफवर्द्धक, पित्तज, दाह-नाशक, श्रमतृष्णापहारक, शीतल और वातदोषवर्द्धक माना गया है।

हिन्द (फा० पु०) भारतवर्ष। यह शब्द वास्तवमें 'सिंधु' शब्दका फारसी उच्चारण है। प्राचीन कालमें पारसिक-गण सिन्धुप्रवाहित पञ्चनद और उसके अधिवासियोंको 'हिन्दु' या 'हिन्दू' कहते थे। धीरे धीरे वही अपभ्रंष्ट हो कर 'हिन्द' रूपमें परिणत हुआ है। प्रथमतः 'हिन्द' शब्दसे सिन्धुप्रवाहित जनपद समझे जाने पर भी पीछे 'हिन्द' शब्द द्वारा समस्त भारतवर्षका बोध होता था। प्राचीन पारसिकोंसे ग्रीक लोगोंने भारतके सभी विषय मालूम किये, इस कारण ग्रीकोंके ग्रन्थमें 'हिन्द' Indoi नामसे ही वर्णित हुआ है। परवर्त्ती कालमें मुसलमान सम्राट् कैसर-इ-हिन्द अर्थात् भारतके सम्राट् कहलाते थे। अभी भारतेश्वर इङ्गलैण्डपति भी 'कैसर-इ-हिन्द' उपाधिसे विभूषित हैं।

प्राचीनकालमें भारतीय आर्यों और पारसिक आर्योंके बीच बहुत कुछ सम्बन्ध था। यज्ञ करानेवाले याजक बराबर एक देशसे दूसरे देशमें आते जाते थे। शाकद्वीपके मग ब्राह्मण पारस्यके पूर्वोत्तर भागसे ही आये हुए हैं। ईसासे ५०० वर्ष पहले दारयवुस् प्रथमके समयमें सिन्धु नदके आस पासके प्रदेश पर पारसियोंका अधिकार हो गया था। प्राचीन पारसी भाषामें संस्कृतके 'स'का उच्चारण 'ह' होता था। जैसे,—संस्कृत 'सप्त' फारसी 'हफ्त'। इसी नियमके अनुसार 'सिन्धु'-का उच्चारण प्राचीन पारस्य देशमें 'हिन्दु' या हिन्द होता था। पारसियोंके धर्म ग्रन्थ 'अवस्ता' में हफ्तहिन्दका उल्लेख है जो वेदोंमें भी सप्त-सिन्धुके नामसे आया है। धीरे धीरे 'हिन्द' शब्द सारे देशके लिये प्रयुक्त होने लगा। प्राचीन यूनानी जब पारस्य आये, तब उन्हें इस देशका परिचय हुआ और वे अपने उच्चारणके अनुसार फारसी 'हिन्द'को 'इण्डिया' 'इण्डिका' कहने लगे, जिससे आज कल 'इण्डिया' शब्द बना है।

हिन्द्कि—अफगानिस्तान और पारस्यसे ले कर रूस तक पाश्चात्य देशमें हिन्दू लोग इसी नामसे परिचित हैं। उन सब स्थानोंमें हिन्द्किका वास है। एकमात्र अस्त्राकान नगरमें ही प्रायः ५ सौ घर हिन्द्कि रहते हैं। इस वाणिज्यप्रधान शहरके हिन्द्कि वणिक् दूसरे देशके सभी वणिकोंसे बढ़ कर सम्मान पाते हैं। स्थानीय अधि-वासिमात्र ही इनकी बड़ी भक्तिश्रद्धा करते हैं। अफ-गानिस्तानमें जिन सब हिन्द्कियोंका वास है, किसी किसीके मतसे उनमेंसे बहुतेरे अरबपिता और हिन्दूमाता-के वंशधर हैं। कर्णाटकके नवाबके हबशीकी संतान भी एक समय हिन्दो या हिन्द्कि कहलाती थी।

हिन्दी (फा० वि०) हिंदी देखो।

हिन्दीभाषा—आर्यावर्त्तमें विशेषतः युक्तप्रदेश, विहार और मध्यप्रदेशमें प्रचलित भारतकी प्रधान भाषा। यही अभी भारतकी राष्ट्रीय भाषा समझी जाती है। इस भाषाकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई, नीचे उसीकी आलोचना की गई है,—

भारतीय आर्य्यजातिके आदिग्रन्थ वेद हैं। उस वैदिक भाषारूपी स्रोतस्वतीसे संस्कृत और प्राकृत दोनों ही धारा निकली है। पञ्चनद और सरस्वती-प्रवाहित कुरुक्षेत्रमें आर्यजातिकी बोल चालकी वैदिक भाषा प्रचलित थी। भारतमें आर्यों के आधिपत्यविस्तारके साथ साथ उस भाषामें दूसरी प्रादेशिक भाषा घुस गई। इसके सिवा कालके प्रभावसे बोल-चालकी भाषामें थोड़ा परिवर्तन हो गया। पाणिनि और निरुक्तकार यास्कके समय वैदिक और लौकिक संस्कृत भाषा बहुत कुछ पृथक् पृथक् हो गई थी। वैदिक संस्कृत और पाणिनि शब्द देखो।

पाणिनिने अपनी अष्टाध्यायीमें 'छान्दस' और 'भाषा' इन दो शब्दों द्वारा 'वैदिक' और अपने समयमें प्रचलित 'लौकिक संस्कृत' भाषाका ही उल्लेख किया है। अतएव इस समय वैदिक भाषा अप्रचलित थी, परन्तु तब भी संस्कृत-युग चलता था। इस संस्कृतका कथित भाषा रूपमें कब तक प्रचार रहा, वह आज भी अनिश्चित है। पर हां, हम लोग इतना अवश्य कह सकते हैं, कि बुद्धदेवके समय अर्थात् ढाई हज़ार वर्ष पहले संस्कृत जनसाधारणकी बोलचालकी भाषा नहीं समझी जाती थी। इस समय जनसाधारण या राजपुरुषगण जो भाषा समझते थे उसका 'गाथा' नाम रखा गया था। यह गाथा भाषा संस्कृत व्याकरणसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखती थी, इस कारण हम लोग उसे टूटी फूटी संस्कृत कह सकते हैं।

सम्राट् अशोकके समय उस समय प्रचलित प्रादेशिक भाषामें जो सब अनुशासन पाये गये हैं, वे गाथाके कुछ परवर्त्ती और पाली भाषाके पूर्वतन प्राकृतरूप समझे जाते हैं। गाथा और पाली देखो।

भारतवर्षमें प्राकृत भाषा बहुत प्राचीन कालसे ही कथित भाषारूपमें प्रचलित थी। देशभेदसे उस प्राकृतमें भी थोड़ा बहुत प्रभेद था। परन्तु यह प्राकृत जब लिखित भाषा रूपमें व्यवहृत होने लगी, तब आवश्यकतानुसार उसके संस्कारका भी प्रयोजन हुआ। उस सुसंस्कृत प्राकृत भाषाने ही पाली, मागधी या अर्द्धमागधी रूपमें प्रथम लिखित भाषाका स्थान अधिकार किया।

नाट्यसूत्रकार भरतके मतसे संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और मिश्र ये ही चार भाषा हैं। प्राकृत व्याकरणके अनुसार प्राकृत भाषा प्रधानतः संस्कृतभव, संस्कृतसम और देशी इन तीन श्रेणियोंमें विभक्त है। इन तीन श्रेणियोंमेंसे पालीको 'तत्सम' और अर्द्धमागधीको 'तद्भव' श्रेणीमें गिना जा सकता है। हेमचन्द्रने अपने प्राकृत व्याकरणमें अर्द्धमागधीको आर्ष-प्राकृतके मध्य गिना है। चण्डाचार्यके मतानुसार अर्द्धमागधी, महाराष्ट्री और शौरसेनीके प्राचीन रूपको ही आर्ष प्राकृत कह सकते हैं। चण्डने अपने 'प्राकृत लक्षण' नामक आर्ष प्राकृत व्याकरणमें प्राकृत भाषाको प्राकृत, मागधी, पैशाची और अपभ्रंश इन चार भागोंमें विभक्त किया है। परंतु वररुचिके मतसे मागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री और पैशाची यही चार प्रकारकी प्राकृत भाषा है। १२वीं सदीमें शेषकृष्णने अपनी प्राकृत-चन्द्रिकामें लिखा है—आर्ष, मागधी, शौरसेनी, पैशाची, चुलिका पैशाची और अपभ्रंश ये ही छः प्रकारकी मूल प्राकृत है। इन सब मूल प्राकृतसे देशभेद और अपभ्रंश भेदमें ६१ प्रकारकी प्राकृत प्रचलित हुई थी। कृष्ण पण्डितके मतसे इन ६१ प्रकारकी प्राकृत भाषामेंसे पाञ्चाल, कैकय, शौरसेनी, व्राचण्ड, गौड़, मागध, शावर, दाक्षिणात्य, द्राविड़, काञ्चीदेशीय और पाण्ड्य ये ग्यारह पिशाचज अर्थात् पैशाची भाषासे निकली हैं।

प्राकृत शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

पैशाची प्राकृतके उक्त प्रचलन स्थानसे मालूम होता है, कि उत्तरमें हिमालय, पूरबमें गौड़ देश तथा पश्चिममें मथुरा और व्रजमण्डल तक पैशाची प्राकृतका प्रचार था। पैशाची प्राकृतकी इस प्रकार विशेषता निर्दिष्ट हुई है—

"पैशाचिक्यां रणयोर्लनौ।" (प्राकृत लक्षण ३।३८)

पैशाचिकी भाषामें र और ण-की जगह ल और न होता है।

"यों, नः" (वररुचि-प्राकृत—प्रकाश १०।५)

मूर्द्धन्य 'ण'-की जगह दन्त्य 'न' होता है।

फिर एक विशेष लक्षण यह है—'रशषायां सः' (चण्ड—प्राकृत-लक्षण ३।१८) अर्थात् रेफयुक्त 'श' और 'ष' तथा केवल 'श' और 'ष' की जगह सभी स्थलोंमें 'स' हुआ करता है।

फिर एक विशेषता इस प्रकार है—'यस्य ज' (प्राकृत लक्षण ३।१५) 'य'-की जगह सर्वत्र 'ज' होता है।

वररुचिने लिखा है—

"पैशाची प्रकृतिः शौरसेनी।" (प्राकृत-प्रकाश १०।२)

अर्थात् पैशाची भाषाकी प्रकृति शौरसेनी है। अर्थात् शूरसेन या मथुरा (व्रजमण्डल)में जो प्राकृत भाषा प्रचलित थी, उससे भी प्राकृत भाषा पुष्ट हुई है।

ऊपर पैशाची प्राकृतकी जो विशेषता कही गई, प्राचीन हिन्दी भाषामें भी हम वैसी ही विशेषता देखते हैं—प्राचीन हिन्दीमें इसी प्रकार 'ण' की जगह 'न', 'ष' और 'श' की जगह 'स' और 'य' की जगह 'ज' हुआ करता है। प्राचीन हिन्दी भाषाके सम्बन्धमें कितने विद्वानोंने गहरी आलोचना की है, पर हम यहां उनका मत संक्षेपमें उद्धृत करते हैं—

प्राचीन कालमें कुरु पंचाल तथा पश्चिमके अन्य लोग कोशल (अवध), काशी (बनारसके चारों ओर), विदेह (उत्तर विहार) और मगध तथा अंग (दक्षिण विहार) वालोंको 'प्राच्य' कहते थे। अब भी दिल्ली मेरठ आदिके रहनेवाले इधरवालोंको पूर्विया और यहांकी भाषाको पूरबी हिन्दी कहा करते हैं। इन्हीं प्राच्योंकी प्राच्य भाषाका विकाश दो रूपोंमें हुआ। एक पश्चिमप्राच्य, दूसरी पूर्व प्राच्य। पश्चिम प्राच्यका अपने समयमें बड़ा प्रचार था, पर पूर्व प्राच्य एक विभाग मात्रकी भाषा थी। प्राकृत वैयाकरणोंके अनुसार हम पश्चिम प्राच्यको अर्द्धमागधी और पूर्व प्राच्यको मागधी कह सकते हैं। यह प्राचीन अर्द्ध-मागधी कोशलमें बोली जाती थी। अतः बुद्धदेवकी यही मातृ-भाषा थी। इसीसे मिलती जुलती भारतवर्षके पूर्व-खंडवासी आर्योंकी भाषा थी जिसमें महावीर स्वामी तथा बुद्धदेवने धर्मोपदेश किया था और जिसका उस समयके राजकुल तथा राजशासनमें प्रयोग होता था। मध्य तथा पूर्व देशोंमें उपलभ्यमान एक अशोक-सम्राट्के शिलालेखोंमें प्रयुक्त तथा उसके राजकुलकी भाषामें भी इस अर्द्धमागधी भाषाकी बहुत-सी विशेषताएं पाई जाती हैं। उस समय राजभाषा होनेके कारण इसका प्रभाव आज कल अंगरेजोकी तरह प्रायः समस्त भारतीय भाषाओं पर था। इसीसे इस अर्द्धमागधीकी छाप गिरनार, शाहबाजगढ़ी तथा मानसेराके लेखों पर भी काफी पाई जाती है। पिपरहवाका पात्र-लेख, सोहगौराका शिलालेख तथा अशोककी पूर्वीय धर्मलिपियां एवं मध्य एशियामें प्राप्त बौद्ध संस्कृत नाटकके लुप्तावशिष्ट अंश इसके प्राचीनतम प्रयोगस्थल है। जैनोंके 'समवायांग'में लिखा है, कि महावीर स्वामीने अर्द्ध-मागधीमें धर्मोपदेश किया और वह भाषा प्रयोगमें आते आते सभी आर्य, अनार्य, द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी, कीट, पतंगके हित, कल्याण तथा सुखके लिये परिवर्तित होती गई अर्थात् इसी मूल भाषासे प्राणिमात्रकी भाषाका जन्म हुआ। ज्ञान पड़ता है, कि महावीर स्वामीने इस भाषाको सर्वोच्च बनानेके लिये तत्काल प्रचलित अन्य भाषाओंके सुप्रसिद्ध शब्दोंका भी इसमें यथेष्ट सन्निवेश किया, जैसे कि आजकलके रमते साधु लोग भी धर्मोपदेशमें ऐसी ही खिचड़ी भाषाका प्रयोग किया करते हैं। ऊपरके अर्थवादका रहस्य तथा अर्द्ध-मागधी नामका अभिप्राय यही है। मागधी तो थी ही, अन्य भाषाओंके मेलसे वह पूरी मागधी न रही। अर्द्ध-मागधी हो गई। इसी अर्द्ध-मागधीसे अर्द्धमागधी, अपभ्रंश और उससे आजकलकी पूरबी हिन्दी अर्थात् अवधी, बघेली तथा छत्तीसगढ़ी निकली है।

आधुनिक देशभाषाओंके विचारसे पश्चिमी हिन्दी और विहारीके बीचकी भाषा पूरबी हिन्दी है और उसमें दोनोंके अंश वर्त्तमान हैं। आधुनिक भाषाओंके विवेचनके आधार पर अंतरंग, बहिरंग और मध्यवर्त्ती भाषाओंके ये तीन समूह नियत किये गये हैं।

यह एक निर्विवाद सिद्धान्त है, कि बोल-चालकी भाषामें जितना शीघ्र परिवर्त्तन होता है, उतना शीघ्र साहित्यकी भाषामें नहीं होता। जब प्राकृतने साहित्यमें पूर्णतया प्रवेश पा लिया और वह शिष्ट लोगोंके पठन-पाठन तथा

ग्रन्थनिर्माणकी भाषा हो गई, तब बोलचालकी भाषा अपनी स्वतन्त्र धारामें बहती हुई जनसमुदायके पारस्परिक भाव-विनिमयमें सहायता देती रही। इसी बोलचालकी भाषाको वैयाकरणोंने 'अपभ्रंश' नाम दिया है।

आगे चल कर प्राकृतकी भांति अपभ्रंश भी व्याकरणके नियमोंसे जकड़ दी गई और केवल साहित्यमें व्यवहृत होने लगी। पर उसका स्वाभाविक प्रवाह चलता रहा। क्रमशः यह भाषा एक ऐसे रूपको पहुंची जो कुछ अंशोंमें तो हमारी आधुनिक भाषाओंसे मिलता है और कुछ अंशोंमें अपभ्रंशसे। आधुनिक हिन्दी भाषा और शौरसेनी अपभ्रंशके मध्यकी अवस्था कभी कभी 'अवहट्ठ' कही गई है। 'प्राकृत पिंगल'में उदाहरण रूपसे सन्निविष्ट कविताएं इसी अवहट्ठ भाषामें हैं। इसी अवहट्ठको पिङ्गल भी कहते हैं और राजपूतानेके भाट अपनी डिंगलके अतिरिक्त इस पिंगलमें भी कविता करते रहे हैं। कुछ विद्वानोंने इसे 'पुरानी हिन्दी' नाम भी दिया है। यद्यपि इसका ठीक ठीक निर्णय करना कठिन है, कि इस अपभ्रंशका कब अन्त होता है और पुरानी हिन्दीका कहांसे आरंभ होता है, तथापि १२वीं सदीका मध्य भाग अपभ्रंशके अस्त और आधुनिक भाषाओंके उदयका काल यथाकथंचित् माना जा सकता है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है, कि पहले मूल भाषासे वैदिक संस्कृतकी उत्पत्ति हुई और फिर उसने कट-छंट या सुधर कर साहित्यिक रूप धारण किया, पर साथ ही वह बोलचालकी भाषा भी बनी रही।

भारतकी आधुनिक भाषाएं।

अन्तरंग और बहिरंग भाषाएं—आधुनिक भारतीय भाषाओंके विवेचनासे सिद्ध होता है, कि कुछ भाषाएं तो पूर्वागत आर्योंकी भाषाओंसे संबंध रखती हैं जो इस समय भी मध्य देशके चारों ओर फैली हुई हैं और कुछ परागत आर्योंकी भाषाओंसे संबद्ध हैं। इस आधार पर होर्नले और ग्रियर्सनने भारतकी आधुनिक भाषाओंके दो मुख्य विभाग किये हैं। उनमेंसे एक विभागकी भाषाएं तो उन प्रदेशोंमें बोली जाती हैं जो इस मध्यदेशके अन्तर्गत हैं और दूसरे विभागकी भाषाएं उन प्रदेशोंके चारों ओरके देशोंमें अर्थात् काश्मीर, पश्चिमी पंजाब, सिन्ध, महाराष्ट्र, मध्य भारत, उड़ीसा, बिहार, बङ्गाल तथा आसाममें बोली जाती हैं। एक गुजरात प्रदेश ही ऐसा है जिसमें बोली जानेवाली भाषाका संबंध बहिरंग भाषाओंसे नहीं, वरन् अन्तरंग भाषाओंसे हैं, और इसका कारण कदाचित् यही है, कि किसी समय इस गुजरात प्रदेश पर मथुरावालोंने विजय प्राप्त की थी और मथुरा नगरी उसी मध्यदेशके अन्तर्गत है।

अन्तरंग और बहिरंग भाषाओंमें प्रभेद यह है, कि अन्तरंग भाषाओंमें बहुधा 'स' का ठीक उच्चारण होता है, पर बहिरंग भाषाओंके भाषी शुद्ध दन्त्य 'स' का उतना स्पष्ट उच्चारण नहीं कर सकते। वे उसका उच्चारण कुछ कुछ तालव्य 'श' अथवा मूर्द्धन्य 'ष' के समान करते हैं। उक्त दोनों भाषाओंमें एक और अन्तर यह है, कि बहिरंग भाषाओंकी भूतकालिक क्रियाओंके साधारण रूपोंसे ही उनका पुरुष और वचन मालूम हो जाता है, पर अंतरंग भाषाओंमें सभी पुरुषोंमें उन क्रियाओंका रूप एक-सा रहता है। हिन्दीमें 'मैं गया', 'वह गया' और 'तू गया' सबमें 'गया' समान है, पर मराठीमें 'गेलों' से ही 'मैं गया" का बोध होता है और 'गेला' से वह गया का। तात्पर्य यह कि बहिरंग भाषाओंकी भूतकालिक क्रियाओंमें सर्वनाम भी अन्तर्भुक्त होता है, पर अन्तरंग भाषाओंमें यह बात नहीं पाई जाती।

परन्तु इस मतका अब खंडन होने लगा है और दोनों प्रकारकी भाषाओंके भेदके जो कारण ऊपर दिखाए गये हैं वे अन्यथा सिद्ध हैं, जैसे 'स' का 'ह' हो जाना केवल बहिरंगभाषाका ही लक्षण नहीं है, पर अन्तरंग मानी जानेवाली पश्चिमी हिन्दीमें ऐसा ही होता है। इसके तस्य—तस्स—तास=ताह=ता (ताको, ताहि इत्यादि) करिष्यति-करिस्सदि-करिसइ-करिहइ-करिहै एवं केसरीसे केहरि आदि बहुतसे उदाहरण मिलते हैं। इसी प्रकार बहिरंग मानी जानेवाली भाषाओंमें भी 'स' का प्रयोग पाया जाता है; जैसे—राजस्थानी (जयपुरी)-करसी, पश्चिमी पञ्जाबी-करेसी इत्यादि। इसी प्रकार संख्यावाचकोंमें 'स' का 'ह' प्रायः सभी मध्यकालीन तथा आधुनिक आर्य भाषाओंमें पाया जाता है। पश्चिमी

हिन्दी और पश्चिमी पञ्जाबी आदिमें सांसिद्धिक साधर्म्य अवश्य है। अब यदि इन भाषाओंका भेद कर सकते हैं तो यों कर सकते हैं, कि पूर्वी भाषाएं कर्त्तरिप्रयोग-प्रधान और पश्चिमी कर्मणिप्रयोग प्रधान होती हैं।

भाषाओंका वर्गीकरण—अन्तरंग भाषाओंके दो मुख्य विभाग हैं—एक पश्चिमी और दूसरा उत्तरी। पश्चिमी विभागमें पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती और पञ्जाबी ये चार भाषाएं हैं और उत्तरी विभागमें पश्चिमी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी और पूर्वी पहाड़ी ये तीन भाषाएं हैं। बहिरंग भाषाओंके तीन मुख्य विभाग हैं—उत्तर-पश्चिमी, दक्षिणी और पूर्वी। इनमेंसे उत्तर-पश्चिमी विभागमें कश्मीरी, कोहिस्तानी, पश्चिमी पञ्जाबी और सिंधी ये चार भाषाएं हैं। दक्षिणी विभागमें केवल एक मराठी भाषा है और पूर्वी विभागमें उड़िया, बिहारी, बंगला और आसामी ये चार भाषाएं हैं।

पश्चिमी हिन्दी—पश्चिमी हिन्दी पश्चिममें पंजाबके सरहिंद नामक स्थानसे पूर्वभागमें प्रयाग तक बोली जाती है। उत्तरमें इसका विस्तार हिमालयकी तराई तक और दक्षिणमें बुन्देलखण्ड तथा मध्य प्रदेशके कुछ उत्तरी भागों तक है। इसकी हिन्दी या हिंदुस्तानी, व्रज भाषा, कन्नौजी, बुंदेली आदि कई मुख्य बोलियां हैं, जिनमें दक्षिण-पूर्व पंजाबकी बांगड़ू और पूर्वी राजपुतानेकी कुछ बोलियां भी सम्मिलित की जा सकती है। आधुनिक हिन्दीको इन बोलियोंके सम्बन्धमें पूरा विवेचन आगे चल कर किया जायगा।

शुद्ध हिन्दीभाषा दिल्ली और मेरठके आस पासके प्रान्तोंमें बोली जाती है और वही प्रायः सारे उत्तरी भारतकी साहित्यकी भी भाषा है। हिन्दी और उर्दूका समस्त आधुनिक साहित्य इसी हिन्दुस्तानी या शुद्ध हिन्दी बोलीमें है। रुहेलखण्डमें पहुंच कर यही भाषा कन्नौजीका रूप धारण कर लेती है। अम्बालेसे आगे बढ़ने पर पञ्जाबी हो जाती है और गुड़गांवके दक्षिणपूर्वमें व्रजभाषा बन जाती है। यहां हम यह भी बतला देना चाहते हैं, कि इस भाषाका यह हिन्दुस्तानी नाम अङ्गरेजोंका रखा हुआ है, इसका शुद्ध भारतीय नाम हिन्दी ही है। उर्दू या रेखता और दक्खिनी आदि इसके वही रूपान्तर हैं, जो इसमें संस्कृत शब्दोंकी न्यूनता और अरबी तथा फारसी शब्दोंकी अधिकता करनेसे प्राप्त होते हैं।

इटावा, मथुरा और आगरा आदि व्रज भाषाके प्रधान क्षेत्र हैं। यह ग्वालियरके उत्तर-पश्चिमी विभाग और भरतपुर तथा कांकरौलीमें भी बोली जाती है। अधिक पश्चिम अथवा दक्षिण जाने पर यही राजस्थानीका रूप धारण कर लेती है। इस भाषाकी उत्पत्ति शौरसेनी प्राकृतसे है। इसका प्राचीन प्रसिद्ध साहित्य अवधीके साहित्यसे भी अधिक और बढ़ा चढ़ा है। उत्तर भारतके इधर चार पांच सौ वर्षोंके अधिकांश कवियोंने इसी भाषामें कविताएं की हैं। उनमेंसे सूर, तुलसी, बिहारी आदि अनेक ऐसे कवि भी हो गये हैं जिन्होंने अपनी कविताओंके कारण ही बहुत दूर दूर तक ख्याति प्राप्त कर ली है और जो इसी कारण अमर हो गये हैं।

कन्नौजी भाषाका विस्तार इटावे और प्रयागके बीचके प्रदेशमें है। यह हरदोई और उन्नावके भी कुछ विभागोंमें बोली जाती है। इसे व्रज भाषाका ही एक विकृत रूप समझना चाहिये।

बुन्देलखण्ड और उसके आस पास जालौन, झांसी, हमीरपुर और मध्य प्रदेशके कुछ जिलोंमें बुन्देली बोली जाती है, पर बांदेकी बोली बुंदेली नहीं, बघेली है। पन्नाके महाराज छत्रसालके समयसे बुंदेलीमें भी कुछ साहित्य पाया जाता है। इस प्रकार व्रज भाषा, कन्नौज और बुंदेलीका आपसमें बहुत सम्बन्ध है।

पञ्जाबके दक्षिण-पूर्वमें जो भाषा बोली जाती है, उसके कई स्थानिक नाम हैं। हिसार और झींदके आस पास हरियाना प्रान्तकी बोली 'हरियानी' कहलाती है और रोहतक, दिल्ली तथा करनालकी भाषा हिन्दी मानी जाती है। इसके भाषी मुख्यतः जाट हैं, इसलिये इसे जाटू भी कहते हैं। जिस प्रांतमें यह बोली बोली जाती है, उसका नाम बांगड़ है, इसलिये इसे बांगड़ू भी कहते हैं। इसका यही नाम कुछ अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। इसे पश्चिमी हिंदी, पञ्जाबी और मारवाड़ीका मिश्रण कहना चाहिये और इसके चारों ओर ये ही तीनों भाषाएं बोली भी जाती हैं।

बिहारी भाषा—सारे बिहार प्रदेश और उसके आस

पास संयुक्त प्रदेश, छोटा नागपुर और बंगालमें कुछ दूर तक बिहारी भाषा बोली जाती है। यद्यपि बङ्गाल और उड़ीसाकी तरह बिहारी भाषा भी मागध अपभ्रंशसे ही निकली है, तथापि अनेक कारणोंसे इसकी गणना हिंदीमें होती है और ठीक होती है। बिहारी भाषामें मैथिली, मगही और भोजपुरी तीन बोलियां हैं। मिथिला या तिरहुत और उसके आस पासके कुछ स्थानोंमें मैथिली बोली जाती है, पर उसका विशुद्ध रूप दरभंगेमें पाया जाता है। इस भाषाके प्राचीन कवियोंमें विद्यापति ठाकुर बहुत ही प्रसिद्ध और श्रेष्ठ कवि हो गये हैं, जिनकी कविताका अब तक बहुत आदर होता है। इस कविताका अधिकांश सभी बातोंमें प्रायः हिन्दी ही है। प्राचीन कालमें यही प्रदेश मगध कहलाता था। इस भाषामें कोई साहित्य नहीं है। भोजपुरी बोली शाहाबाद और उसके चारों ओर दूर दूर तक पश्चिमी बिहार, पूर्वी संयुक्त प्रान्त, पालामऊ, रांची, आजमगढ़ आदि स्थानों या उनके कुछ अंशोंमें थोड़े बहुत परिवर्त्तित रूपोंमें बोली जाती है। इस बोलीके तीन उपविभाग किये जा सकते हैं—शुद्ध भोजपुरी, पश्चिमी भोजपुरी और नागपुरिया। संयुक्त प्रान्तवालोंने पश्चिमी भोजपुरीका नाम 'पूर्वी' रख छोड़ा है जो बहुत ही उपयुक्त और सुन्दर है, पर कभी कभी इस 'पूर्वी' से ऐसी भाषाओंका भी बोध होता है जिनका भोजपुरीसे कुछ संबंध ही नहीं है। मैथिली और मगहीमें परस्पर कुछ विशेष सम्बंध है और भोजपुरी इन दोनोंसे अलग है।

पूर्वी हिन्दी—अन्तरंग और बहिरंग भाषाओंकी मध्यवर्ती भाषा पूर्वी हिंदी है। यह भाषा अर्द्धमागधीकी स्थानापन्न मानी जाती है और अवध, बघेलखंड, बुंदेलखण्ड, छोटानागपुर तथा मध्य प्रदेशके कुछ भागोंमें बोली जाती है। इसमें अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी ये तीन बोलियां सम्मिलित हैं। बघेली और अवधीमें परस्पर बहुत थोड़ा अन्तर है, पर मराठी और उड़ियाका प्रभाव पड़नेके कारण छत्तीसगढ़ी इन दोनोंसे बहुत भिन्न जान पड़ती है। पर फिर भी अवधीके साथ उसका घनिष्ठ संबन्ध देखनेमें आता है। अवधी-बघेली बोली संयुक्तप्रान्तके पूर्ण बुन्देलखण्ड, बघेलखण्ड और जबलपुर तथा मंडला आदि जिलोंमें बोली जाती है। फतहपुर और बांदेके बीचमें जहां यमुना नदी बहती है, उसके उत्तरमें और इलाहाबाद जिलेकी दक्षिणी सीमा तक अवधी बोलीका प्रचार है और उसके दक्षिणके प्रान्तोंमें बघेलीका। छत्तीसगढ़ और उसके आस पास उदयपुर, कोरिया, सरगुजा आदि रियासतोंमें छत्तीसगढ़ी बोली जाती है। तात्पर्य्य यह, कि उत्तरमें नेपालकी तराईसे ले कर दक्षिणमें बस्तर रियासत तक पूर्वी हिन्दीका प्रचार है। परन्तु इसका जितना अधिक विस्तार उत्तर-दक्षिणमें है उतना अधिक पूर्वापश्चिममें नहीं है।

हिन्दी पर अन्य भाषाओंका प्रभाव—हिन्दीके संबंधमें विचार करनेके समय यह स्मरण रखना चाहिये, कि इसका उदय क्रमशः शौरसेनी और अर्द्धमागधी प्राकृतों तथा शौरसेनी और अर्द्धमागधी अपभ्रंशोंसे हुआ है। अतएव जब हम हिन्दीके शब्दोंकी उत्पत्ति तथा उसके व्याकरणके किसी अंग पर विचार करते हैं, तब हमें यह जान लेना आवश्यक होता है, कि प्राकृतों या अपभ्रंशोंमें उन शब्दोंके क्या रूप या व्याकरणके उस अंगकी क्या व्यवस्था होती है।

विदेशी प्रभाव—हमारी भाषा पर भारतवर्षकी अन्यान्य भाषाओं तथा विदेशियोंकी भाषाओंका भी कम प्रभाव नहीं पड़ा है। द्रविड़ भाषाओंके बहुतसे शब्द संस्कृत और प्राकृतोंमें मिल गये हैं और उनमेंसे होते हुए हिन्दी भाषामें आ गये हैं। टवर्गी अक्षरोंके विषयमें बहुतोंका यह कहना है, कि इनका आगमन संस्कृत और प्राकृतमें तथा उनसे हिन्दी भाषामें द्रविड़ भाषाओंके प्रभावके कारण हुआ है। डाक्टर ग्रियर्सनकी सम्मति है, कि द्रविड़ भाषाओंके केवल शब्द ही हमारी भाषामें नहीं मिल गये हैं, वरन् उनके व्याकरणका भी उस पर प्रभाव पड़ा है। द्रविड़ विभक्तियोंकी अनुरूपता हमारी विभक्तियोंके जिस रूपमें पाई गई, वही रूप अधिक ग्राह्य समझा गया। मिस्टर केलागका कहना है, कि टवर्गके अक्षरोंसे आरंभ होनेवाले अधिकांश शब्द द्रविड़ भाषाके हैं और प्राकृतोंसे हिन्दीमें आये हैं। उन्होंने हिसाब लगा कर बताया है, कि प्रेम-

सागरके टवर्गके अक्षरोंसे आरंभ होनेवाले ८९ शब्दोंमेंसे २१ संस्कृतके तत्सम और ६८ प्राकृतके तद्भव हैं और 'क' से आरंभ होनेवाले १२८ शब्दोंमेंसे २१ तद्भव और १०७ तत्सम हैं। इससे यह सिद्धान्त निकालते हैं, कि भारतवर्षके आदिम द्रविड़ निवासियोंकी भाषाओंका जो प्रभाव आधुनिक भाषाओंपर पड़ा है, वह प्राकृतोंके द्वारा पड़ा है।

अब कई आधुनिक आर्य्य भाषाओंके भी शब्द हिन्दीमें मिलने लगे हैं, जैसे—मराठीके लागू, चालू, बाजू आदि; गुजरातीके लोहनी, कुनबी, हड़ताल आदि और बंगला-के प्राणपण, चूड़ान्त, भद्र लोग, गल्प, नितान्त, सुविधा आदि। इसी प्रकार कुछ अनार्य्य-भाषाओंके शब्द भी मिले हैं, जैसे—तामिल पिल्लईसे पिल्ला, शुलुट्टुसे चुरुट; तिब्बती—चुंगी; चीनी—चाय; मलय—साबू इत्यादि।

हिन्दीके शब्दभाण्डार पर मुसलमानों और अङ्गरेजोंकी भाषाओंका भी कुछ कम प्रभाव नहीं पड़ा है। मुसलमानोंकी भाषाएं फारसी, अरबी और तुर्की मानी जाती हैं। इन तीनों भाषाओंके शब्दोंका प्रयोग मुसलमानों द्वारा अधिक होनेके कारण तथा मुसलमानोंका उत्तरी भारत पर बहुत अधिक प्रभाव पड़नेके कारण ये शब्द हमारी बोलचालकी भाषामें बहुत अधिकतासे मिल गये हैं और इसी कारण साहित्यकी भाषामें भी इनका प्रयोग चल पड़ा है, पर यहां इस बातका ध्यान रखना चाहिये, कि इनमेंसे अधिकांश शब्दोंका रूपात्मक विकाश हो कर हिन्दी भाषामें आगम हुआ है। यह एक साधारण सिद्धान्त है; कि ग्राह्य भाषाका विजातीय उच्चारण ग्राहक भाषाके निकटतम सजातीय उच्चारणके अनुकूल हो जाता है। इसी सिद्धान्तके अनुसार मुसलमानी शब्दोंका भी हिन्दीमें रूपान्तर हुआ है।

मुसलमानी भाषाओंसे आये हुए शब्दोंमें आगमन, विपर्य्यय और लोप संबंधी भेद भी प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं; जैसे मर्दसे मरद, फिक्रसे फिकर, अमानतसे अनामत।

इन भाषाओंमें आये हुए कुछ शब्दोंका यदि यहां निर्देश कर दिया जाय तो अनुचित न होगा। सुभीतेके लिये इनके विभाग कर दिये जायें तो और अच्छा हो।

राजकाज, लड़ाई, आखेट आदिके—अमीर, उमरा, खानदान, खिताब, ख्याल, खास, तख्त, ताज, दरबार, दौलत, नकीब, नवाब, बादशाह, मिर्जा, मालिक, हजूर, हजरत, कूच, कतार, काबू, खंजर, जखम, जंजीर, जमादार, तबक, तंबू, तोप, दुश्मन, नगद, नेजा, फौज, फौत, बहादुर, वजीर मनसबदार, रसद, रिसाला, शिकार, शमशेर, सरदार, हलका हिम्मत आदि।

राजकर, शासन और दंडविधान आदि—औलाद, मर्दुम-शुमारी, आबाद, इस्तमरारी, वासिल, कब्जा, कसबा, खजाना, खारिज, गुमाश्ता, चाकर, जमा, जमीन, जायदाद तहवील, ताल्लुक, दारोगा, दफ्तर, नाजिर, प्यादा, फिहरिस्त, बाब, बीमा, महकमा, माफ, मोहर, रैयत, शहर, सन, सरकार, सजा, हद्द, हिसाब, हिस्सा, आइना, अदालत, इजहार, इलाका, उज्र, कसूर, काजी, कानून, खिलाफ, सिरिश्ता, सुलहनामा, जौजे, जबान, जब्त, जारी, जिरह, तकरार, तामोल, दरखास्त, दलील, दस्तखत, नाबालिग, नालिश, पेशा, फ़रियादी, करार, बखरा, बाजाब्ता, मुकद्दमा, मुंसिफ, रद, राय, रुजू, शिनाख्त, सफाई, सालिस, हक, हाकिम, हाजत, हुलिया, हिफाजत आदि।

धर्मसम्बन्धी आदि—वजू, औलिया, अल्ला, इंजील, इबादत, ईमान, इसलाम, ईद, कबर, कफन, कलंदर, काफिर, काबा, गाजी, जल्लाद, जुम्मा, तोबा, ताजिया, दरगाह, दरवेश, दीन, दुआ, नबी, नमाज, निकाह, नूर, फरिश्ता, रोजा, बिस्मिल्ला, बुजुर्ग, मसजिद, मुहर्रम, मुरीद, मोमिन, मुल्ला, शरीयत, शहीद, शिरनी, शिया, हदीस, हलाल आदि।

विद्या, कला, साहित्य संबंधी—अदब, आलिम, इज्जत, इम्तिहान, इल्म, खत, गजल, तरजुमा, दरद, कसीदा, मजलिस, मुंशी, रेखता, शरम, सितार, हरूफ आदि।

विलासिता, व्यवसाय, शिल्प आदि संबंधी—अस्तुरा, आइना, अखनी, अंगूर, अचकन, अतर, आतिशबाजी, आबनूस, अर्क, इमारत, कागज, कलफ़, कुलुफ, कीमखवाब, किशमिश, बर्फी, कोर्मा, कसाई, खरबूजा, खाल, खानसामां, खस्ता, गज, गिर्दा गुलाब, गोश्त, चरखा, चश्मा, चपकन, चाबुक, चिक, जरी, जर्दा, जवाहिरात, जामा, जुलाब, ताफता, तकमा, तराजू, तसवीर, तकिया, दालान, दस्ताना, दवा, दूर्बीन, दवात, नारंगी, परदा,

पाजामा, पुलाव, फराश, फानूस, फुहारा, बरफ, बागोचा, बादाम, बुलबुल, मखमल, लबादा, मलहम, मसाला, मलाई, मिश्री, मीना, मेज, रफू, रूमाल, रिकाब, रेशम, लगाम, शहनाई, शाल, शीशी, संदूक, सुर्खी, सुराही, हलुवा, हुक्का, हौज, हौदा आदि।

भिन्न भिन्न देशवासियों के नाम—अरब, अरमनी, यहुदी उजबक, तिब्बती, विलायती, हबशी इत्यादि।

साधारण वस्तुओं और भावों के लिये—अंदर, आवाज, अक्सर, आबहवा, आसमान, असल, इलत, कदम, कम, कायदा, कारखाना, कमर, खबर, खुराक, गरज, गरम, गुजरान, चंदा, जल्दी, जानवर, जहाज, जिद, तलाश, ताजा, दखल, दम, दरकार, दगा, दाना, दुकान, नकद, नमूना, नरम, निहायत, नशा, पसंद, परी, फुरसत, बदजात, बंदोबस्त, बदहवाई, बेवकूफ, मजबूत, मियाँ, मुर्गा, मुलुक, यार, रकम, रोशनाई, वजन, सौदा, साफ, हफ्ता, हजार, हजम, होशियार, हजूम आदि।

थोड़े से तुर्की शब्दों का पृथक् दिग्दर्शन कराना भी उपयोगी होगा—

आगा, उजबक (ओजबेक), उर्दू (ओर्दू=खेमा), कलंगा (कलगः), कैंची (कैची), काबू (कापू=चाल, अवसर, अधीनता, अधिकार, पकड़), कुली (कुली=गुलाम), कोतका=ठेंगा (कुतका=दण्डा), कोर्मा (कवुर्मा), खातुन=महिला (ख़ातून), खान, खां (ख़ान खाकान), गलीचा (कलीचा), चकमक (चक़मक़), चाकू (चाक़ू), चिक (फा० चिग, तु० चिक्), तमगा (तमगा), तुपक, तोप, तगाड़=सुर्खी चूनेका गड्ढा (तगार), तुरुक (तुर्क), दरोगा (दारोग़ा), बक्सी (फा० बख़शी, तु० बक्सी), बावर्ची, (बावर्ची), बहादुर, बीबी, बेगम (बेगुम), बकचा=बण्डल (बक़्चा), मुचलका, लाश, सौगात, सुराक़=पता (सुराग) और 'ची' प्रत्यय जैसे मशालची, खजानची इत्यादि। इनके अतिरिक्त पठान (पश्तान), रोहिल्ला (पश्तो रोह=पहाड़) आदि कुछ शब्द पश्तो भाषाके भी मिलते है।

यूरोपीय भाषाओंके शब्द भी जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, हमारी भाषामें मिल गये हैं और वर्त्तमान समयमें तो बहुत अधिकतासे मिलते जाते हैं। इन शब्दोंमें से थोड़े से शब्द तो पुर्तगाली भाषाके हैं, जैसे Cameraसे कमरा, Martello से मारतौल, Lelloसे नोलाम; कुछ फ्रेंच भाषाके, जैसे Cartouch-से कारतूस, Franchisसे फरासीसी, Anglaisसे अंगरेज; कुछ डच भाषाके, जैसे Troef-से तुरुप (ताशका खेल), Boomसे बम (गाड़ीका); पर अंगरेजी भाषाके शब्दोंकी संख्या हमारी भाषामें बहुत अधिक हो गई है और नित्य बढ़ती जा रही है। इनमेंसे कुछ शब्द तो तत्सम रूपमें आये हैं, पर अधिकांश शब्द तद्भवरूपमें आये हैं। तत्सम रूपमें आये हुए शब्दोंके कुछ उदाहरण ये हैं—इञ्च, फुट, अमोनिया, बेंच, बिल, बोर्ड, वोट, बार्डर, बजेट, बटन आदि। तद्भव शब्दोंके संबंधमें आगम, विपर्यय, लोप और विकारके नियमोंका स्पष्ट प्रभाव देख पड़ता है, जैसे—(१) Sample-से सैंपुल, Recruitसे रंगरूट, Dozenसे दर्जन, (२) General-से जनरल, Deskसे डेक्स, (३) Reportसे रपट, Pantaloonसे पतलून, Magistrateसे मजिस्टर, Lanternसे लालटेन, Hundredweight से हंडर या हंडरवेट Town duty-से टून डूटी, Time से टेम, Ticket-से टिकट Quinineसे कुनैन, Kettleसे केतली। इन उदाहरणोंको देखनेसे यह स्पष्ट होता है, कि शब्दोंके रूपात्मक विकाशमें आगम, विपर्यय, लोप और विकारके नियमोंमेंसे कोई एक नियम किसी एक शब्दके रूपके परिवर्तित होनेमें नहीं लगता, वरन् दो या अधिक नियम एक साथ लगते हैं।

ऊपर जो कुछ कहा गया है, उससे यह मुख्य सिद्धान्त निकलता है, कि हिन्दी भाषामें प्राचीन आर्य भाषाओंके अथवा विदेशी भाषाओंके जो शब्द आये हैं, वे या तो तत्सम रूपमें ही आये हैं, अथवा तद्भव रूपमें। अधिकांश शब्द तद्भव रूपमें ही आये हैं। तत्सम शब्दोंकी संख्या बहुत कम है, पर साथ ही यह प्रवृत्ति भी देख पड़ती है, कि जो लोग प्राचीन आर्य भाषाओंके अथवा विदेशी भाषाओंके ज्ञात हैं, वे उन भाषाओंके शब्दोंको तत्सम रूपमें ही व्यवहृत करनेका उद्योग करते हैं। यह प्रवृत्ति यहां तक बढ़ रही है, कि रूपात्मक विकाशके सिद्धान्तोंकी भी परवा न करके लोग उन शब्दोंको शुद्ध विदेशी या प्राचीन रूपमें ही अपनी भाषा

में रक्षित रखना चाहते हैं। इससे एक ओर तो नये उच्चारणोंके लिये, जो हमारी भाषामें वर्तमान नहीं हैं, नये चिह्नोंके बनानेकी आवश्यकता उपस्थित हो गई है और दूसरी ओर हमारी भाषाकी पाचनशक्तिमें व्याघात पहुंच रहा है। संस्कृत, पारसी और अङ्गरेजीके विद्वानों को यह ध्यान रखना चाहिये, कि अपने पाण्डित्यकी कौंधके आगे वे कहीं अपनी मातृभाषाको विवर्ण और छिन्न भिन्न न कर दें।

हिन्दीके विकाशकी अवस्थाएं—हिन्दीका विकाश क्रमशः प्राकृत और अपभ्रंशके अनन्तर हुआ है। पर पिछली अपभ्रंशमें भी हिन्दीके बीज बहुत स्पष्ट रूपमें दिखाई पड़ते हैं। इसीलिये इस मध्यवर्ती अपभ्रंश भाषाको कुछ विद्वानोंने पुरानी हिन्दी माना है। यद्यपि अपभ्रंशकी कविता बहुत पीछेकी बनी हुई भी मिलती है परन्तु हिन्दीका विकाश चंद बरदाईके समयसे स्पष्ट देख पड़ने लगता है। इसका समय १२वीं सदीका अन्तिम अर्द्धभाग है। परन्तु उस समय भी इसकी भाषा अपभ्रंशसे बहुत भिन्न हो गई थी। अपभ्रंशका उदाहरण नीचे दिया जाता है—

"भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि महारा कंतु।
लज्जेजं तु वयंसिअहु जइ भग्गा घरु एंतु॥१॥
पुत्तें जाएं कवणु गुणु अवगुंणु कवणु मुएण।
जा बप्पीको भुंहडी चम्पिज्जइ अवरेण"॥२॥

दोनों दोहे हेमचन्द्रके हैं जिनका जन्म संवत् ११४५में और मृत्यु सं० १२२९में हुई थी। अतएव यह माना जा सकता है, कि ये दोहे सं० १२००के लगभग अथवा उसके कुछ पूर्व लिखे गये होंगे। अब हिन्दीके आदि कवि चन्दके कुछ छंद ले कर मिलाइये और देखिये दोनोंमें कहां तक समता है।

"उच्चिष्ठ छंद चंदह वयन सुनत सुजंपिय नारि।
तनु पवित्त पावन कविय उकति अनूठ उधारि॥
ताड़ी खुल्लिय ब्रह्म दिक्खि इक असुर अदब्भुत्।
दिग्घ देह चख सीस मुष्प करुना जस जप्पत॥"

हेमचन्द्र और चंदकी कविताओंको मिलानेसे यह स्पष्ट विदित होता है, कि हेमचंद्रकी कविता कुछ प्राचीन है और चंदकी उसकी अपेक्षा कुछ अर्वाचीन।

इस अवस्थामें यह माना जा सकता है, कि हेमचंद के समयसे पूर्व हिंदीका विकाश होने लग गया था और चंदके समय तक उसका कुछ कुछ रूप स्थिर हो गया था, अतएव हिन्दीका आदि काल हम सं० १०५० के लगभग मान सकते हैं।

चन्दका समकालीन जगनिक कवि हुआ है, जो बुन्देलखण्डके प्रतापी राजा परमालके दरबारमें था। यद्यपि इस समय उसका बनाया कोई ग्रन्थ नहीं मिलता, पर यह माना जाता है; कि उसके बनाये ग्रन्थके आधार पर ही आरम्भमें 'आल्हखण्ड' की रचना हुई थी। हिन्दीके जन्मका समय भारतवर्षके राजनीतिक उलट फेरका था। उसके पहले होसे यहां मुसलमानोंका आना आरम्भ हो गया था और इस्लाम धर्मके प्रचार तथा उत्कर्षवर्द्धनमें उत्साही और दृढ़ संकल्प मुसलमानोंके आक्रमणोंके कारण भारतवासियोंको अपनी रक्षाकी चिंता लगी हुई थी। ऐसी अवस्थामें साहित्यकलाकी वृद्धिकी किसको चिंता हो सकती थी। ऐसे समयमें तो वे ही कवि सम्मानित हो सकते थे जो केवल कलम चलानेमें ही निपुण न हो, वरन् तलवार चलानेमें भी सिद्धहस्त हो तथा सेनाके अग्रभागमें रह कर अपनी वाणी द्वारा सैनिकोंका उत्साह बढ़ानेमें भी समर्थ हों। चंद और जगनिक ऐसे ही कवि थे, इसीलिये उनकी स्मृति अब तक बनी है। परन्तु उनके अनन्तर कोई सौ वर्ष तक हिन्दीका सिंहासन सूना देख पड़ता है। अतएव हिंदीका आदि काल संवत् १०५०के लगभग आरम्भ हो कर १३७५ तक चलता है। इस कालमें विशेष कर वीर-काव्य रचे गये थे। ये काव्य दो प्रकारकी भाषाओंमें लिखे जाते थे। एक भाषाका ढाँचा तो बिलकुल राजस्थानी या गुजराती होता था जिसमें प्राकृतके पुराने शब्द भी बहुतायतसे मिले रहते थे। यह भाषा जो चारणोंमें बहुत काल पीछे तक चलती रही है, डिंगल कहलाती है। दूसरी भाषा एक सामान्य साहित्यिक भाषा थी जिसका व्यवहार ऐसे विद्वान् कवि करते थे जो अपनी रचनाको अधिक देशव्यापक बनाना चाहते थे। इसका ढाँचा पुरानी ब्रजभाषाका होता था जिसमें थोड़ा बहुत खड़ी या पञ्जाबीका भी मेल हो जाता था। इसे पिङ्गल भाषा कहने लगे थे। वास्तवमें हिंदीका संबंध

इसी भाषासे है। पृथवीराजरासो इसी साहित्यिक सामान्य भाषामें लिखा हुआ है। बीसलदेवरासोकी भाषा साहित्यिक नहीं है। पर हां, यह कहा जा सकता है, कि उसके कविने जगह जगह अपनी राजस्थानी बोलीमें इस सामान्य साहित्यिक भाषा (हिंदी) को मिलानेका प्रयत्न अवश्य किया है।

डिंगलके ग्रन्थोंमें प्राचोनताको झलक उतनी नहीं है जितनी पिङ्गल ग्रन्थोंमें पाई जाती है। राजस्थानी कवियोंने अपनी भाषाको प्राचीनताका गौरव देनेके लिये जान बूझ कर प्राकृत अपभ्रंशके रूपोंका अपनी कवितामें प्रयोग किया है। इससे भाषा वीरकाव्योपयोगी अवश्य हो जाती है, पर साथ ही उसमें दुरूहता भी आ जाती है।

इसके अनन्तर हिन्दीके विकासका मध्य काल आरम्भ होता है जो ५२५ वर्षों तक चलता है। भाषाके विचार-से इस कालको हम दो मुख्य भागोंमें विभक्त कर सकते हैं—एक सं० १३७५-से १७०० तक और दूसरा १७०० से १९०० तक। प्रथम भागमें हिन्दीकी पुरानी बोलियां बदल कर व्रजभाषा, अवधो और खड़ी बोलीका रूप धारण करती हैं और दूसरे भागमें प्रौढ़ता आती है; तथा अन्तमें अवधी और व्रजभाषाका मिश्रण-सा हो जाता है और काव्य भाषाका एक सामान्य रूप खड़ा हो जाता है। इस कालके प्रथम भागमें राजनीतिक स्थिति डांवांडोल थी। पीछेसे उसमें क्रमशः स्थिरता आई जो दूसरे भागमें दृढ़ताको पहुंच कर पुनः डांवांडोल हो गई। हिन्दीके विकाशकी चौथी अवस्था संवत् १९०० में आरंभ होती है। उसी समयसे हिन्दी गद्यका विकाश नियमितरूपसे आरंभ हुआ है और खड़ी बोलीका प्रयोग पद्य और गद्य दोनोंमें होने लगा है।

व्रजभाषा एक प्रकारसे चिर प्रतिष्ठित प्राचीन काव्य-भाषाका विकसित रूप है। पृथ्वीराजरासोमें हो इसके ढांचेका बहुत कुछ आभास मिल जाता है—

"तिहिं रिपुजय पुरहरन को भये प्रथिराज नरिंद।"

सूरदासके रचनाकालका आरंभ संवत् १५७५ के लगभग माना जाता है। उस समय तक काव्य-भाषाने व्रजभाषाका पूरा पूरा रूप पकड़ लिया था, फिर भी उसमें क्या क्रिया, क्या सर्वनाम और क्या अन्य शब्द सबमें प्राकृत तथा अपभ्रंशका प्रभाव देखाई देता है। पुरानी काव्य-भाषाका प्रभाव व्रजभाषामें अब तक लक्षित होता है।

उत्तर या वर्त्तमान कालमें साहित्यकी भाषामें व्रज-भाषा और अवधीका प्रचार घटता गया और खड़ी बोलो-का प्रचार बढ़ता गया। इधर इसका प्रचार इतना बढ़ा, कि अब हिन्दीका समस्त गद्य इस भाषामें लिखा जाता है और पद्यकी रचना भी बहुलतासे इसीमें हो रही है।

आधुनिक हिन्दी गद्य या खड़ी बोलीके आचार्य शुद्धताके पक्षपाती थे। वे खड़ी बोलीके साथ उर्दू या फारसीका मेल देखना नहीं चाहते थे। इंशाअल्ला तक-की यही सम्मति थी। उन्होंने 'हिन्दी छुट किसीको पुट' अपनी भाषामें न आने दी, यद्यपि पारसी रचनाकी छूत-से वे अपनी भाषाको न बचा सके। इसी प्रकार आगरा-निवासी लल्लू-लालकी भाषामें व्रजका पुट है और सदल मिश्रकी भाषामें पूरबीकी छाया वर्त्तमान है, परन्तु सदा-सुखलालकी भाषा इन दोनोंसे मुक्त है।

परन्तु अब राष्ट्रीय आन्दोलनमें मुसलमानोंके आ मिलनेसे तथा हिन्दुओंके उनका मन रखनेके कारण एक नई स्थिति उत्पन्न हो गई है। वही राष्ट्रीयता जिसके कारण पहले शुद्ध हिन्दीका आन्दोलन चला था, अब मिश्रणकी पक्षपातिनी हो रही है और अपनी गौर-वान्वित परम्पराको नष्ट कर राजनीतिक स्वर्गलाभकी आशा तथा आकांक्षा करती है। अब प्रयत्न यह हो रहा है, कि हिन्दी और उर्दूमें लिपिभेदके अतिरिक्त और कोई भेद न रह जाय और ऐसी मिश्रित भाषाका नाम हिन्दु-स्तानी रखा जाय। हिन्दी यदि हिन्दुस्तानी बन कर देशमें एकच्छत्र राज्य कर सके तो नाम और वेशभूषाका यह परिवर्त्तन महार्ग न होगा, पर आशंका इस बातकी है, कि अध्रुवके पीछे पड़ कर हम ध्रुवको भी नष्ट न कर दें।

इस एकताके साथ साथ साहित्य और बोलचाल तथा गद्य और पद्यकी भाषाको एक करनेका उद्योग वर्त्त-मान युगकी विशेषता है।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उसका विशेष संबंध साहित्यकी भाषासे है। बोलचालमें तो अब तक अवधी

व्रजभाषा और खड़ी बोली अनेक स्थानिक भेदों और उपभेदोंके साथ प्रचलित हैं, पर साधारण बोलचालकी भाषा खड़ी बोली ही है।

हिन्दीकी उपभाषाएं।

हिन्दीके विकाशके भिन्न भिन्न कालोंमें भिन्न भिन्न बोलियोंके नाम दिये हैं। इनमें मुख्य राजस्थानी, अवधी, व्रज भाषा और खड़ी बोली हैं। बुंदेलखण्डी स्थूल दृष्टिसे व्रजभाषाके अन्तर्गत आती है। नीचे उनका अलग अलग विचार किया गया है।

राजस्थानी भाषा—यह भाषा राजस्थानमें बोली जाती है। इसके पूर्वमें व्रजभाषा और बुंदेली, दक्षिणमें बुंदेली, मराठी, भीली, खानदेशी और गुजराती, पश्चिममें पंजाबी तथा उत्तरमें पश्चिमी पंजाबी और बाँगडू भाषाओंका प्रचार है। इनमेंसे मराठी, सिंधी और पश्चिमी पंजाबी बहिरंग शाखाकी भाषाएं हैं और शेष सब अन्तरंग शाखा की।

राजस्थानी भाषाकी चार बोलियाँ हैं—मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती और मालवी इनके अनेक भेद उपभेद हैं। मारवाड़ीका पुराना साहित्य डिंगल नामसे प्रसिद्ध है। जो लोग व्रजभाषामें कविता करते थे, उनकी भाषा पिंगल कहलाती थी और उससे भेद करनेके लिये मारवाड़ी भाषाका उसीकी ध्वनि पर गढा हुआ डिंगल नाम पड़ा। जयपुरीमें भी साहित्य है। दादूदयाल और उनके शिष्योंकी वाणी इसी भाषामें है। मेवाती और मालवीमें किसी प्रकारके साहित्यका पता नहीं चला है। इन भिन्न भिन्न बोलियोंकी बनावट पर ध्यान देनेसे यह प्रकट होता है, कि जयपुरी और मारवाड़ी गुजरातीसे, मेवाती व्रज भाषासे और मालवी बुंदेलखंडीसे बहुत मिलती जुलती है। राजस्थानी भाषा वाक्य-विन्यासके संबंधमें गुजरातीका अनुकरण करती है।

अवधी—इस भाषाका प्रचार अवध, आगरा प्रदेश, बघेलखंड, छोटानागपुर और मध्य-प्रदेशके कई भागोंमें है। इसकी प्रचार-सीमाके उत्तरमें नेपालकी पहाड़ी भाषाएं, पश्चिममें पश्चिमी हिन्दी, पूर्वमें बिहारी तथा उड़िया और दक्षिणमें मराठी भाषा बोली जाती ह।

अवधीके अन्तर्गत तीन मुख्य बोलियां हैं—अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी। अवधी और बघेलीमें कोई अन्तर नहीं है। बघेलखंडमें बोली जानेके ही कारण वहां अवधीका नाम बघेली पड़ गया है। छत्तीसगढ़ी पर मराठी और उड़ियाका प्रभाव पड़ा है और इस कारण यह अवधीसे कुछ बातोंमें भिन्न हो गई है। हिन्दी साहित्यमें अवधी भाषाने एक प्रधान स्थान ग्रहण किया है। इसके मुख्य दो कवि मलिक मुहम्मद जायसी और गोस्वामी तुलसीदास जी हैं।

व्रजभाषा—यह अन्तरंग समुदायकी सबसे मुख्य भाषा है। यह शौरसेनी प्राकृत और शौरसेनी अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी है। इसका मुख्य स्थान व्रजमण्डल है, पर इसका प्रचार दक्षिणकी ओर आगरे, भरतपुर, धौलपुर और करौलीमें तथा ग्वालियरके पश्चिम भाग और जयपुरके पूर्वी भागमें है। उत्तरकी ओर यह गुड़गांव जिलेके पूर्वी भाग तक बोली जाती है। उत्तर-पूर्वकी ओर इसका प्रचार बुलंदशहर, अलीगढ़, एटा, मैनपुरी, बदाऊं, बरेली होते हुए नैनीतालके तराई परगनों तक चला गया है। इसका केन्द्रस्थान मथुरा है, और वहांकी भाषा शुद्ध व्रजभाषा है। इस केन्द्रस्थानसे जिधर जिधर यह फैली है, उधर उधरकी भाषाओंसे संसर्ग होनेके कारण इसके रूपमें कुछ न कुछ विकार हो गया है।

बुन्देली भाषा—व्रजसे मिलती जुलती या उसकी एक शाखा बुंदेली या बुंदेलखंडी भी है, जिसकी छाया कवियोंकी भाषामें बराबर मिलती है। यह भाषा बुंदेलखण्ड, ग्वालियर और मध्य प्रदेशके कुछ जिलोंमें बोली जाती है। इसकी विस्तार-सीमाके पूर्व ओरकी हिन्दीकी बघेली बोली, उत्तर पश्चिमकी ओर व्रजभाषा, दक्षिण पश्चिमकी ओर राजस्थानी और दक्षिणकी ओर मराठी भाषाका साम्राज्य है। उत्तर, पूर्व और पश्चिमकी ओर तो यह क्रमशः उन दिशाओंमें बोली जानेवाली भाषाओंमें लीन हो जाती है। वहां इसका मिश्र रूप देख पड़ता है, पर दक्षिणकी ओर यह मराठीसे बहुत कम मिलती है। यद्यपि इसकी कई बोलियां बताई जाती हैं, पर वास्तवमें सर्वत्र इसका एक-सा ही रूप है। इधर उधर जो अन्तर देख पड़ता है वह नाममात्रका है।

खड़ी बोली—यह भाषा मेरठके चारों ओरके प्रदेश-में बोली जाती है। दिल्लीमें मुसलमानी शासनका केन्द्र होनेके कारण विशेष रूपसे उन्होंने उसी प्रदेशकी भाषा खड़ी बोलीको अपनाया। यह कार्य एक दिनमें नहीं हुआ। अरब, पारस और तुर्किस्तानसे आये हुए सिपाहियोंको यहां वालोंसे बातचीत करनेमें पहले बड़ी दिक्कत होती थी। न ये उनकी अरबी, पारसी समझते थे और न वे इनकी 'हिन्दवी'। पर बिना वाग-व्यवहारके काम चलना असम्भव था, अतः दोनोंने दोनोंके कुछ कुछ शब्द सीख कर किसी प्रकार आदान प्रदानका रास्ता निकाला।

आजकल जैसे अङ्गरेजी पढ़े लिखे भी अपने नौकरसे 'एक ग्लास पानी' न मांग कर एक 'गिलास' यही मांगते हैं, वैसे उस समय सुख-सुख उच्चारण और परस्पर बोध-सौकर्यके अनुरोधसे वे लोग अपने 'ओजबेक'का उजबक, 'कुतका' का कोतका कर लेने देते और स्वयं करते थे; एवं ये बरेहमन् सुन कर भी नहीं चौंकते थे। बैसवाड़ी हिन्दी, पण्डिताऊ हिन्दी, बाबू इङ्गलिशकी तरह यह उस समय उर्दू हिन्दी कहलाती थी, पर पीछे भेदक उर्दू शब्द स्वयं भेद्य बन कर उसी प्रकार उस भाषाके लिये प्रयुक्त होने लगा जिस प्रकार 'संस्कृत वाक्'के लिये केवल संस्कृत शब्द। मुसलमानोंने अपनी संस्कृतिके प्रचारका सबसे बड़ा साधन मान कर इस भाषाको खूब उन्नत किया और जहां जहां फैलते गये, वे इसे अपने साथ लेते गये। उन्होंने इसमें केवल पारसी तथा अरबीके शब्दोंकी ही उनके शुद्ध रूपमें अधिकता नहीं कर दी, बल्कि उसके व्याकरण पर भी पारसी, अरबी व्याकरणका रंग चढ़ाना आरम्भ कर दिया। इस अवस्थामें इसके दो रूप हो गये, एक तो हिन्दी ही कहलाता रहा और दूसरा उर्दू नामसे प्रसिद्ध हुआ। दोनोंके प्रचलित शब्दोंको ग्रहण करके; पर व्याकरणका संघटन हिन्दी हीके अनुसार रख कर अङ्गरेजोंने इसका एक तीसरा रूप 'हिन्दुस्तानी' बनाया। अतएव इस समय इस खड़ी बोलीके तीन रूप वर्त्तमान हैं—(१) शुद्ध हिंदी—जो हिंदुओंकी साहित्यिक भाषा है और जिसका प्रचार हिंदुओंमें है, (२) जिसका प्रचार विशेष कर मुसलमानोंमें है और जो उनके साहित्यकी और शिष्ट मुसलमानों तथा कुछ हिंदुओंकी घरके बाहर की बोलचालकी भाषा है और (३) हिन्दुस्तानी—जिसमें साधारणतः हिंदी उर्दू दोनोंके शब्द प्रयुक्त होते हैं और जिसका सब लोग बोलचालमें व्यवहार करते हैं। इसमें अभी साहित्यकी रचना बहुत कम हुई है, इस तीसरे रूपके मूलमें राजनीतिक कारण हैं।

पूर्वकालमें खड़ी बोली केवल बोलचालकी भाषा थी। मुसलमानोंने इसे अङ्गीकार किया और आरम्भमें उन्होंने इसको साहित्यिक भाषा बनानेका गौरव भी पाया। जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, कि खड़ी बोलीका सब से पुराना नमूना जो अब तक मिला है वह नामदेवकी कवितामें है। नामदेवको छोड़ भी दिया जाय, तो हमें खड़ी बोलीका सबसे पहला कवि अमीर खुसरो मिलता है। खुसरोने हिन्दी और अरबी पारसी शब्दोंका प्रचार बढ़ाने तथा हिन्दू-मुसलमानोंमें परस्पर भाव-विनिमयमें सहायता पहुंचानेके उद्देशसे खालिकबारी नामका एक कोष पद्यमें बनाया था। कहते हैं, कि इस कोषकी लाखों प्रतियां लिखवा कर तथा ऊंटों पर लदवा कर सारे देशमें बांटी गई थीं। अतएव अमीर खुसरो खड़ी बोलीके आदि कवि ही नहीं हैं, वरन् उन्होंने हिन्दी तथा पारसी अरबीमें परस्पर आदान प्रदानमें भी अपने भरसक सहायता पहुचाई है। विक्रमकी १४वीं शताब्दीकी खड़ी बोली की कविताका नमूना खुसरोकी कवितामें अधिकतासे मिलता है। जैसे—

"टट्टी तोड़के घरमें आया।
अरतन बरतन सब सरकाया॥
खा गया, पी गया, दे गया बुत्ता।
ए सखि! साजन? नां सखि कुत्ता॥
स्याम बरन की है एक नारी।
माथे ऊपर लागै प्यारी॥
जो मानुष इस अरथको खोलै।
कुत्तेकी वह बोली बोलै॥"

रहीम खानखानाने भी खड़ी बोलीमें कविता की है। हिन्दी कवियोंने तथा कबीर, नानक, दादू आदि संतोंने भी अपनी कवितामें इस खड़ी बोलीका प्रयोग किया है। शीतलकवि (१७८०)ने खड़ी बोलीमें बड़ी ही सुन्दर रचना की है।

अतएव यह सिद्ध है, कि खड़ी बोलीका प्रचार कमसे कम १६वीं सदीमें अवश्य था, पर साहित्यमें इसका अधिक आदर नहीं था। आनन्दकी बात है, कि अब धीरे धीरे खड़ी बोलीको कविताकी भाषा सरल गद्यकी-सी हो रही है जो समयकी प्रवृत्तिके अनुकूल तथा भाषा कविताके भविष्यका द्योतक है। १८वीं सदीमें विशेषरूपसे हिन्दीके गद्यकी रचना आरम्भ हुई और इसके लिये खड़ी बोली ग्रहण की गई।

सम्वत् १६३७में गोलकुण्डेके बादशाह सुलतान इब्राहीमकी मृत्यु पर उसका पुत्र मुहम्मद कुली कुतुबशाह गद्दी पर बैठा। पर हिन्दीका खड़ी बोलीवाला रूप हमें साहित्यमें १३०० वि०के आरम्भमें अर्थात् उर्दूके आदि कवि मुहम्मद कुलीसे कोई ३०० वर्ष पहले भी मिलता है। इसलिये यह कहना ठीक नहीं है, कि उर्दूके आधार पर खड़ी बोलीका रूप प्रस्तुत हुआ। मुहम्मद कुलीके कई सौ वर्ष पहलेसे उर्दू पर ब्रजकी काव्यमयी भाषाका प्रभाव पड़ चुका था। मुसलमानोंकी उर्दू कवितामें भी ब्रजभाषाके रस-परिपुष्ट शब्दोंका बराबर और निसंकोच प्रयोग होता था। पीछेके उर्दू कवियोंने इस काव्य भाषाके शब्दोंसे अपना पीछा छुड़ा कर और खड़ी बोलीको अरबी तथा पारसी वेषभूषासे सुसज्जित करके उसे स्वतन्त्र रूप दे दिया। अतएव यह कहना तो ठीक है, कि उर्दू वास्तवमें 'हिन्दी'की विभाषा है, पर यह कहना सर्वथा अनुचित है, कि उर्दूके आधार पर हिन्दी खड़ी हुई है।

हम पहले कह चुके हैं, कि उर्दू भाषा हिन्दीकी विभाषा थी। इसका जन्म हिंदीसे हुआ और उसका दुग्ध-पान करके यह पालित पोषित हुई। पर जब यह शक्तिसम्पन्न हो गई, इसमें अपने पैरों पर खड़े होनेकी शक्ति आ गई और मुसलमानोंके लाड़ प्यारसे यह अपने मूलरूप भूल कर अपने पृष्ठ-पोषकोंको ही सब कुछ समझने लग गई, तब इसने क्रमशः स्वतन्त्रता प्राप्त करनेका उद्योग किया। इस प्रकार उर्दू निरन्तर हिन्दीसे अलग होनेका उद्योग करती आ रही है। चार बातोंमें हिन्दीसे उर्दूकी भिन्नता हो रही है—

(१) उर्दूमें अरबी-पारसीके शब्दोंका अधिकतासे प्रयोग हो रहा है और वह भी तद्भव रूपमें नहीं, अपितु तत्सम रूपमें।

(२) उर्दू पर पारसीके व्याकरणका प्रभाव बहुत अधिकतासे पड़ रहा है। उर्दू शब्दोंके बहुवचन हिन्दीके अनुसार न बन कर पारसीके अनुसार बन रहे हैं।

(३) संबंध कारककी विभक्तिके स्थानमें 'ए'को इज़ाफत करके शब्दोंका समस्त रूप बनाया जाता है, करण और अपादान कारककी विभक्ति 'से'के स्थानमें 'अज़' शब्दका प्रयोग होता है। अधिकरण कारककी विभक्ति 'में'के स्थानमें भी 'दर'का प्रयोग होता है।

(४) हिन्दी और उर्दूकी सबसे अधिक विभिन्नता वाक्य, विन्यासमें देख पड़ती है। हिन्दीके वाक्योंमें शब्दोंका क्रम इस प्रकार होता है, कि पहले कर्त्ता, फिर कर्म और अन्तमें क्रिया; पर उर्दूकी प्रवृत्ति यह देख पड़ती है, कि इस क्रममें उलट फेर हो। उर्दूमें क्रिया कभी कभी कर्त्ताके पहले भी रख देते हैं। जैसे—'राजा इंदरका आना' न कह कर 'आना राजा इंदरका' कहते हैं। इसी प्रकार यह न कह कर कि 'उसने एक नौकरसे पूछा' यह कहेंगे—'एक नौकरसे उसने पूछा।'

हिन्दुस्तानी भाषाके विषयमें इतना ही कहना है, कि इसकी सृष्टि अंगरेजी राजनीतिके कारण हुई है। हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओंको मिला कर, अर्थात् इन दोनों भाषाओंके शब्दोंमेंसे जो शब्द बहुत अधिक प्रचलित हैं, उन्हें ले कर तथा हिन्दी व्याकरणके सूत्रमें पिरो कर इस भाषाको यह रूप दिया जा रहा है।*

विशेष विवरण हिन्दी साहित्य शब्दमें देखो।

हिन्दी व्याकरण—जिस शास्त्रमें शब्दोंके शुद्ध रूप और प्रयोगके नियमोंका निरूपण होता है, उसे व्याकरण कहते हैं। व्याकरणके नियम अकसर लिखी हुई भाषाके आधार पर निश्चित किये जाते हैं क्योंकि उसमें शब्दोंका प्रयोग बोली हुई भाषाकी अपेक्षा अधिक सावधानीसे किया जाता है। व्याकरण शब्दका अर्थ 'भली भांति समझना' है। व्याकरणमें वे नियम समझाये जाते हैं जो शिष्ट जनोंके द्वारा स्वीकृत शब्दोंके रूपों और प्रयोगोंमें दिखाई देते हैं।

व्याकरणके विभाग—व्याकरण भाषा संबन्धी शास्त्र है

* राय साहब श्यामसुन्दर दासजीके 'हिन्दी भाषा और साहित्य'में विस्तृत आलोचना द्रष्टव्य।

और भाषाका मुख्य अंग वाक्य है। वाक्य शब्दोंसे बनता है और शब्द प्रायः मूलध्वनियोंसे। लिखी हुई भाषामें एक मूलध्वनिके लिये अकसर एक चिह्न रहता है, जिसे वर्ण कहते हैं। वर्ण, शब्द और वाक्यके विचारसे व्याकरणके तीन प्रधान विभाग होते हैं, वर्णविचार, शब्दसाधन और वाक्यविन्यास। वर्णविचार विभागमें वर्णोंके आकार, उच्चारण और उनके मेलसे शब्द बनानेके नियम दिये जाते हैं। शब्दसाधनमें शब्दोंके भेद रूपान्तर और व्युत्पत्तिका वर्णन रहता है। वाक्यविन्यासमें वाक्योंके अवयवोंका परस्पर संबंध बताया जाता है और शब्दोंसे वाक्य बनानेके नियम दिये जाते हैं।

वर्ण-विचार—वर्णविचार व्याकरणके उस भागको कहते हैं जिसमें वर्णोंके आकार, भेद, उच्चारण तथा उनके मेलसे शब्द बनानेके नियमोंका निरूपण होता है। वर्ण उस मूल-ध्वनिका नाम है जिसके खण्ड न हो सकें जैसे, अ, इ, क्, ख् इत्यादि।

हिन्दी वर्णमालामें ४४ वर्ण हैं जिनके दो भेद हैं, स्वर और व्यञ्जन। स्वर वही है जिसका उच्चारण आपे आप होता है और जो व्यञ्जनोंके उच्चारणमें सहायता पहुंचाता है। इस प्रकारके स्वर हिन्दीमें ११ हैं, यथा—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ। व्यञ्जन वही वर्ण है जो विना स्वरकी सहायताके नहीं बोले जा सकते। क-से ले कर ह-तक ३३ व्यञ्जन हैं। व्यञ्जनोंमें दो वर्ण और हैं, अनुस्वार और विसर्ग। अनुस्वारका चिह्न स्वरके ऊपर एक बिंदी और विसर्गका चिह्न स्वरके आगे दो बिंदियां हैं, जैसे अं, अः।

अनुस्वार और विसर्ग शब्द देखो।

वर्णोंका उच्चारण और वर्गीकरण—मुखके जिस भागसे जिस अक्षरका उच्चारण होता है, उसे उस अक्षरका स्थान कहते हैं। स्थानभेदसे वर्णोंके नीचे लिखे अनुसार वर्ग होते हैं—

कण्ठ्य—जिनका उच्चारण कंठसे होता है अर्थात् अ, आ, ख, ग, घ, ङ, ह और विसर्ग।

तालव्य—जिनका उच्चारण तालुसे होता है अर्थात् इ, ई, च, छ, ज, झ, ञ, य और श।

मूर्द्धन्य—जिनका उच्चारण मूर्द्धासे होता है अर्थात् ट, ठ, ड, ढ, ण, र और ष।

दन्त्य—जिनका उच्चारण ऊपरके दांतों पर जीभ लगानेसे होता है अर्थात् त, थ, द, ध, न, ल और स।

ओष्ठ्य—जिनका उच्चारण ओठोंसे होता है जैसे, उ, ऊ, प, फ, ब, भ, म।

अनुनासिक—जिनका उच्चारण मुख और नासिकासे होता है अर्थात् ङ, ञ, ण, न, म और अनुस्वार।

कंठ तालव्य—जिनका उच्चारण कंठ और तालुसे होता है, जैसे ए, ऐ।

कंठोष्ठ्य—जिसका उच्चारण कंठ और ओठोंसे होता है, जैसे ओ और औ।

दंत्योष्ठ्य—जिनका उच्चारण दांतों और ओठोंसे होता है, जैसे व।

शब्द-साधन।

शब्द-साधन व्याकरणके उस विभागको कहते हैं जिसमें शब्दोंके भेद, रूपान्तर और व्युत्पत्तिका निरूपण किया जाता है।

शब्द उसीको कहते हैं, जो एक या अधिक अक्षरोंके मेलसे बना हो और जिसका कुछ अर्थ निकले, जैसे घोड़ा, किताब। परस्पर संबंध रखनेवाले दो या अधिक शब्दोंको जिनसे पूरी बात नहीं जानी जाती, वाक्यांश कहते हैं, जैसे पेड़से गिरा हुआ, सबका सब इत्यादि। एक पूर्ण विचार व्यक्त करनेवाला शब्दसमूह वाक्य कहलाता है, जैसे—विद्या विनय देती है, गाय घास खाती है, इत्यादि।

प्रयोगके अनुसार शब्दोंकी भिन्न भिन्न जातियोंको शब्द-भेद कहते हैं। शब्दोंको भिन्न भिन्न जातियां बताना उनका वर्गीकरण कहलाता है। शब्दके अर्थमें हेर-फेर करनेके लिये उस शब्दके रूपमें जो हेर-फेर होता है, उसे रूपान्तर कहते हैं। रूपान्तरके अनुसार शब्दोंके दो भेद होते हैं, विकारी और अविकारी। जिस शब्दके रूपमें कोई विकार होता है, उसे विकारी शब्द कहते हैं, जैसे—कुत्तासे कुत्ते, कुत्तों, कुत्ती। जिस शब्दके रूपमें कोई विकार नहीं होता, उसे अविकारी शब्द या अव्यय कहते हैं, जैसे—परन्तु, बिना, इत्यादि। संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया

विकारी शब्द हैं और क्रियाविशेषण, संबंध-सूचक, समुच्चयबोधक और विस्मयादि-बोधक अविकारी शब्द या अव्यय हैं।

विकारी शब्द संज्ञा—संज्ञा उसे कहते हैं जिससे किसी वस्तुका नाम सूचित हो, जैसे—घोड़ा, हिमालय, गंगा, बल। संज्ञाके तीन भेद हैं, जातिवाचक, व्यक्तिवाचक और भाववाचक।

जिस संज्ञासे सम्पूर्ण पदार्थों या उनके समूहोंका बोध होता है, उसे जातिवाचक कहते हैं; जैसे—मनुष्य, पहाड़, नदी।

जिस संज्ञासे एक ही पदार्थ या पदार्थोंके एक ही समूहका बोध होता है, उसे व्यक्तिवाचक संज्ञा कहते हैं; जैसे—राम, काशी, गंगा।

जिस संज्ञासे पदार्थमें पाये जानेवाले किसी धर्मका बोध होता है, उसे भाववाचक संज्ञा कहते हैं, जैसे—लंबाई, बुढ़ापा, चतुराई। भाववाचक संज्ञा अकसर तीन प्रकारके शब्दोंसे बनाई जाती है. जातिवाचक संज्ञासे, जैसे—लड़कपन, मित्रता, पण्डिताई। विशेषणसे, जैसे—गरमी, कठोरता, मिठास; क्रियासे, जैसे—घबराहट, सजावट, चढ़ाई।

सर्वनाम—सर्वनाम उस विकारी शब्दको कहते हैं जो किसी वदलाके वदलेमें आवे। जैसे—मैं, तुम, वह। हिन्दीमें सब मिला कर ११ सर्वनाम हैं जैसे—मैं, तू, आप, यह, वह, सो, जो, कोई, कुछ, कौन, क्या। सर्वनामके तीन पुरुष होते हैं, उत्तम पुरुष मैं, हम; मध्यम-पुरुष तू, तुम, आप; अन्य पुरुष वह, वे, यह, सो, जो, कौन, क्या, कोई, कुछ। अपनेसे बड़े दरजेवाले मनुष्यके लिये 'तुम'के वदले 'आप' का प्रयोग शिष्ट और आवश्यक समझा जाता है। विशेष विवरण सर्वनाम शब्दमें देखो।

विशेषण—जिस विकारी शब्दसे संज्ञाकी व्याप्ति मर्यादित होती है, उसे विशेषण कहते हैं, जैसे—बड़ा, दयालु, भारी, इत्यादि। विशेषणके योगसे जिस संज्ञाकी व्याप्ति मर्यादित होती है, उस संज्ञाको विशेष्य कहते हैं, जैसे चतुर बालक, यहां चतुर विशेषण और बालक विशेष्य है। इसी प्रकार और जगह जानना होगा। विशेषणके मुख्य तीन भेद किये जाते हैं, सार्वनामिक विशेषण, गुणवाचक विशेषण और संख्यावाचक विशेषण।

सार्वनामिक विशेषण पुरुषवाचक और निजवाचक सर्वनामोंको छोड़ कर शेष सर्वनामोंका प्रयोग विशेषणके समान होता है। जब ये शब्द अकेले आते हैं, तब सर्वनाम होते हैं और जब इनके साथ संज्ञा आती है, तब ये विशेषण होते हैं। जैसे—'धोबी आया है, वह बाहर खड़ा है।" इस वाक्यमें 'वह' सर्वनाम है, क्योंकि वह 'धोबी' संज्ञाके वदलेमें आया है। 'वह धोबी नहीं आया' यहां 'वह' धोबी संज्ञाकी व्याप्ति मर्यादित करता है, अर्थात् उसका निश्चय बताता है।

गुणवाचकविशेषण—गुणवाचक विशेषणोंकी संख्या और सब विशेषणोंकी अपेक्षा अधिक रहती है। गुणवाचक विशेषणोंके साथ हीनताके अर्थमें 'सा' प्रत्यय जोड़ा जाता है, जैसे—'बड़ा-सा पेड़', 'ऊंची-सी दीवार', इत्यादि।

संख्यावाचक विशेषणके तीन भेद हैं, निश्चित संख्यावाचक, अनिश्चित संख्यावाचक और परिमाण-बोधक।

निश्चित संख्यावाचक विशेषणोंसे वस्तुओंकी निश्चित संख्याका बोध होता है। जैसे—एक लड़का, दश रुपये।

जिस संख्यावाचक विशेषणसे किसी निश्चित संख्याका बोध नहीं होता, उसे अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण कहते हैं। जैसे—एक दूसरा, सब, बहुत, कम।

परिमाण-बोधक विशेषणोंसे किसी वस्तुकी नाप या तौलका बोध होता है; जैसे—और, सब, समूचा, कुछ, थोड़ा।

क्रिया—जिस विकारी शब्दके प्रयोगसे हम किसी वस्तुके विषयमें कुछ विधान करते हैं, उसे क्रिया कहते है जैसे सोता है, सोया, खाता है, खाया। क्रियाके दो भेद हैं, सकर्मक और अकर्मक।

जिस धातुसे सूचित होनेवाले व्यापारका फल कर्त्तासे निकल कर किसी दूसरी वस्तु पर पड़ता है, उसे सकर्मक धातु कहते हैं। जैसे—'बिल्ली चूहेको पकड़ती है' यहां क्रियाके व्यापारका फल 'बिल्ली' कर्त्तासे निकल

कर चूहे पर पड़ता है, इसलिये 'पकड़ती' है, क्रिया सकर्मक है।

जिस धातुसे सूचित होनेवाला व्यापार और उसका फल कर्त्ता ही पर पड़े, उसे अकर्मक धातु कहते हैं। जैसे 'लड़का रोता है', यहां क्रियाका व्यापार और उसका फल 'लड़का' कर्त्ता ही पर पड़ता है, इसलिये 'रोता है' क्रिया अकर्मक है। कोई कोई धातु प्रयोगके अनुसार सकर्मक और अकर्मक दोनों होते हैं, जैसे, खुजलाना, लजाना, भूलना, घबराना, घिसना, बदलना, पेंठना, ललचाना। जैसे हाथ खुजलाता है (अ०) वह मेरा बदन खुजलाता है (स०) इत्यादि।

देना, बतलाना, कहना, सुनाना और इन्हीं अर्थोंके दूसरे कई सकर्मक धातुओंके साथ दो दो कर्म रहते हैं। एकका नाम मुख्य कर्म और दूसरेका नाम गौण कर्म है। जिस कर्मसे बहुधा पदार्थका बोध होता है उसे मुख्य कर्म और जो बहुधा प्राणिवाचक होता है उसे गौणकर्म कहते हैं। जैसे, 'मा बच्चेको दूध पिलाती है' यहां 'मा' गौणकर्म और 'दूध' मुख्य कर्म है।

विशेष विवरण क्रिया शब्दमें देखो।

अव्यय—जिससे क्रियाकी कोई विशेषता जानी जाती है उसे क्रिया-विशेषण या अव्यय कहते हैं। जैसे, यहां, वहां, धीरे, अभी, बहुत, कम। क्रिया-विशेषणोंका वर्गीकरण तीन आधारों पर हो सकता है, प्रयोग, रूप और अर्थ। प्रयोगके अनुसार क्रियाविशेषण तीन प्रकारके होते हैं, साधारण, संयोजक और अनुबद्ध।

जिन क्रियाविशेषणोंका प्रयोग किसी वाक्यमें स्वतन्त्र होता है, उन्हें साधारण क्रिया-विशेषण कहते हैं। जैसे "हाय! अब तुम क्या करोगे, अरे! वह सांप कहां गया!"

जिनका सम्बन्ध किसी उपवाक्यके साथ रहता है, उन्हें संयोजक क्रिया-विशेषण कहते हैं, जैसे 'जब लड़का ही चल बसा, तब मैं ही जीके क्या करूंगी।' जहां अभी समुद्र है, वहां पर किसी समय जंगल था।

अनुबद्ध क्रिया-विशेषण वे हैं जिनका प्रयोग अवधारणके लिये किसी भी शब्द-भेदके साथ हो सकता है, जैसे, 'यह तो किसीने धोखा ही दिया है, मैंने उसे देखा तक नहीं।' विशेष विवरण अव्यय शब्दमें देखो।

शब्द-साधन।

संज्ञामें लिङ्ग, वचन और कारक होते हैं। संज्ञाके जिस रूपसे वस्तुकी जातिका अर्थात् पुरुष या स्त्रीका बोध होता है, उसे लिङ्ग कहते हैं। हिन्दीमें दो लिङ्ग होते हैं, पुंलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग। जिस संज्ञासे पुरुषत्वका बोध होता है, उसे पुंलिङ्ग कहते हैं। जैसे, घोड़ा, बकरा, बैल। जिस संज्ञासे स्त्रीत्वका बोध होता है उसे स्त्रीलिङ्ग कहते हैं जैसे घोड़ी, बकरी, गाय।

हिन्दीमें लिङ्गका पूर्ण निर्णय करना कठिन है। उसके लिये व्यापक और पूरे नियम नहीं बन सकते क्योंकि इनके लिये भाषाके निश्चित व्यवहारका आधार नहीं है, तथापि हिंदीमें लिङ्गनिर्णय दो प्रकारसे किया जा सकता है। (१) शब्दके अर्थसे और (२) उसके रूपसे। बहुधा प्राणिवाचक शब्दोंका लिङ्ग अर्थके अनुसार और अप्राणिवाचक शब्दोंका रूपके अनुसार निश्चित करते हैं। शेष शब्दोंका लिङ्ग केवल व्यवहारके अनुसार माना जाता है।

जिन प्राणिवाचक संज्ञाओंसे जोड़ेका ज्ञान होता है उनमें पुरुषबोधक संज्ञाएं पुंलिङ्ग और स्त्रीबोधक स्त्रीलिङ्ग होती हैं, जैसे 'पुरुष, घोड़ा, मोर पुंलिङ्ग और घोड़ी, मोरनी स्त्रीलिङ्ग हैं'।

हिन्दीमें अप्राणिवाचक शब्दोंका लिङ्ग जानना विशेष कठिन है, क्योंकि यह बात अधिकांशमें व्यवहारके अधीन है। अर्थ और रूप दोनों ही साधनोंसे इन शब्दोंका लिङ्ग जाननेमें कठिनाई होती है।

किसी किसी वैयाकरणने अप्राणिवाचक संज्ञाओंके अनुसार लिङ्ग-निर्णय करनेके लिये कई नियम बनाये हैं। उनके मतानुसार ग्रहोंके नाम (पृथ्वीको छोड़), धातुओंके नाम (चांदी, मिट्टी, धातुको छोड़), रत्नोंके नाम (मणि, चुन्नी, लालड़ीको छोड़), पेड़ोंके नाम (नीम, इमली, कचनारको छोड़), अनाजोंके नाम (मक्का, जुआर, मूंग, अरहरको छोड़), द्रव्य-पदार्थोंके नाम (छाछ, स्याही, मसिको छोड़), पुंलिङ्ग हैं और तिथियोंके नाम, नक्षत्रोंके नाम, किरानेके नाम (तेजपात और कपूरको छोड़), भोजनोंके नाम (भात, रायता, हलुआ, मोहनभोगको छोड़) स्त्रीलिङ्ग हैं।

वर्णमालाके अक्षरोंमें इ, ई और ऋको छोड़ कर शेष शब्द पुंलिङ्ग हैं।

फिर ये सब संज्ञाएं पुंलिङ्ग हैं, (१) ऊनवाचक संज्ञाओंको छोड़ शेष आकारान्त संज्ञाएं, जैसे, कपड़ा, गन्ना, आटा। (२) जिन भाववाचक संज्ञाओंके अन्तमें ना, आव, पन, या पा होता है, जैसे, जाना, चढ़ाव, लड़कपन, बुढ़ापा। (३) कृदन्तकी आनान्त संज्ञाएं, जैसे, लगान, नहान, उठान।

सब ईकारान्त संज्ञाएं स्त्रीलिङ्ग हैं, १ नदी, चिट्ठी, रोटी आदि (पानी, घी, जी, मोती, दही, मट्ठीको छोड़) २ ऊनवाचक आकारान्त संज्ञाएं, जैसे पुड़िया, कुड़िया, खटिया, डिबिया। ३ तकारान्त संज्ञाएं, जैसे, रात, बात, लात, छत, भीत (भात, खेत, सूत, गात और दांतको छोड़), ४ ऊकारांत संज्ञाएं, जैसे बालू, दारू, ब्यालू, झाड़ू (आंसू, आलू, रतालू, टेसूको छोड़), ५ अनुस्वारान्त संज्ञाएं, जैसे सरसों, खड़ाऊं, जोखों (कोदों, गेहूंको छोड़), ६ सकारांत संज्ञाएं, जैसे प्यास, मिठास, रास, सांस (निकास और कांसको छोड़) 'कृदन्तकी अकारान्त संज्ञाएं, जैसे लूट, मार, दौड़, समक, पुकार, (खेल, नाच, मेल, बिगाड़, बोल और उतार को छोड़) और ८ जिन भाववाचक संज्ञाओंके अन्तमें ट, वट या हट होता है, जैसे झंझट, सजावट, घबराहट, आदि।

जिन उर्दू शब्दोंके अन्तमें 'आब' होता है, वे अकसर पुंलिङ्ग होते हैं जैसे गुलाब, जुलाब, जवाब, कबाब (परंतु शराब, मिहराब, किताब, कमखाब, ताब, स्त्रीलिङ्ग हैं) जिनके अन्तमें 'आर' या 'आन' होता, वे भी पुंलिङ्ग हैं, जैसे बाजार, इकरार, इश्तिहार, इनकार, मकान, (दूकान, सरकार, तकरारको छोड़)।

ईकारान्त उर्दू भाववाचक संज्ञाएं स्त्रीलिङ्ग होती हैं, जैसे, गरीबी, गरमी, सरदी, बीमारी, चालाकी, तैयारी, नवाबी। इसके सिवा शकारान्त (ताश, होशको छोड़), तकारान्त (शरबत, वक्त, तख्त, दस्तखत, बंदोबस्त, दरख्तको छोड़) और आकारान्त उर्दू संज्ञाएं (सिर्फ इगाको छोड़) भी स्त्रीलिङ्ग हैं।

वचन, कारक, काल, कृदन्त, समास आदिका विवरण इन्हीं सब शब्दोंमें सविस्तार लिखा जा चुका है, इस कारण यहां उनका विवरण नहीं किया गया।

विशेष विवरण व्याकरण शब्दमें देखो।

हिन्दी साहित्य—हिंदी भाषाका साहित्य।

हिन्दीभाषा देखो।

उत्तरभारतके विस्तृत और विशाल भूखंडमें विगत हजार वर्षोंसे प्रचलित हिन्दी भाषाका साहित्य भारतकी जातीय और राष्ट्रीय आशाओं, आकांक्षाओं और स्थितियोंको जाननेका अद्वितीय साधन है। अपनी विशालता, विस्तार और व्यापकताके कारण ही नहीं, भारतकी सभ्यता और संस्कृति परम्पराकी रक्षाके करनेके कारण भी हिन्दी-साहित्यकी महिमा और महत्त्व अपार है। मानव-हृदयके सत्यं शिवं सुन्दरं की अभिव्यञ्जनाके लिये और भारतके जातीय जीवनकी अभिव्यक्तिके लिये हिन्दी साहित्यके प्रयास स्तुत्य और अर्हणीय हैं। भारत की प्राचीन आर्यसभ्यता और आर्यसंस्कृति हिन्दी-साहित्यके नवीन वस्त्राभूषण धारण कर नवीन रंग रूपमें विकसित हुई है और फूली फली है। अपने परिवर्त्तनशील और गतिशील जीवनका प्रतिबिंब देख कर आज भी सम्पूर्ण उत्तरापथका विशाल जनसमूह हिन्दी साहित्यका श्रेय स्वीकार करता है।

भारतीय साहित्यकी मूल रागिणी समूह-मुखी है, इस तथ्यको सदैव याद रखना चाहिये। हिन्दी साहित्य भी इसी परम्पराका पालन करता है। देशकालकी स्थितिके अनुरूप जनताकी चित्तवृत्तिका प्रतिबिंब हिन्दीमें आदिकालसे ही मिलता है। समूहकी ध्वनि जब जब बदली है—साहित्यमें भी परिवर्त्तन हुआ है। इस दृष्टिसे विद्वानोंने हिन्दी-साहित्यको प्रारम्भसे अब तक चार कालोंमें विभक्त किया है।

(१)	वीरगाथा काल	१०५०से १४०० तक।
(२)	भक्तिकाल	१४००से १७०० तक।
(३)	रीतिकाल	१७००से १८५० तक।
(४)	गद्यकाल	१८५०से अब तक।

निश्चय ही ये तिथियाँ ज्योतिष अथवा गणितकी तिथियोंकी तरह नितान्त अकाट्य नहीं हैं, फिर भी

हिन्दी साहित्यके सामान्य विवेचनमें ये सामान्यतः विद्वानों द्वारा स्वीकार कर ली गई हैं।

वीरगाथाकाल।

वह युग घोर राजनीतिक हलचल तथा अशांतिका था। भारतके सिन्ध आदि पश्चिमीय प्रदेशों पर अरबोंके आक्रमण तो बहुत पहिलेसे प्रारंभ हो चुके थे और एक विस्तृत भूभाग पर उनका आधिपत्य भी बहुत कुछ स्थायी रीतिसे प्रतिष्ठित हो चुका था, परन्तु पीछे समस्त उत्तरापथ विदेशियोंसे पादाक्रान्त होने लगा और मुसलमानोंकी विजयवैजयन्ती लाहौर, देहली, मूलतान तथा अजमेर आदिमें फहराने लगी। महमूद गजनवीके आक्रमणोंका यही युग था और शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी-ने भी इसी कालमें भारत-विजयके लिये प्रयत्न किये थे। पहिले तो इस देश पर विदेशियोंके आक्रमण, स्थायी अधिकार प्राप्त करके शासन करनेके उद्देश्यसे नहीं, केवल यहांकी अतुल सम्पत्ति लूट ले जानेकी इच्छासे हुआ करते थे। महमूद गजनवीने इसी आशयसे सत्तरह बार चढ़ाई की थी और वह देशके विभिन्न स्थानोंसे विपुल सम्पत्ति ले गया था। परन्तु कुछ समयके उप-रान्त आक्रमणकारियोंके लक्ष्यमें परिवर्त्तन हुआ, वे कुछ तो धर्मप्रचारकी इच्छासे और कुछ यहांकी सुख-समृद्धि-शाली अवस्था तथा विपुल धन धान्यसे आकृष्ट हो कर इस देश पर अधिकार जमानेकी धुनमें लगे। यहांके राजपूतोंने उनके साथ लोहा लिया और वे उनके प्रयत्नों-को निष्फल करके उन्हें बहुत समय तक पराजित करते रहे, जिससे उनके पैर पहले तो जम नहीं सके, पर धीरे धीरे राजपूत-शक्ति अन्तक लहसे क्षीण होती गई और अंतमें उसे मुस्लिम शक्तिके प्रबल वेगके आगे सिर झुकाना पड़ा।

राजनीतिक हलचलके इस भीषण युगमें देशकी सामाजिक स्थिति कितनी शोचनीय हो गई थी, इस पर कम लोग ध्यान देते हैं। जबसे गुप्त साम्राज्यका अंत हुआ था और देश अनेक छोटे छोटे टुकड़ोंमें बंट गया था, तबसे हर्षवर्द्धनके अस्थायी राजत्वकालके अतिरिक्त कई शताब्दियों तक सारे देशको एक सूत्रमें बांधनेका प्रयत्न हुआ ही नहीं। उलटे गृह-कलहकी निरंतर वृद्धि होती गई और विक्रमकी नवीं, दशवीं तथा ग्यारहवीं शताब्दियोंमें यह भीषण दोष अपनी चरम सीमा तक पहुंच गया। स्वयम्वरोंमें अपने अपने शौर्यका प्रदर्शन करना एक साधारण बात थी, कभी कभी तो अपना बल दिखलाने या मन बहलानेके लिये ही अकारण लड़ाई छेड़ दी जाती थी। विप्लवों और युद्धों आदिका यह अनंत क्रम समाजके लिए बहुत ही हानिकर सिद्ध हुआ। जो जीवन किसी समय ज्ञान-विज्ञानका मूल स्रोत तथा विविध कलाओंका आविर्भावक था, वह अविद्यांधकारमें पड़ कर अनेक अंधविश्वासोंका केन्द्र बन गया। जो लोग आसमुद्रकी क्षितीशोंके साम्राज्यमें सुख समृद्धि-पूर्वक समय बिताते थे, वे अपनी रक्षा तक कर सकनेमें असमर्थ हो गये। सोमनाथ पर मुसलमानोंके आक्रमणका प्रतिकार न कर मन्दिरमें छिपे रहना और अनंगपालके हाथीके संयोगवश पीछे घूम पड़ने पर सारी सेनाका भाग खड़ा होना हिन्दुओंके तत्कालीन चरम पतनका सूचक है। यद्यपि अन्य स्थानोंमें प्रबल वीरता प्रदर्शित करनेके अनेक ऐतिहासिक उल्लेख मिलते हैं, परन्तु फिर भी जो समाज अपना भला बुरा तक पहिचाननेमें अस-मर्थ हो जाता है और जो अपने विलासी तथा अदूरदर्शी शासकोंके ही हाथोंका पुतला बन जाता है उसका कल्याण कब तक हो सकता है। फल यह हुआ, कि साधारण जनता तो तत्कालीन नृपतियोंका आत्मार्पण करती गई और अपरिणामदर्शी नृपतियोंने घरमें ही बैर तथा फूटके बीज बोए जिनका कटु फल देश तथा जाति-को अब तक भोगना पड़ रहा है।

देशके जिस भूभागमें जिस समय ऐसी अशांति तथा अंधकारका साम्राज्य छाया हुआ था, उसी भू-भागमें लगभग उसी समय अपभ्रंश भाषाओंसे उत्पन्न हो कर हिन्दी-साहित्य अपना शैशवकाल व्यतीत कर रहा था। हिन्दीकी इस शैशवावस्थामें देशकी जैसी स्थिति थी, उसीके अनुरूप उसका साहित्य भी विकसित हुआ। भीषण हलचल तथा घोर अशांतिके उस युगमें वीर गाथाओंकी ही रचना संभव थी, साहित्यकी सर्वतो-मुखी उन्नति उस कालमें हो ही नहीं सकती थी। यह

तो साधारण बात है, कि जिस समय कोई देश लड़ाइयों-में व्यस्त रहता है और जिस कालमें युद्धकी ही ध्वनि प्रधान रूपमें व्याप्त रहती है, उस कालमें वीरोल्लासिनी कविताओंकी ही गूंज देश भरमें सुनाई पड़ती है। उस समय एक तो अन्य प्रकारकी रचनाएं होती ही नहीं और जो थोड़ी बहुत होती भी हैं, वे सुरक्षित न रह सकनेके कारण शीघ्र ही कालकवलित हो जाती हैं। हिन्दीके आदि युगमें जो केवल वीररसकी कविताएं मिलती हैं, उसका यही कारण है।

यहां इस बातका भी उल्लेख कर देना आवश्यक होगा, कि तत्कालीन कविताकी रचना राजाओंके आश्रयमें ही हुई, अतः उसमें राजाश्रित कविताकी प्रायः सभी विशेषताएं मिलती हैं। यद्यपि उस कालके राजाओंकी नीति देशके लिये हितकर नहीं थी और उनके पारस्परिक विद्वेष तथा संघर्षसे जो अग्नि प्रज्वलित हुई, उसने देशकी स्वतन्त्रताको भस्म करके ही सांस लिया, तथापि राजाश्रित कवियोंकी वाणी अपने स्वामियोंके कीर्तिकथनमें कभी कुंठित नहीं हुई। उसका यह कार्य बराबर होता रहा। सारांश यह है, कि उस समयके कवि प्रायः राजाओंको प्रसन्न रखने और उनके कृत्योंका अंध समर्थन करनेमें ही अपने जीवनकी सार्थकता समझ बैठे थे। देशकी स्थिति और भविष्यकी ओर उनका ध्यान ही न था। जिस समय कवियोंकी ऐसी हीन अवस्था हो जाती है और जिस समय कविता-में उच्च आदर्शोंका समावेश नहीं होता, उस समय देश और जातिकी ऐसी दुर्दशा अवश्यम्भावी हो जाती है। हिन्दीके आदियुगमें अधिकांश ऐसे ही कवि हुए जिन्हें समाजको संघटित तथा सुव्यवस्थित कर उसे विदेशीय आक्रमणोंसे रक्षा करनेमें समर्थ बनानेकी उतनी चिंता नहीं थी जितनी अपने आश्रयदाताओंकी प्रशंसा द्वारा स्वार्थसाधन करने की थी। यही कारण है, कि जयचंद जैसे नृपतियोंकी काल्पनिक वीरगाथाएं रचने-वाले कवि तो हुए पर सच्चे वीरोंकी पवित्र गाथाएं उस कालमें लिखी ही नहीं गई और यदि लिखी भी गई हो तो अब उनका पता नहीं है।

इन राजाश्रित कवियोंकी रचनाओंमें न तो इतिहास-सम्मत घटनाओंका ही अधिक उल्लेख मिलता है और न उच्च प्रकारके कवित्वका ही उन्मेष पाया जाता है। एक तो उस युगकी रचनाएं अब अपने मूल रूपमें मिलती ही नहीं और जो कुछ मिलती भी हैं, उनमें ऐतिहासिक तथ्योंसे बहुत कुछ विभिन्नता पाई जाती है। जो कवि अपने अधिपतियोंको प्रसन्न करनेके लिये ही रचनाएं करेगा उसे बहुत कुछ इतिवृत्तकी अवहेलना करनी पड़ेगी, साथ ही उसकी कृतियोंमें हृदयके सच्चे भावोंका अभाव होनेके कारण उच्च कोटिके कवित्वका स्फुरण न हो सकेगा। जहां केवल प्रशंसा करना ही उद्देश रह जाता है, वहां इतिहासकी ओरसे दृष्टि हटा लेनी पड़ती है और नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभाको एक संकीर्ण क्षेत्रमें आबद्ध करना पड़ता है। इसी संकीर्ण क्षेत्रमें बहती बहती काव्य-धारा परम्परागत हो गई, जिससे भाट चारणोंकी जीविका तो चलती रही पर कविताके उच्च लक्ष्यका विस्मरण हो गया। पुरानी रचनाओंमें थोड़ा बहुत परिवर्त्तन करके और उसे नवीन रूपमें सुना कर राज-सम्मान पानेकी जो कुप्रथा चारणोंमें चली उससे कविता तो लक्ष्य-भ्रष्ट हो ही गई, साथ ही अनेक ऐतिहासिक विवरणोंका लोप भी हो गया। ग्रंथोंमें क्षेपक इतने अधिक बढ़ चले कि वे मूलसे भी अधिक हो गये और मूलका पता लगना भी असंभव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया। यदि इस कुप्रथाका अंत हिंदीके भक्त कवियोंकी कृपासे न हो गया होता और कविताका सम्पर्क राजा-श्रयसे हट कर जनसमूहकी हार्दिक वृत्तिसे न हो जाता, तो अब तक हिंदी कविताकी कितनी अधोगति हो गई होती, इसका सहजमें अनुमान किया जा सकता है। इस युगके कवियोंकी रचनाओंमें जहां तहां सच्चे राष्ट्रीय भावोंकी भी झलक देख पड़ती है। देशानुरागसे प्रेरित हो कर देशके शत्रुओंका सामना करनेके लिये वे अपने आश्रयदाताओंको केवल अपनी वाणी द्वारा प्रोत्साहित ही नहीं करते थे, वरन् समय पड़ने पर स्वयं तलवार हाथमें ले कर मैदानमें कूद पड़ते थे और इस प्रकार तलवार तथा कलम दोनोंको चलानेकी अपनी कुशलताका परिचय देते थे। कभी कभी ये कवि देशके अंतर्विद्रोहमें सहायक हो कर वाणीका दुरुपयोग भी करते थे, पर यह

उस कालकी एक ऐसा व्यापक विशेषता थी, कि कविगण उससे सर्वथा मुक्त नहीं हो सकते थे।

उस युगके कवियोंमें उच्च कोटिके कवित्वकी झलक भी मिलती है। यद्यपि जीवनके अनेक अंगोंकी व्यापक तथा गंभीर व्याख्या तत्कालीन कवितामें नहीं पाई जाती, पर उन्होंने अपनी कृतियोंमें वीरोंके चरित्र-चित्रणमें नई नई रमणीय उद्भावनाओं तथा अनेक कोमल सूक्तियोंका सुंदर समावेश किया है। इस काल-के कवियोंका युद्धवर्णन इतना मर्मस्पर्शी तथा सजीव हुआ है, कि उनके सामने पीछेके कवियोंकी अनु-प्रासगर्भित किन्तु निर्जीव रचनाएं नकल-सी जान पड़ती हैं।

हिन्दीमें वीर गाथाएं दो रूपोंमें मिलती हैं—कुछ तो प्रबन्ध काव्योंके रूपमें और कुछ वीरगीतोंके रूपमें। प्रबन्धके रूपमें वीर-कविता करनेकी प्रणाली प्रायः सभी साहित्योंमें चिरकालसे चली आ रही है।

पृथ्वीराजरासो—पृथ्वीराजरासो समस्त वीरगाथा युगकी सबसे अधिक महत्वपूर्ण रचना है। उस कालकी जितनी स्पष्ट झलक इस एक ग्रंथमें मिलती है, उतनी दूसरे अनेक ग्रंथोंमें नहीं मिलती। छंदोंका जितना विस्तार तथा भाषाका जितना साहित्यिक सौष्ठव इसमें मिलता है, अन्यत्र उसका अल्पांश भी नहीं दिखाई देता। पूरी जीवन गाथा होनेके कारण इसमें वीरगीतोंकी सी संकीर्णता तथा वर्णनोंकी एकरूपता नहीं आने पाई है, वरन् नवीनता-समन्वित कथानकोंकी ही इसमें अधिकता है। यद्यपि 'रामचरितमानस' अथवा 'पद्मावत'की भांति इसमें भावोंकी गहनता तथा अभिनव कल्पनाओंकी प्रचु-रता उतनी अधिक नहीं है, परन्तु इस ग्रंथमें वीरभावों-की बड़ी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है और कहीं कहीं कोमल कल्पनाओं तथा मनोहारिणी उक्तियोंसे इसमें अपूर्व काव्य चमत्कार आ गया है। रसात्मकताके विचारसे उसकी गणना हिन्दीके थोड़ेसे उत्कृष्ट काव्य ग्रन्थोंमें हो सकती है। भाषाकी प्राचीनताके कारण यह ग्रंथ अब साधारण जनताके लिये दुरूह हो गया है। अन्यथा राष्ट्रो-त्थानके इस युगमें पृथ्वीराजरासोकी उपयोगिता बहुत अधिक हो सकती थी।

वीर-गाथा-कालके प्रबंध काव्योंके रचयिताओंमें भट्ट केदारका जिसने जयचंदप्रकाश, मधुकरका जिसने जय-मयंकजसचन्द्रिका, सारंगधरका जिसने हम्मीर काव्य और नल्लसिंहका जिसने विजयपालरासो लिखा है, उल्लेख मिलता है, जिससे यह प्रकाशित होता है, कि इस प्रकारके काव्योंकी परम्परा बहुत दिनों तक चली थी, पर राजपूतानेमें इस प्रकारकी प्राचीन पुस्तकोंकी खोज न होने तथा अनेक ग्रन्थोंके उनके मालिकोंके मोह, अविवेक अथवा अदूरदर्शिताके कारण अंधेरी कोठरियोंमें बंद पड़े रहनेके कारण इस परंपराका पूरा पूरा इतिहास उपस्थित करनेकी सामग्रीका सर्वथा अभाव हो रहा है।

आल्हखंड—कुछ विद्वानोंने इसे चंदबरदाई-कृत पृथ्वीराज रासो ग्रंथका ही एक खण्ड बतलाया है और इस दृष्टिसे इसे स्वतंत्र ग्रंथके रूपमें ग्रहण नहीं किया है, परन्तु यह बात ठीक नहीं जान पड़ती। पृथ्वीराजरासो तथा आल्ह-खण्डमें सबसे प्रधान भेद यह है, कि पहिला ग्रंथ दिल्ली-के अधिपति पृथ्वीराजके दरबारी कविका लिखा होनेके कारण उसके कृत्योंको बहुत अधिक उत्कर्ष प्रदान करता है, परंतु आल्हखण्डमें यह बात नहीं पाई जाती। इस वीर गीतमें न तो पृथ्वीराजके चरित्रकी प्रधानता और न उसकी वीर कृतियोंकी प्रशंसा है। ऐसा अनुमान किया जाता है, कि यह ग्रंथ प्राचीनरूपमें जगनिकका लिखा हुआ था जो महोबेके चंदेल-शासक परमालके दरबारमें रहता था। यह चंदेल-शासक पृथ्वीराजका समकालीन और कन्नौजके अधिपति जयचंदका मित्र तथा सामंत था।

इस पुस्तकमें प्रधानतः आल्हा और ऊदल (उदयसिंह) नामक वीर क्षत्रियों तथा साधारणतः उनके अनेक भाइयों और कुटुम्बियोंकी वीर-गाथाएं हैं। आल्हा और ऊदल बनाफर शाखाके क्षत्रियोंके वंशज थे और महोबेके तत्कालीन चंदेल अधिपति परमालके सामंतों तथा सेना-पतियोंमें थे। यद्यपि परमाल अशक्त तथा भीरु शासक था परन्तु उसकी स्त्री मल्हना अपने वीर सामंतोंकी सहायता-से कई बार पृथ्वीराज तकके आक्रमणोंको विफल करने-में समर्थ हुई थी। आल्हा, ऊदल, लाखन, सुलखे आदि वीर भ्राताओंकी धाक तत्कालीन छोटे छोटे राज्यों पर

तो थी ही, कन्नौज जैसे विस्तृत साम्राज्यका अधिपति जयचन्द भी उनकी वीरताके आगे सिर झुकाता था। आल्हखण्डके वीर-गीतोंमें इन्हीं वीर भ्राताओंके अनेक विवाहों तथा प्रायः बावन लड़ाइयोंका वर्णन है। उस समयकी कुछ ऐसी स्थिति हो गई थी कि प्रत्येक विवाह-में वीर क्षत्रियोंके लिये अपनी वीरताका प्रदर्शन करना आवश्यक होता था और कन्यापक्षवालोंको पराजित करने पर ही उन्हें कन्यासे विवाह करनेका अधिकार मिलता था। यद्यपि इस पुस्तकमें युद्धोंका जितना विशाल रूप प्रदर्शित किया गया है, उसमें बहुत कुछ अतिशयोक्ति भी है, परन्तु यह निश्चित है, कि महोवेके इन वीर सर्दारोंने सफलतापूर्वक अनेक युद्ध किये थे और उनमें विजयी हो कर उन्होंने राजकन्याका अपहरण भी किया था। पुस्तकके अंतमें अत्यन्त करुण दृश्य उपस्थित होता है। सब वीर बनाफर युद्धमें मारे जाते हैं, उनकी रानियां सती होनेके लिये अग्निकी शरण लेती हैं और बचे हुए केवल दो व्यक्ति आल्हा और उसका पुत्र इन्दल गृह परित्याग कर, किसी कजरी वनमें जा बसते हैं। इस कजरीवनका ठीक ठीक पता अभी तक नहीं लग सका है। यह कोई कविकल्पित स्थान जान पड़ता है जिससे निर्जनता तथा अन्धकारकी व्यंजना होती है।

इस वीर-गीतमें अनेक युद्धोंका वर्णन बहुत कुछ एक ही प्रकारसे हुआ है, साथ ही इसमें अनेक भौगोलिक अशुद्धियां भी पाई जाती हैं, परन्तु साधारण पाठकोंके लिये इसके वर्णनोंमें बड़ा आकर्षण है। यद्यपि इसमें साहित्यिक गुणोंकी बहुत कुछ न्यूनता पाई जाती है, पर उत्तर भारतके प्रायः सभी प्रदेशोंमें इसका प्रचार है। इस-में वर्णित युद्धोंकी भयानकता यद्यपि बहुत कुछ बढ़ा चढ़ा कर अङ्कित की गई है, परन्तु युद्ध अवश्य हुए थे और उनमें वीर बनाफरोंकी अनेक बार विजय भी हुई थी। यद्यपि जगनिककृत आल्हाखण्ड अब अपने पूर्वरूपमें नहीं मिलता और उसके आधुनिक संस्करणोंमें भाषाकी नवीनता तथा घटनाओंका प्रक्षेप प्रत्यक्ष देख पड़ता है फिर भी यह एक महत्त्वपूर्ण रचना है।

अमीर खुसरो—जिस प्रकार चंद बरदाई आदि वीरगाथा-कारोंकी रचनामें तत्कालीन हिंदू मनोवृत्तिका परिचय मिलता है और हिन्दुओंके राजदरबारोंकी अवस्थाका अभिज्ञान होता है, उसी प्रकार अमीर खुसरोकी रचनाओं में हम मुसलमानोंके उन मनोभावोंकी झलक पाते हैं जो उनके इस देशमें आ कर बस जानेके उपरान्त वहांकी परिस्थितिसे प्रभावान्वित हो कर तथा यहांकी आवश्य-कताओंका ध्यान रख कर उत्पन्न हुए थे। इस विचार-से यद्यपि हम खुसरोकी कृतियोंमें साधारण जनताकी चित्तवृत्तियोंकी छाप नहीं पाते परंतु तत्कालीन स्थिति-से परिचित होनेके लिये हमें उनकी उपयोगिता अवश्य स्वीकृत करनी पड़ेगी। भाषाके विकाशकी दृष्टिसे खुसरोकी मसनवियों तथा पहेलियोंका और भी अधिक महत्त्व है। खुसरो द्वारा प्रयुक्त खड़ी बोलीके शुद्ध भार-तीय स्वरूपमें अरब और पारसके शब्दोंकी भरमार कर-के आज कलके कृत्रिम उर्दू बोलनेवाले जब आधुनिक हिंदीको उर्दूसे उत्पन्न बतलाने लगते हैं, तब उनके भ्रम निवारणार्थ खुसरोकी रचनाओंका जो सहारा लेना पड़ता है वह तो है ही, भारतीय भाषा शास्त्रके एक अंग-की पूर्तिके लिये उपकरण बन कर सहायता देनेमें भी उनकी कृतियोंने कम काम नहीं किया है।

परंतु खुसरोकी कविताका वास्तविक रहस्य समझाने-के लिये हमको तत्कालीन कलाओं पर भी ध्यान देना होगा। उनकी कुछ रचनाएं पारसीमें और कुछ हिन्दीमें पाई जाती हैं और कुछ रचनाओंमें मिश्रित भाषाका प्रयोग दिखाई देता है। जब हम उस समयकी वास्तुकला और संगीतकला पर ध्यान देते हैं तो उनमें हिन्दू और मुसल-मान आदर्शोंका मेल पाते हैं। ऐसा जान पड़ता है, कि उस समय हिन्दू मुसलमानोंमें परस्पर बहुत कुछ आदान-प्रदान प्रारम्भ हो गया था। यद्यपि साहित्यमें हिन्दीके वीरगाथाकाल तक अपनी पूर्व परम्पराका परित्याग नहीं पाया जाता, परन्तु यहांकी भाषामें बहुत कुछ विदेशीय शब्द आने लगे थे। अमीर खुसरोने अपना "खालिकबारी" कोष तय्यार करके भाषाके आदान-प्रदानमें बहुत बड़ी सहायता पहुंचाई थी। उसके कुछ काल उपरान्त साहित्यमें भावोंका आदान-प्रदान भी आरंभ हुआ। इस प्रकार हम खुसरोकी कवितामें युग प्रवर्त्तनका बहुत कुछ पूर्वाभास पाते हैं।

भक्तिकाल।

संतकवि—प्रसिद्ध वीरशिरोमणि हम्मीरदेवके पतनके बाद हिन्दीसाहित्यमें वीरगाथाओंकी रचना शिथिल पड़ गई थी। कबीर आदि संत कवियोंके जन्मके समय हिन्दू जातिकी यही दशा हो रही थी। वह समय और परिस्थिति अनीश्वरवादके लिए बहुत ही उपयुक्त थी। यदि उसकी लहर चल पड़ती तो उसका रुकना कदाचित् कठिन हो जाता। परंतु कबीर आदिने बड़े ही कौशलसे इस अवसरसे लाभ उठा कर जनताको भक्तिमार्गकी ओर प्रवृत्त किया और भक्तिभावका प्रचार किया। प्रत्येक प्रकारकी भक्तिके लिये जनता इस समय तैयार नहीं थी। मूर्त्तियोंकी अशक्तता वि० सं० १०८१में बड़ी स्पष्टतासे प्रकट हो चुकी थी, जब कि महमूद गजनवीने आत्मरक्षासे विरत, हाथ पर हाथ रखे हुए श्रद्धालुओंके देखते देखते सोमनाथका मंदिर नष्ट करके उनमेंसे हजारोंको तलवारके घाट उतारा था और लूटमें अपना धन प्राप्त किया था। गजेन्द्रकी एक ही टेर सुन कर दौड़ आनेवाले और ग्राहसे उसकी रक्षा करनेवाले सगुण भगवान् जनताके घोरसे घोर संकट कालमें भी उसकी रक्षाके लिए आते हुये न दिखाई दिए। अतएव उनकी ओर जनताको सहसा प्रवृत्त कर सकना असंभव था। पंढरपुरके भक्त-शिरोमणि नामदेवकी सगुण भक्ति जनताको आकृष्ट न कर सकी। लोगोंने उसका वैसा अनुसरण न किया जैसा आगे चल कर कबीर आदि संत कवियोंका किया और अंतमें उन्हें भी ज्ञानाश्रित निर्गुण भक्तिकी ओर झुकना पड़ा। उस समय परिस्थिति केवल निराकार और निर्गुण ब्रह्मकी भक्तिके ही अनुकूल थी, यद्यपि निर्गुणकी शक्तिका भली भांति अनुभव नहीं किया जा सकता था, उसका आभासमात्र मिल सकता था। पर प्रबल जलधारामें बहते हुए मनुष्यके लिये वह कूलस्थ मनुष्य या चट्टान किस कामकी जो उसकी रक्षाके लिये तत्परता न दिखलावे? उसकी ओर बह कर आता हुआ तिनका भी जीवनकी आशा पुनरुद्दीप्त कर देता है और उसीका सहारा पानेके लिए वह अनायास हाथ बढ़ा देता है। संत कवियोंने अपनी निर्गुण भक्तिके द्वारा भारतीय जनताके हृदयमें यही आशा उत्पन्न की और उसे कुछ अधिक समय तक विपत्तिकी इस अथाह जलराशिके ऊपर बने रहनेकी उत्तेजना दी। यद्यपि सहायताकी आशासे आगे बढ़े हुए हाथको वास्तविक सहारा सगुण भक्तिसे ही मिला और केवल रामभक्ति ही उसे किनारे पर लगा कर सर्वथा निरापद कर सकी, पर इससे जनता पर होनेवाले कबीर, दादू, रैदास आदि संतोंके उपकारका महत्त्व कम नहीं हो जाता। कबीर यदि जनताको भक्तिकी ओर न प्रवृत्त करते तो क्या यह संभव था कि लोग इस प्रकार आंखें मूंद करके सूर तुलसीको ग्रहण कर लेते? सारांश यह कि संत कवियोंका आविर्भाव ऐसे समयमें हुआ जब मुसलमानोंके अत्याचारोंसे पीड़ित भारतीय जनताको अपने जीवित रहनेकी आशा तक नहीं रह गई थी और न उसमें अपने आपको जीवित रखनेकी इच्छा ही शेष थी। उसे मृत्यु या धर्मपरिवर्तनके अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं देख पड़ता था। यद्यपि धर्मशील तत्त्वज्ञोंने सगुण उपासनासे आगे बढ़ते बढ़ते निर्गुण उपासना तक पहुंचनेका सुगम मार्ग बतलाया है और वास्तवमें यह तत्त्व युक्तिसंगत भी जान पड़ता है, पर उस समय जनताको सगुण उपासनाकी निःसारताका परिचय मिल चुका था और उस परसे उसका विश्वास भी उठ चुका था। अतएव कबीरको अपनी व्यवस्था उलटनी पड़ी। मुसलमान भी निर्गुणोपासक थे। अतएव उनसे मिलते जुलते पथ पर लगा कर कबीर आदिने हिन्दू जनताको संतोष और शांति प्रदान करनेका उद्योग किया। यद्यपि इस उद्योगमें उन्हें पूरी पूरी सफलता नहीं हुई, तथापि यह स्पष्ट है कि कबीरके निर्गुणवादने तुलसी और सूरके सगुणवादके लिये मार्ग परिष्कृत कर दिया और उत्तरीय भारतके भावी धर्ममय जीवनके लिये उसे बहुत कुछ संस्कृत और परिष्कृत कर दिया। कबीर देखो।

जिस समय निर्गुण संत कवियोंका आविर्भाव हुआ था, वह समय ही भक्तिकी लहरका था। उस लहरको बढ़ानेके प्रबल कारण प्रस्तुत थे। भारतीय अद्वैतवाद और मुसलमानी एकेश्वरवादके भेदकी ओर ध्यान नहीं दिया गया और दोनोंके विचित्र मिश्रणके रूपमें निर्गुण

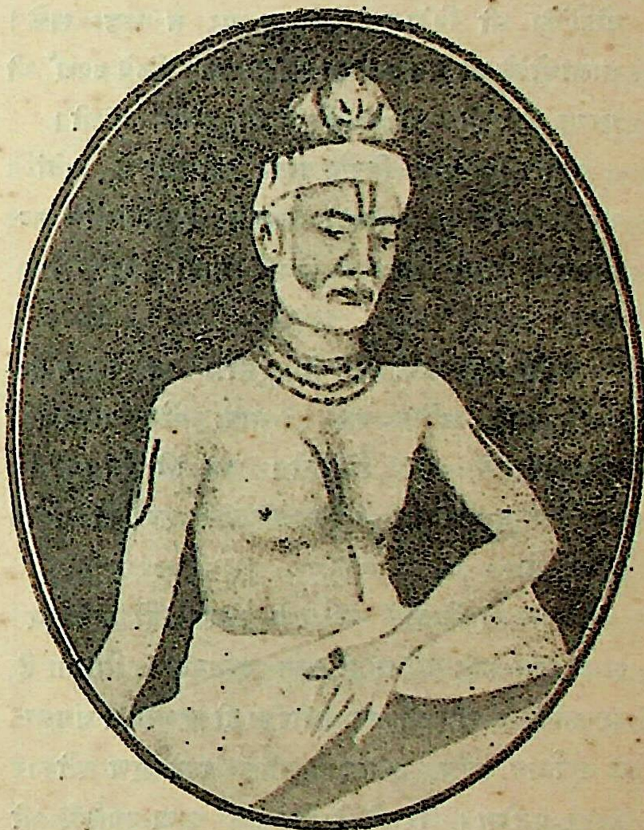
भक्तिमार्ग चल पड़ा। रामानन्दके बारह शिष्योंमेंसे कुछ इस मार्गके प्रवर्त्तनमें प्रवृत्त हुए जिनमेंसे कबीर प्रमुख थे। शेषमें सेना, पन्ना, भवानंद, पीपा और रैदास थे, परंतु उनका उतना प्रभाव न पड़ा जितना कबीरका।

मुसलमानोंके आगमनसे हिन्दू समाज पर एक और प्रभाव पड़ा। पददलित शूद्रोंकी दृष्टिका उन्मेष हो गया। उन्होंने देखा कि मुसलमानोंमें द्विजों और शूद्रोंका भेद नहीं है। सहधर्मी होनेके कारण वे सब एक हैं, उनके व्यवसायने उनमें कोई भेद नहीं डाला है, न उनमें कोई छोटा है और न कोई बड़ा। अतएव इन ठुकराए हुए शूद्रोंमेंसे कुछ ऐसे महात्मा निकले जिन्होंने मनुष्योंकी एकता उद्घोषित करानेका विचार किया। इस नवोदित भक्तितरंगमें सम्मिलित होनेके कारण हिन्दू समाजमें प्रचलित भेद भावके विरुद्ध आन्दोलन होने लगा। रामानन्दजीने सबके लिये भक्तिका मार्ग खोल दिया। नामदेव दरजी, रैदास चमार, दादू धुनिया, कबीर जुलाहा आदि समाजकी नीची श्रेणीके ही थे पर उनका नाम आज तक आदरसे लिया जाता है।

शुद्ध साहित्यिक दृष्टिसे देखने पर भी हम संत कवियोंका एक विशेष स्थान पाते हैं। यह ठीक है कि विहारी और केशव आदिकी-सी भाषाकी प्रांजलताका अभिमान ये कवि नहीं कर सकते और न सूर, तुलसीकी सरसता और व्यापकता ही इनकी कवितामें पाई जाती है। जायसीने प्रकृतिके नाना रूपोंके साथ अपने हृदयकी जैसी एकरूपता दिखायी है अनेक निर्गुण संत कवि उतनी सफलतासे वह नहीं दिखा सके। यह सब होते हुए भी इन कवियोंका स्थान हिन्दीसाहित्यमें अत्यंत उत्कर्षपूर्ण तथा उच्च समझा जायगा। भाषाकी प्रांजलता कम होते हुए भी उसमें प्रभावोत्पादकता बहुत है और उनकी तीव्रतासे भावोंमें व्यापकताकी बहुत कुछ कमी हो जाती है। उनके संदेशोंमें जो महत्ता है उनके उपदेशोंमें जो उदारता है, उनकी सारी उक्तियोंमें जो प्रभावोत्पादकता है, वह निश्चय ही उच्च कोटिकी है। कविताके लिये उन्होंने कविता नहीं की है।

अब हम कुछ प्रसिद्ध प्रसिद्ध संत कवियोंकी वैयक्तिक विशेषताओंका संक्षेपमें उल्लेख करते हैं।

अब तकके अनुसंधानोंके अनुसार महात्मा कबीरदासका जन्म संवत् १४५६ और मृत्यु-संवत् १५७५ माना जाता है। यद्यपि निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, फिर भी सब बातों पर विचार करनेसे इस मतके ठीक होनेकी अधिक संभावना है कि ये ब्राह्मणी या किसी हिन्दू स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न और मुसलमान परिवारमें लालित पालित हुए। कदाचित् उनका बाल्यकाल मगहरमें बीता था और वे पीछेसे काशीमें आ कर बसे



कबीर।

थे जहांसे अन्तकालके कुछ पहले उन्हें पुनः मगहर जाना पड़ा हो। प्रसिद्ध स्वामी रामानन्दको इन्होंने अपना गुरु स्वीकार किया था। कुछ लोगोंका यह भी मत है कि उनके गुरु शेख तकी नामक कोई सूफी मुसलमान फकीर थे। धर्मदास और सुरत गोपाल नामके उनके दो चेले हुए। कबीरकी मृत्युके पीछे धर्मदासने छत्तीसगढ़में कबीरपंथकी एक अलग शाखा चलाई और सुरत गोपाल काशीवाली शाखाकी गद्दीके अधिकारी हुए।

कबीरके साथ प्रायः लोईका नाम भी लिया जाता है। सम्भवतः लोई उनकी पत्नी और कमल उनका पुत्र था।

कबीर बहुश्रुत थे। उनको सत्संगसे वेदान्त, उपनिषदों और पौराणिक कथाओंका थोड़ा ज्ञान हो गया था, परन्तु वेदोंका उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं था। कबीरदास सरल जीवनके पक्षपाती तथा अहिंसाके समर्थक थे। उन्होंने शाक्तोंकी बड़ी निंदा की है।

जैसे कबीरका जीवन संसारसे ऊपर उठा हुआ था, वसे ही उनका काव्य भी साधारण कोटिसे ऊंचा है। कबीरदास छन्दशास्त्रसे अनभिज्ञ थे, यहां तक कि वे दोहोंको भी पिंगलकी खराद पर न चढ़ा सके। मात्राओंके घट बढ़ जानेका चिंता उनके लिये व्यर्थ थी परन्तु साथ ही कबीरमें प्रतिभा थी, मौलिकता थी।

कबीरकी भाषाका निर्णय करना टेढ़ी खीर है; क्योंकि वह खिचड़ी है। कबीरकी रचनामें कई भाषाओंके शब्द मिलते हैं परन्तु भाषाका निर्णय प्रायः शब्दोंसे नहीं होता।

कबीर पढ़े लिखे नहीं थे, इसीसे उन पर बाहरी प्रभाव बहुत अधिक पड़े। भाषा और व्याकरणकी स्थिरता उनमें नहीं मिलती। यह भी संभव है कि उन्होंने जान-बूझ कर अनेक प्रान्तोंके शब्दोंका प्रयोग किया हो।

कबीर ही हिन्दीके सर्व प्रथम रहस्यवादी कवि हुए। सभी संत कवियोंमें थोड़ा बहुत रहस्यवाद मिलता है, पर उनका काव्य विशेषकर कबीरका ही ऋणी है। बंगलाके वर्त्तमान कवीन्द्र रवीन्द्रको भी कबीरका ऋण स्वीकार करना पड़ेगा। हिन्दीकी वर्त्तमान काव्य-प्रगतिमें भी कबीरके रहस्यवादकी छाप देख पड़ती है।

कबीर पहुंचे हुए ज्ञानी थे। उनका ज्ञान पोथियोंकी नकल नहीं था और न वह सुनी सुनाई बातोंका बेमेल भंडार ही था। पढ़े लिखे तो वे थे नहीं, परन्तु सत्संगसे भी जो बातें मालूम हुईं उन्हें वे अपनी विचारधाराके द्वारा मानसिक पाचनसे सर्वथा अपनी ही बना लेनेका प्रयत्न करते थे। कबीर देखो।

गुरु नानक—प्रसिद्ध सिक्ख सम्प्रदायके संस्थापक तथा प्रथम गुरु नानकजी जातिके खत्री थे। इनके पिता कालूचन्द खत्री लाहौरके निवासी थे। इन्होंने प्रारम्भमें वैवाहिक जीवन व्यतीत किया था और इन्हें श्रीचन्द और लक्ष्मीचन्द नामके दो पुत्र भी हुए थे। गुरु नानकने घर बार छोड़ कर जब संन्यास ग्रहण किया, तब कहा जाता है कि उनकी भेंट महात्मा कबीरसे हुई थी। कबीरके उपदेशोंका उन पर विशेष प्रभाव पड़ा था। उनके ग्रंथ साहबमें कबीरकी वाणी भी संगृहीत है। नानकजी पञ्जावके निवासी थे और पञ्जाब मुसलमानोंका प्रधान केन्द्र था। इसलाम धर्म और हिन्दू धर्मके संघर्षके कारण पञ्जाबमें जो अशान्ति फैलनेकी आशङ्का थी, नानकजीने उसे दूर करनेका सफल प्रयास किया। उनकी वाणीमें हिन्दू और मुसलमान विचारोंका मेल प्रशंसनीय रीतिसे हुआ है।

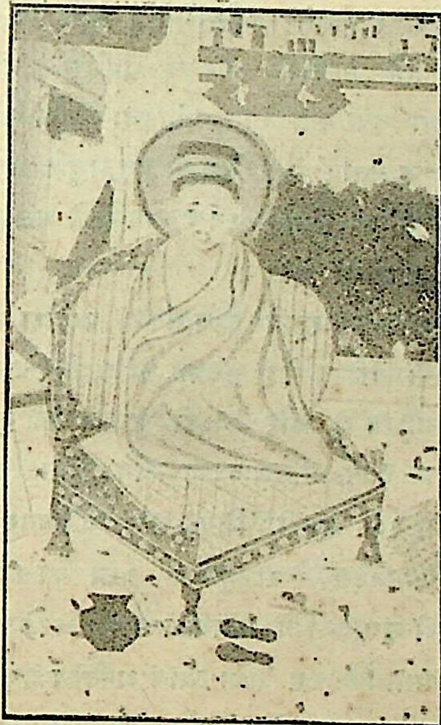


गुरु नानक।

कबीरकी ही भांति नानक भी अधिक पढ़े लिखे नहीं थे, पर साधुओंके संसर्ग तथा पर्यटनके अनुभवसे नानकके उपदेशोंमें एक प्रकारकी विशेष प्रतिभा तथा प्रमा

बोधोत्पादकता पाई जाती है। यह ठीक है कि काव्यकी कृत्रिम दृष्टिसे नानककी कविता साधारण कोटिकी ही समझी जायगी, परन्तु कलामें जो स्वाभाविकता तथा तीव्रता अपेक्षित होती है, नानकमें उसकी कमी नहीं है। नानकके पद प्रसिद्ध सिक्ख 'ग्रंथ साहब'में एकत्र किये गये हैं। यह ग्रंथ सिक्खोंका धर्मग्रन्थ है और अत्यन्त पूज्य दृष्टिसे देखा जाता है। नानक देखो।

दादू—दादूदयालका जन्मसंवत् १६०१में गुजरातके अहमदाबाद नामक स्थानमें बतलाया जाता है। इनकी जातिका ठीक ठीक पता नहीं चलता। कुछ लोग इन्हें ब्राह्मण बतलाते हैं और कुछ इन्हें मोची या धुनिया मानते हैं। सम्भवतः ये नीची जातिके ही थे। ये स्पष्टतः कबीरके शिष्य तो नहीं थे, पर इन्होंने अपने सभी



दादू दयाल।

सिद्धांतोंको कबीरसे ही ग्रहण किया है। दादूका एक अलग सम्प्रदाय चला था और अब भी अनेक दादूपंथी पाये जाते हैं। इनकी मृत्यु जयपुर प्रान्तके अन्तर्गत नराने-की पहाड़ी नामक स्थानमें हुई थी और यही स्थान अब तक दादूपंथियोंका मुख्य केंद्र बना हुआ है।

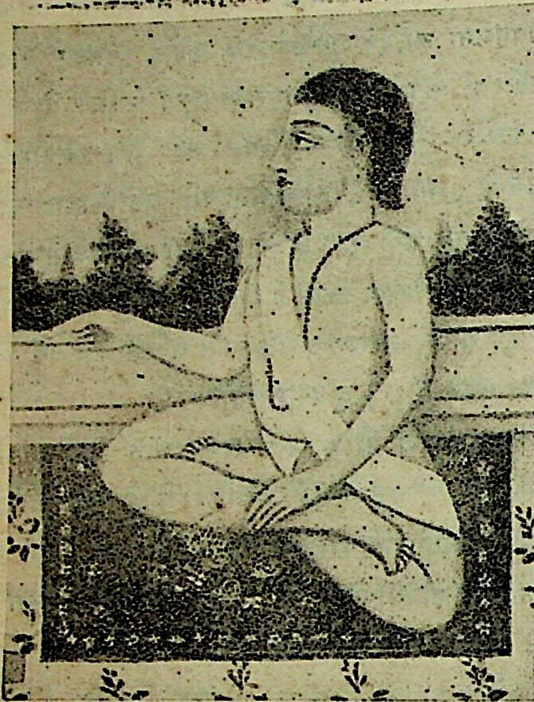
दादूका प्रचारक्षेत्र अधिकतर राजपूताना तथा उसके आस-पासका प्रांत था; अतः उनके उपदेशोंकी भाषामें राजस्थानीका पुट पाया जाता है। संत कवियोंकी भांति दादूने भी साखियां तथा पद आदि कहे हैं जिनमें सत्गुरुकी महिमा, ईश्वरकी व्यापकता, जाति पांतिकी अवहेलना आदिके उपदेश दिये गये हैं। इनकी वाणीमें कबीरकी वाणीसे सरसता तथा तत्त्व अधिक है, यद्यपि वे कबीरके समान प्रतिभाशाली नहीं थे। कबीर तर्क-प्रिय थे; अतः उन्हें तार्किककी-सी कठोरता भी धारण करनी पड़ी थी, परन्तु दादूने हृदयकी सच्ची अनुभूतियों-का ही अभिव्यञ्जन किया है। इनकी मृत्यु संवत् १६६० में हुई थी। आरम्भकालके संत कवियोंमें ये पढ़े लिखे जान पड़ते हैं। दादू दयाल देखो।

मलूकदास औरङ्गजेबके समकालीन निर्गुण भक्त-कवि थे। "अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम" वाला प्रसिद्ध दोहा इन्हींकी रचना है। इनकी भाषा साधा-रण संत कवियोंकी अपेक्षा अधिक शुद्ध और संस्कृत होती थी और इनको छन्दोंका भी ज्ञान था। रत्नखान तथा ज्ञानबोध नामकी इनकी दो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं जिनमें वैराग्य तथा प्रेम आदिकी मनोहर वाणी व्यक्त की गई है। एक सौ साठ वर्षकी अवस्थामें सं० १७३६में इनकी मृत्यु हुई थी। ये कड़ा जिला इलाहाबादके निवासी थे।

इन संत कवियोंमें सबसे अधिक विद्वान् तथा पण्डित कवि सुन्दरदास हुए। सुन्दरदास दादू दयालकी शिष्य-परम्परामें थे। इनका अध्ययन विशेष विस्तृत था। इन्होंने काशीमें आ कर शिक्षा प्राप्त की थी। सुंदरदासकी भाषा शुद्ध काव्य भाषा है और उनकी वाणीमें उनके उपनिषदों आदिसे परिचित होनेका पता चलता है, परंतु कबीर आदिकी भांति उनमें स्वभावसिद्ध मौलिकता तथा प्रतिभा अधिक नहीं थी, इससे उनका प्रभाव भी विशेष नही पड़ा। सुंदरदासके अतिरिक्त संतोंमें अक्षर अनन्य, धर्मदास, जगजीवन आदिका नाम भी लिया जाता है, साथ ही तुलसी साहब, गोविंद साहब, भीखा साहब, पलटू साहब आदि अनेक संत हुए जिनमेंसे अधिकांशका साहित्य पर कोई विशेष प्रभाव नही पडा। परंतु संतोंकी पर-म्पराका अंत नहीं हो गया और न्यूनाधिक रूपमें वह बराबर चलती रही और अब तक चली जा रही है।

यद्यपि साहित्यिक समीक्षामें निर्गुण संत कवियोंको

उच्चतम स्थान नहीं दिया जाता, पर इससे हम उनके किये हुए उपकार नहीं भूल सकते। मुसलमान और हिंदू



सुन्दरदास।

संस्कृतियोंके उस संघर्ष-कालमें जिस शांतिमयी वाणीकी आवश्यकता थी, संतोंने उसीकी अभिव्यञ्जना की। अब भी हिंदीके प्रधान कवियोंमें कबीर आदिका उच्च स्थान है और प्रचारकी दृष्टिसे तो महात्मा तुलसीदासके बाद इन्हींका नाम लिया जायगा। इसमें संदेह नहीं कि इस युगमें इन संत महात्माओंके कारण हिंदी-साहित्यका बड़ा उपकार हुआ।

प्रेमगाथा या सूफी कवि—कबीर आदि संतोंकी बानी अटपटी है। उसमें ब्रह्मकी निराकार उपासनाका उपदेश दिया गया है और वेदों और पुराणोंकी निंदा करके एक प्रकारके दंभरहित सरल सदाचारपूर्ण धर्मकी स्थापनाका लक्ष्य रखा गया है। राम और रहीमको एक ठहरा कर हिन्दू तथा मुसलमान मतोंका अद्भुत मेल मिलाया गया है। इसी प्रकार हिंसा और मांसभक्षणका खंडन कर नमाज और पूजाका विरोध करके इन संतोंने किस मार्गका अनुसरण किया किसका नहीं, यह साधारण जनताकी समझमें नहीं आ सकता था। फिर भी कबीर आदिका देशके साधारण जन समुदाय पर जो महान् प्रभाव पड़ा, वह कहने सुननेकी बात नहीं है। वे संत पढ़े लिखे न थे, उनकी भाषामें साहित्यिकता न थी, उनके छंद ऊटपटांग थे तथापि उन्हें जनताने स्वीकार किया और उनकी विशेष प्रसिद्धि हुई। इसके विपरीत सूफी कवियोंके उद्गार अधिकतर शृंखलित और शास्त्रानुमोदित थे। उनकी भाषा भी अच्छी मंजी हुई थी और छंद आदिका भी उन्हें ज्ञान था। इन कवियोंकी संख्या भी कम न थी। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ता है कि देशमें सूफी कवियोंकी न तो अधिक प्रसिद्धि ही हुई और न उनका अधिक प्रचार ही हुआ। इनमेंसे अनेक कवि तो नामावशेष ही थे और कठिनाईसे उनके ग्रन्थोंका पता लगा है। संभवतः साहित्यिक समाजमें भी इन कवियोंका विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान कभी नहीं माना गया। इनकी कविताओंके उदाहरण न तो लक्षण ग्रंथोंमें मिलते हैं और न धार्मिक संग्रहोंमें ही उन्हें स्थान दिया गया है। संभवतः सूफियोंकी रहस्योन्मुख भावनाएं इस देशकी जलवायुके उतनी भी अनुकूल नहीं थी जितनी कबीर आदिकी अटपटी और अव्यवस्थित वाणी थी।

प्रेमाख्यानक सूफी कवियोंकी परंपरा हिन्दीमें कुतबनके समयसे चली। कुतबन शेरशाहके पिता हुसैन शाहके आश्रित थे और चिश्ती वंशके शेख बुरहानके शिष्य थे। इनके प्रेमकाव्यका नाम मृगावती है जो इन्होंने सन् ९०९ हिजरीमें लिखा था। चंद्रनगरके अधिपति गणपतिदेवके राजकुमार तथा कांचननगरकी राजकुमारी मृगावतीकी प्रेमगाथा इसमें अंकित की गई है। प्रेममार्गके कष्ट तथा त्याग आदिका वर्णन करते हुए कुतबनने अज्ञातकी प्राप्तिके कष्टोंका आभास दिया है। मृगावतीके उपरान्त दूसरी प्रेमगाथा मधुमालती लिखी गई जिसकी एक खण्डित प्रति खोजमें मिली है। इसके रचयिता मंझन बड़े ही सरस हृदय कवि थे। इन्होंने प्रकृतिके दृश्योंका बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन किया है और उन दृश्योंके द्वारा अनन्तकी ओर बड़े ही मधुर संकेत किए हैं। प्रेमगाथाकारोंमें सबसे प्रसिद्ध कवि जायसी हुए जिनका पद्मावत काव्य हिन्दीका एक जगमगाता रत्न है। इस काव्यमें कविने ऐतिहासिक तथा

काल्पनिक कथानकोंके संयोगसे बड़ी ही रोचकता ला दी है। इसमें मानव-हृदयके उन सामान्य भावोंके चित्रणमें बड़ी ही उदारता तथा सहानुभूतिका परिचय दिया गया है जिनका देश और जातिकी संकीर्णताओंसे कुछ भी संबंध नहीं। प्राकृतिक दृश्योंका वर्णन करते हुए कविकी तन्मयता इतनी बढ़ जाती है कि वह अखिल दृश्य जगत्‌को एक निरंजन ज्योतिसे आभासित पाता और आनंदातिरेकके कारण उसके साथ तादात्म्यका अनुभव करता है। जायसीके उपरान्त उसमान, शेख नबी, नूर महम्मद आदि अनेक प्रेमगाथाकार हुए पर पद्मावतका-सा विशुद्ध काव्य फिर नहीं लिखा गया। सगुणोपासक तुलसी, सूर आदि भक्त कवियोंके आविर्भावसे प्रेमगाथाकारोंकी शक्ति बहुत कुछ क्षीण पड़ गई थी।

उपर्युक्त प्रेमगाथाओंमें बहुत सी बातें मिलती जुलती हैं। एक तो इनकी रचना भारतीय चरितकाव्योंकी सर्गबद्ध शैलीमें न हो कर पारसीकी मसनवियोंके ढंग पर हुई है। जिस प्रकार पारसीकी मसनवियोंमें ईश्वर-वन्दना, मुहम्मद साहबकी स्तुति, तत्कालीन राजाकी प्रशंसा आदि कथारंभके पहले होते थे, उसी प्रकार इनमें भी है। प्रेमगाथाओंकी भाषा भी प्रायः एक-सी है। यह भाषा अवध प्रांतकी है। इन प्रेमकी पीरके कवियोंका प्रधान केन्द्र अवधकी भूमि ही थी। छंदोंके प्रयोगमें भी इस समुदायके कवियोंमें समानता पाई जाती है। सबने प्रायः दोहों और चौपाइयोंमें ही ग्रंथरचना की है। ये छंद अवधी भाषाके इतने उपयुक्त हैं, कि महाकवि तुलसीदासने भी अपने प्रसिद्ध रामचरितमानसमें इन्हीं छंदोंका प्रयोग किया है। चौपाई छंद तो मानों अवधी भाषाके लिये ही बनाया गया हो; क्योंकि व्रजभाषा कवियोंने इस छन्दका सफलता-पूर्वक उपयोग कभी किया ही नहीं। समताकी अंतिम बात यह है, कि प्रेमगाथाकार सभी कवि मुसलमान थे। एक तो यह संप्रदाय ही मुसलमानोंके सूफी मतको ले कर खड़ा हुआ था। दूसरे हिन्दू कवियोंमें उसी समयके लगभग सगुणोपासना चल पड़ी और वे व्यक्तके भीतर अव्यक्तका रहस्यमय साक्षात्कार करनेकी अपेक्षा व्यक्तको ही सब कुछ मानने और अवतार रूपमें राम और कृष्णकी जीवनगाथा अंकित करनेमें प्रवृत्त हुए। मुसलमान प्रारंभसे ही मूर्तिद्वेषी थे। अतः उन्हें सूफियोंकी शैलीके प्रचारका विशेष सुभीता था।

प्रेममार्गी सूफी कवियोंने प्रेमका चित्रण जिस रूपमें किया है उसमें विदेशीयता ही नहीं है, भारतीय शैलियोंका भी प्रभाव है। एक तो इस देशकी रीतिके अनुसार नायक उतना प्रेमोन्मुख नहीं होता जितनी नायिका होती है, परन्तु जायसी आदिने पारसीकी शैलीका अनुसरण करते हुए नायकको अधिक प्रेमी तथा प्रेमपात्रकी प्राप्तिके लिये प्रयत्नशील दिखाया है। वास्तवमें इन कवियोंका प्रेम ईश्वरोन्मुख था। सूफी अपने प्रियतम ईश्वरकी कल्पना स्त्रीके रूपमें करते थे। इसलिये जायसी आदिके भी नायकके प्रेमको प्रधानता देनी पड़ी। परन्तु भारतीय शैलीके अनुसार असंख्य गोपिकायें कृष्णके प्रेममें लीन, उनके विरहमें व्याकुल और उनकी प्राप्तिमें प्रयत्नशील रहती हैं। वास्तवमें यह प्रेम भी अपने शुद्ध रूपमें ईश्वरोन्मुख है, क्योंकि भारतीय दृष्टिमें कृष्ण भगवान् पूरी कलाओंके अवतार, जगदुद्धारक, योगीश्वर आदि माने जाते हैं, उनके प्रति गोपिकाओंका प्रेम पुरुषके प्रति प्रकृतिका प्रेम समझा जाता है। सूफी कवियों पर इस भारतीय शैलीका प्रभाव पड़ा था और उन्होंने प्रारम्भमें नायकको प्रियतमाकी प्राप्तिके लिये अत्यधिक प्रयत्नशील दिखा कर ही संतोष नहीं कर लिया, वरन् उपसंहारमें नायिका (प्रियतमा)के प्रेमोत्कर्षको भी दिखाया। दूसरी बात यह भी है कि इस देशमें प्रेमकी कल्पना लोकव्यवहारके भीतर ही की जाती है और कर्तव्यबुद्धिसे उच्छृंखल प्रेमका नियंत्रण किया जाता है। राम और सीताका प्रेम ऐसा ही है। कृष्ण और गोपियोंके प्रेममें ऐकान्तिकता आ गई है, परन्तु सूफियोंके प्रेमकी तरह वह भी बिलकुल लोकबाह्य नहीं है। भारतीय सूफी कवियोंने इस देशकी प्रेमपरम्पराका तिरस्कार नहीं किया, उनका प्रेम बहुत कुछ लोकव्यवहारके परे है पर फिर भी असंयत नहीं। जायसीने तो पद्मावतमें नायिकाके सतीत्व तथा उत्कट पतिप्रेम आदिका दृश्य दिखा कर अपने भारतीय होनेका पूरा परि

चय दिया है। इन दो मुख्य बातोंके अतिरिक्त प्रेम वर्णनोंमें अश्लील दृश्योंको भर सक बचा कर प्रकृतिके सुरम्य रूपोंको चित्रित कर यहांके प्रेममार्गी कवियोंने अपने काव्योंको भारतीय जलवायुके बहुत कुछ अनुकूल कर दिया है।

सूफी सिद्धान्तके अनुसार अंतमें आत्मा परमात्मामें मिल जाता है। इसीलिये उनको कथाओंका अंत या समाप्ति दुखांत हुई है। आरम्भमें तो यह बात बनी रही पर आगे चल कर इस संप्रदायके कवि यह बात भूल गये अथवा भारतीय पद्धतिका जो आदर्शवादी थी और जिसके अनुसार दुःखांत नाटक तक नहीं बने, उन पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि उन्होंने नायक और नायिकाको भोगविलास और सुख चैनमें रख कर ही अपने ग्रन्थकी समाप्ति की है।

सूफी कवियोंका प्रेम ईश्वरोन्मुख था। उन्होंने अपने प्रेम प्रबंधोंमें यद्यपि लौकिक कथा ही कही है परन्तु वह लौकिक कथा उनकी हृदयानुभूतिके व्यक्त करनेका साधनमात्र है। उस कथासे उनका संबंध बहुत घनिष्ठ नहीं है, वहीं तक है जहां तक वह उनके ईश्वरोन्मुख प्रेमके अभिव्यञ्जनमें समर्थ होती है। सूफियोंका प्रेम ईश्वरके प्रति होता है, परन्तु ईश्वर तो निराकार है, निर्गुण है, अतः अवर्णनीय है। हाँ, उसका आभास देनेके लिए लौकिक कथाओंकी सहायता लेनी पड़ती है। पद्मावतकी ही कथाको ले लीजिये। उसमें यद्यपि चितौड़के अधिपति रत्नसेन और सिंहलद्वीपकी राजकन्या पद्मावतीकी कथा कही गई है, परन्तु जायसीने एक स्थान पर स्पष्ट कह दिया ह कि उनकी यह कथा तो रूपक मात्र है, वास्तवमें वे उस ईश्वरीय प्रेमकी अभिव्यक्ति कर रहे हैं जो प्रत्येक साधकके हृदयमें उत्पन्न होती है और उसे ईश्वरप्राप्तिकी ओर प्रवृत्त करती है। यही नहीं, जायसीने तो अपने रूपकको और भी खोल दिया है और अपनी कथाके विविध प्रसंगों तथा पात्रोंको ईश्वर प्रेमके विविध अवयवोंका व्यञ्जक बतलाया है। इस प्रकार उनकी पूरी कथा एक महान् अन्योक्ति ठहरती है। सभी प्रत्यक्ष वर्णन अप्रत्यक्षकी ओर संकेत करते हैं, कविकी दृष्टिसे स्वतः उनका विशेष महत्त्व नहीं। यह ठीक है कि कविकी दृष्टि ही समीक्षककी भी दृष्टि नहीं होती, अतः साहित्यसमीक्षक सारे वर्णनोंको अप्रस्तुत न मान कर बीच बीचमें अप्रस्तुतकी ओर संकेतमात्र मानते हैं, परंतु संत सूफियोंका ठीक आशय समझनेमें हम भूल नहीं कर सकते। रत्नसेन और पद्मावतीके लौकिक रूपसे उनका उतना संबंध नहीं था जितना अपने पारमार्थिक प्रेमसे था। कथा प्रसंगोंमें बीच बीचमें प्रेमीके कष्ट और त्याग आदिके वर्णन मिलते हैं और अव्यक्तसे विशाल प्रकृतिके विरह तथा मिलनका ऐसा मर्मस्पर्शी चित्रण मिलता है, कि हमारी दृष्टि लौकिक सीमासे ऊंचे उठ कर उस ओर जाती दिख पड़ती है जिस ओर ले जाना प्रेममार्गी संत कवियोंका लक्ष्य था।

कबीर आदि संतोंका रहस्यवाद ज्ञानजन्य है; अतः वह उतना काव्योपयोगी नहीं है जितना जायसी आदि सूफियोंका। जायसीने अपनी रहस्यात्मकताको दृश्य जगत्के नाना रूपोंका अव्यक्तके साथ संबंध चरितार्थ करते हुए दिखाया है। कभी जब यह दृश्य जगत् अव्यक्तसे वियुक्त होता है, तब वियोगके कितने ही व्यापक और रमणीय दृश्य दिखाई पड़ते हैं, कभी जब इसका उसके साथ संयोग होता है, तब सारी प्रकृति मानो आनन्दोल्लाससे नाच उठती है। इस प्रकार प्रकृतिकी ही सहायतासे जायसीका रहस्यवाद व्यक्त हुआ है। इसके विपरीत कबीरने वेदान्तके अनेक वादों तथा अन्य दार्शनिक शैलियोंका अनुसरण करते हुए रहस्योद्गार व्यक्त किये हैं।

जायसीके कुछ काल उपरान्त जब तुलसीदासका आविर्भाव हुआ तब सूफियोंकी कविता क्षीण हो चली। हिन्दुओंको सगुण भक्तिके प्रवाहमें सूफियोंकी निर्गुण भक्ति ठहर न सकी, बह गई। उसमान जहांगीरके समकालीन कवि थे। ये शाह निजामुद्दीन चिश्तीकी शिष्यपरंपरामें थे, हाजी बाबा इनके गुरु थे। सम्भवतः १६७० में इनका चित्रावली नामक काव्य लिखा गया। सभी प्रेमगाथाओंकी भाँति इसमें भी पैगम्बर गुरु आदिकी वंदना है और बादशाह जहांगीरको भी स्मरण किया गया है।

उसमानके उपरान्त शेख नबी हुए। परन्तु इनके उपरांत प्रेममार्गी कवि सम्प्रदाय प्रायः निर्जीवसा हो गया।

यद्यपि कासिम शाह, नूर मुहम्मद, फाजिल शाह आदि कवि होते रहे, पर उनकी रचनाओंमें इस संप्रदायका ह्रास साफ बोलता-सा ज्ञात पड़ता है। हां, नूर मुहम्मदकी "इन्द्रावती"की प्रेम कहानी अवश्य सुन्दर बन पड़ी है। यह संवत् १८०१ में लिखी गई थी।

क्या भावोंके विचारसे और क्या भाषाके विचारसे सूफी कवियोंने हिन्दीको पहलेसे बहुत आगे बढ़ाया। वीरगाथा कालमें केवल वीरोल्लासपूर्ण कविताका सृजन हुआ, वह भी परिणाममें अधिक नहीं। उस कालकी भाषा तो बिलकुल अविकसित थी। अक्खड़ कवियोंके हाथमें पड़ कर वह और भी भोंडी बन गई। उसके उपरान्त कबीरका समय आया। कबीर महात्मा थे और उनके द्वारा साहित्यमें पूत भावनाओंका समावेश हुआ। काव्यत्वके विचारसे उन पूत भावनाओंका उत्कर्ष चाहे अधिक न हो पर इससे उनका महत्त्व किसी प्रकार कम नहीं होता। कबीरकी भाषा तो बहुत ही बिगड़ी हुई है। कुछ पंजाबी खड़ी बोली, कुछ ब्रजभाषा और कुछ अवधीका पुट दे कर जो खिचड़ी तैय्यार हुई वह रमते साधुओंके कामकी भले ही हो, सर्व साधारण विशेष कर परिमार्जित रुचि रखनेवालोंके लिये उसमें कुछ भी नहीं है। सूफी कवियोंने अपने उदार भावोंको पुष्ट भाषामें व्यक्त करके दोनों ही क्षेत्रोंमें अपनी सफलताका परिचय दिया। कबीर आदि संतोंकी वानी सामूहिक रूपसे देशके लिये बड़ी हितकारिणी सिद्ध हुई। परन्तु सूफियोंकी प्रबन्ध रचनाओंने सामाजिक हित भी किया और साहित्यिक समृद्धिमें भी सहायता दी। यह ठीक है, कि सूर और तुलसी आदिके प्रवेश करते ही प्रेममार्गी कवि बहुत कुछ भुला दिये गये और हिन्दी भी अत्यधिक समृद्ध हो गई, पर इतना कहना ही पड़ेगा कि तुलसीको एक मार्जित भाषा दे कर रामचरितमानसकी रचनामें सहायक होनेमें जायसी आदि सूफियोंका नाम अवश्य लिया जायगा। हिन्दुओंके प्रति सहानुभूति इन मुसलमान कवियोंकी खास विशेषता है। इनका हृदय अतिशय उदार और स्वर्गीय प्रेमकी पीरसे ओतप्रोत था। सबसे बड़ी वस्तु इनका कवितागत रहस्यवाद है जिसकी समता हिन्दी साहित्यमें कोई नहीं कर सकता।

इन मुसलमान सूफी कवियोंकी देखा देखी हिन्दू कवियोंने भी उपाख्यान काव्योंकी रचना की। पर इन सब काव्योंका ढंग या तो पौराणिक, ऐतिहासिक अथवा पूर्णतया साहित्यिक है। सूफी कवियोंकी रचनाओंमें धर्मकी जो लहर अदृश्यरूपसे व्याप्त हो रही है, उसका हिन्दू कवियोंकी इन रचनाओंमें अभाव है। ऐसे काव्योंमें लक्ष्मणसेन-पद्मावती कथा, ढोलामारू रो चउपही, रसरतन काव्य, चन्द्रकला, प्रेमपयोनिधि, कनकमंजरी, कामरूपकी कथा, हरिचंद्रपुराण आदि हैं। इनके सम्बंधमें इतना कह देना आवश्यक है, कि इन्हीं उपाख्यानोंकी परम्पराके परिणामस्वरूप उन अमर काव्योंकी हिन्दीमें रचना हुई जिनके कारण हिन्दी साहित्य गौरवान्वित और सम्मानित हुआ।

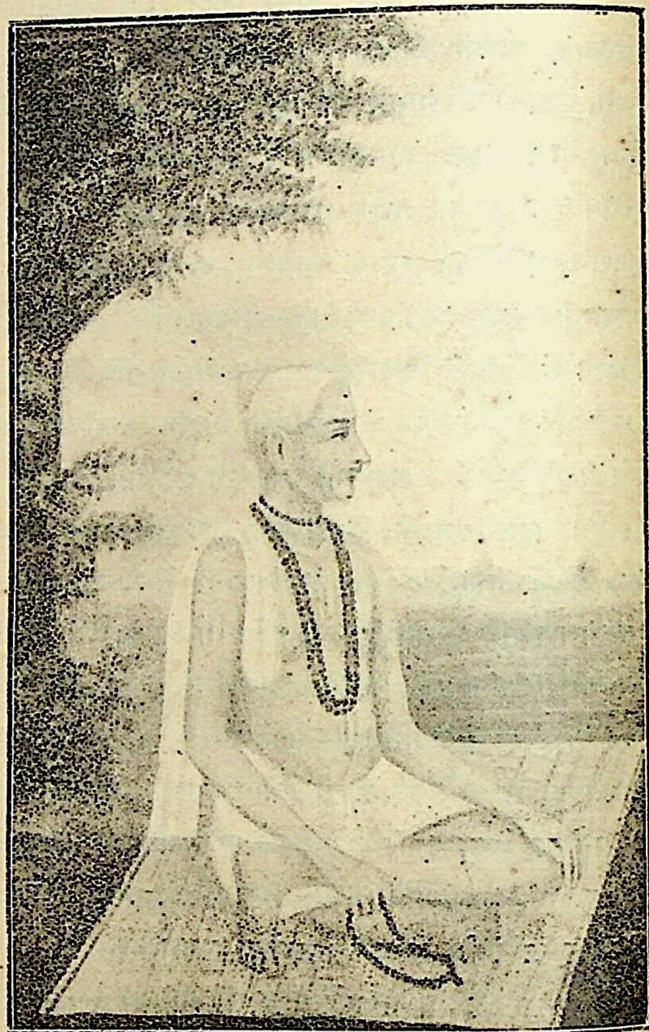
रामभक्त कवि—वैष्णव भक्तिकी रामोपासिका शाखाका आविर्भाव महात्मा रामानंदने विक्रमकी पंद्रहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें किया था। यद्यपि रामानंदके पहिले भी नामदेव तथा त्रिलोचन आदि प्रसिद्ध भक्त हो चुके थे, पर उन्होंने भक्ति-आन्दोलनको एक नवीन स्वरूप दे कर तथा उसे अत्यधिक लोकप्रिय और उदार बना कर हिन्दूधर्मके उन्नायकोंमें सम्माननीय स्थान पर अधिकार पाया। कबीर, तुलसी और पीपा आदि उनके शिष्य अथवा शिष्यपरंपरामें थे और इसीसे उनके महत्त्वका अनुभव हम अच्छी तरह कर सकते हैं।

स्वामी रामानन्द यद्यपि रामानुजके ही अनुयायी थे, पर मतभेद, तिलकभेद, तथा अन्य विभेदोंके कारण कुछ लोग उन्हें श्रीवैष्णव सम्प्रदायमें नहीं मानते। वे त्रिदंडी संन्यासी नहीं थे, अतएव उनमें और श्रीसम्प्रदायमें भेद बतलाया जाता है। परन्तु यह निश्चित है कि रामानन्द काशीके बाबा राघवानन्दके शिष्य थे और बाबा राघवानंद श्री सम्प्रदायके वैष्णव संत थे। यद्यपि यह किंवदंती प्रसिद्ध है कि रामानन्द और राघवानन्दमें आचारके सम्बन्धमें कुछ मतभेद हो जानेके कारण रामानन्दने अपना सम्प्रदाय अलग स्थापित किया, फिर भी इसमें संदेह नहीं कि बाबा राघवानन्दकी मृत्युके उपरान्त रामानन्द जीने

रामभक्तिका मार्ग प्रशस्त कर उत्तर-भारतमें एक नवीन भक्तिमार्गका अभ्युदय किया। रामानन्द देखो।

रामभक्तिकी शाखा महात्मा रामानन्द द्वारा विकसित हुई। कबीर, पीपा, रैदास, सेना, मलूक आदि संत सब रामानन्दके ऋणसे ऋणी हैं, यद्यपि उनके चलाये हुए सम्प्रदायों पर विदेशीय प्रभाव भी पड़े और अनेक साधारण विभेद भी हुए। जनता पर इन संतोंका बड़ा प्रभाव पड़ा। परन्तु महात्मा रामानन्दका ऋण इन संतो तक ही परिमित नहीं है। इनकी शिष्य-परम्परामें आगे चल कर गोस्वामी तुलसीदास हुए जिनको जगत्-प्रसिद्ध रामायण हिन्दी-साहित्यका सर्वोत्कृष्ट रत्न तथा उत्तर-भारतके धर्मप्राण जनसाधारणका सर्वस्व है। कबीर आदि संतोंके सम्प्रदाय देशके कुछ कोनोंमें ही अपना प्रभाव दिखा सके और पढ़ी लिखी जनता तक उनकी वाणी पहुंच भी न सकी, परन्तु गोस्वामी तुलसीदासकी कविता ऊंच-नीच राजा राव, पढ़े बे-पढ़े सबको दृष्टिमें समान रूपसे आदरणीय हुई। ये गोस्वामी तुलसीदासजी स्वामी रामानन्दके ही उपदेशोंको ग्रहण करके चले थे, अतः स्वामी रामानन्दका महत्त्व हम अच्छी तरह समझ सकते हैं। और उनके उपदेशोंसे अंकुरित रामभक्तिको आज असंख्य घरोंमें फैली हुई देख सकते हैं।

तुलसीदास-- महाकवि तुलसीदासजीका जो व्यापक प्रभाव भारतीय जनता पर है, उसका कारण उनकी उदारता, उनकी प्रतिभा तथा उनके उद्गारोंकी सत्यता आदि तो हैं ही, साथ ही विलक्षण प्रतिभा तथा उसका सबसे बड़ा कारण है उनका विस्तृत अध्ययन और उनकी सारग्राहिणी प्रवृत्ति। "नाना पुराण निगमागम सम्मत" रामचरितमानस लिखनेकी बात अन्यथा नहीं है, सत्य है। यों तो उनके अध्ययनका विस्तार प्रायः अपरिसीम था, परन्तु उन्होंने प्रधानतः वाल्मीकि रामायणका आधार लिया है। साथ ही उन पर वैष्णव महात्मा रामानंदकी छाप स्पष्ट देख पड़ती है। उनके रामचरितमानसमें मध्यकालीन धर्म-ग्रन्थों विशेषतः अध्यात्म-रामायण, योगवाशिष्ठ तथा अद्भुत रामायणका प्रभाव कम नहीं है। भुसुंडि रामायण और हनुमन्नाटक नामक ग्रन्थोंका ऋण भी गोस्वामीजीको स्वीकार करना पड़ेगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि वाल्मीकि रामायणकी कथा ले कर उसमें मध्य-कालीन धर्मग्रन्थोंके तत्त्वोंका समावेश कर साथ ही अपनी उदार बुद्धि और प्रतिभासे अद्भुत चमत्कार उत्पन्न कर उन्होंने जिस अनमोल साहित्यकी सृष्टि की, वह उनकी सारग्राहिणी प्रवृत्तिके साथ ही उनकी प्रगाढ़ मौलिकताका भी परिचायक है।



तुलसीदास।

गोस्वामीजीकी समस्त रचनाओंमें उनका रामचरितमानस ही सर्वश्रेष्ठ रचना है और उसका प्रचार उत्तर-भारतमें घर-घर है। गोस्वामीजीका स्थायित्व और गौरव उसी पर अवलंबित है। रामचरितमानस करोड़ों भारतीयोंका एकमात्र धर्म-ग्रन्थ है। जिस प्रकार संस्कृत साहित्यमें वेद, उपनिषद् तथा गीता आदि पूज्य दृष्टिसे देखे जाते हैं, उसी प्रकार आज संस्कृतका लेशमात्र ज्ञान न रखनेवाली जनता भी करोड़ोंकी संख्यामें रामचरित-

मानसको पढ़ती और वेद आदिकी ही भांति उसका सम्मान करती है। इस कथनका यह तात्पर्य नहीं कि गोस्वामीजीके अन्य ग्रन्थ निम्न कोटिके हैं। गोस्वामीजीकी प्रतिभा सबमें समान रूपसे लक्षित होती है, पर रामचरितमानसकी प्रधानता अनिवार्य है। गोस्वामीजीने हिन्दूधर्मका सच्चा स्वरूप रामके चरित्रमें अंतर्निहित कर दिया है। धर्म और समाजकी कैसी व्यवस्था होनी चाहिये, राजा प्रजा, ऊंच नीच, द्विज शूद्र आदि सामाजिक सूत्रोंके साथ माता पिता, गुरु भाई आदि पारिवारिक संबंधोंका कैसा निर्वाह होना चाहिये आदि जीवनके सरलतम और जटिलतम प्रश्नोंका बड़ा ही विशद विवेचन इस ग्रन्थमें मिलता है। हिन्दुओंके सब देवता, उनकी सब रीति नीति, वर्णाश्रम-व्यवस्था तुलसीदासजीको सब स्वीकार हैं। शिव उनके लिए उतने ही पूज्य हैं जितने स्वयं राम। वे भक्त होते हुए भी ज्ञानमार्गके अद्वैतवाद पर आस्था रखते हैं। संक्षेपमें वे व्यापक हिन्दू धर्मके संकलित संस्करण हैं और उनके रामचरितमानसमें उनका वह रूप बड़ी मार्मिकतासे व्यक्त हुआ है।

गोस्वामीजीके रामचरितमानस और विनयपत्रिकाके अतिरिक्त दोहावली, कवितावली, गीतावली, रामाज्ञा प्रश्न आदि बड़े ग्रन्थ तथा बरवै रामायण, रामलीला नहछू कृष्णगीतावली, वैराग्यसंदीपनी, पार्वती मङ्गल और जानकीमंगल छोटी रचनाएं प्रसिद्ध हैं। उनकी बनाई अन्य पुस्तकोंका नामोल्लेख शिवसिंहसरोजमें किया गया है, परन्तु उनमेंसे कुछ तो अप्राप्य हैं और कुछ उनके उपर्युक्त ग्रन्थोंमें सम्मिलित हो गई हैं तथा कुछ संदिग्ध हैं। साधारणतः ये ही ग्रंथ गोस्वामीजी रचित निर्विवाद माने जाते हैं। बाबा बेणीमाधवदासने गोस्वामीजीकी "रामसतसई"का भी उल्लेख किया है। कुछ लोगोंका कहना है कि उसकी रचना गोस्वामीजीकी अन्य कृतियोंके अनुकूल नहीं है, क्योंकि उसमें अनेक दोहे क्लिष्ट और पहेली आदिके रूपमें आये हैं।

कहा जाता है, कि गोस्वामी तुलसीदासने नर-काव्य नहीं किया। केवल एक स्थान पर अपने काशीवासी मित्र टोडरकी प्रशंसामें दो चार दोहे कहे हैं, अन्यत्र सर्वत्र अपने उपास्य देव रामकी ही महिमा गाई है और रामकी कृपासे गौरवान्वित व्यक्तियोंका रामकथाके प्रसंगमें नाम लिया है। "कीन्हें प्राकृत जन गुनगाना-सिर धुनि गिरा लागि पछिताना"का पद इस तथ्यकी ओर संकेत करता है। यद्यपि गोस्वामीजीने किसी विशेष मनुष्यकी प्रशंसा नहीं की है और अधिकतर अपनी वाणीका उपयोग रामगुणकीर्तनमें ही किया है, पर रामचरित्रके भीतर मानवताके जो उदात्त आदर्श फूट निकले हैं वे मनुष्यमात्रके लिए कल्याणकर हैं। यही नहीं, रामचरितके बाहर जा कर भी उन्होंने मानवसमाजके लिए हितकर पथका निर्देश किया है। उदाहरणार्थ दोहावलीमें उन्होंने सच्चे प्रेमकी जो आभा चातक और घनके प्रेममें दिखलाई है, अलोकोपयोगी उच्छृंखलताका जो खंडन साखी-शब्दी-दोहाकारोंकी निंदा करके किया है, रामचरितमानसमें मर्यादावादकी जैसी सुन्दर पुष्टि शिष्यकी गुरुकी अवहेलनाको दण्डित करके की है, रामराज्यका वर्णन करके जो उदात्त आदर्श रखा है, उनमें और ऐसे ही अनेक प्रसंगोंमें गोस्वामीजीकी मनुष्य-समाजके प्रति हितकामना स्पष्टतः झलकती देख पड़ती है। उनके अमर काव्योंमें मानवताके चिरंतन आदर्श भरे पड़े हैं।

यह सब होते हुए भी तुलसीदासजीने जो कुछ लिखा है, स्वांतःसुखाय लिखा है। उपदेश देनेकी अभिलाषासे अथवा कवित्व प्रदर्शनकी कामनासे जो कविता की जाती है, उसमें आत्माकी प्रेरणा न होनेके कारण स्थायित्व नहीं होता। कलाका जो उत्कर्ष हृदयसे सीधी निकली हुई रचनाओंमें होता है वह अन्यत्र मिलना असंभव है। गोस्वामीजीकी यह विशेषता उन्हें हिन्दी कविताके शीर्षासन पर ला रखती है। एक ओर तो वे काव्यचमत्कारका भद्दा प्रदर्शन करनेवाले केशव आदिसे सहजमें ही ऊपर आ जाते हैं और दूसरी ओर उपदेशोंका सहारा लेनेवाले कबीर आदि भी उनके सामने नहीं ठहर पाते। कवित्वकी दृष्टिसे जायसीका क्षेत्र तुलसीकी अपेक्षा अधिक संकुचित है और सूरदासके उद्गार सत्य और सबल होते हुए भी उतने व्यापक नहीं हैं। इस प्रकार केवल कविताकी दृष्टिसे ही तुलसीदास हिन्दीके अद्वितीय कवि ठहरते हैं। इसके साथ ही जब हम भाषा पर उनके अधिकार तथा जनता पर उनके उपकारकी तुलना अन्य

कवियोंसे करते हैं तब गोस्वामीजीकी अनुपम महत्ताका साक्षात्कार स्पष्ट रीतिसे हो जाता है। तुलसीदास देखो।

महाकवि तुलसीदासके उपरान्त रामभक्तिके अन्य कितने ही कवि हुए जिनमें 'भक्तमाल'के रचयिता नाभा दास, प्राणचंद, हृदयराम, विश्वनाथसिंह, रघुराजसिंह आदिके नाम विशेष उल्लेखयोग्य हैं। आधुनिक कालमें बाबू मैथिलीशरण गुप्तजीने रामचरित पर एक खंड काव्य लिखा है और एक महाकाव्य भी लिख रहे हैं।

कृष्ण-भक्त कवि—शंकरके अद्वैतवादमें भक्तिके लिये जगह न थी, यह हम पहले ही कह चुके हैं। शंकरके उपरान्त स्वामी रामानुजाचार्यने जिस विशिष्टाद्वैत मतका प्रतिपादन किया था, वह भी भक्तिके बहुत उपयुक्त न था। भागवतपुराणमें भक्तिका दृढ़ मार्ग निरूपित हुआ और मध्वाचार्यने पहिले पहल द्वैतमतका प्रचार कर भक्त और भगवान्के संबंधको सिद्ध किया। उन्होंने पहिले शंकर मतकी शिक्षा पाई थी। भागवतपुराणके अध्ययनका उन पर गहरा प्रभाव पड़ा और वे शंकरके ज्ञानमार्गके विरोधी और भक्तिके समर्थक बन गये। मध्वाचार्य देखो। उत्तर-भारतमें उनके सिद्धान्तोंका प्रत्यक्षमें तो अधिक प्रभाव नहीं पड़ा, पर अनेक सम्प्रदाय उनके उपदेशोंका आधार ले कर दक्षिणमें खड़े हुए और देशके विस्तृत भूभागोंमें फैले। हिन्दीका कृष्णभक्त कवियोंमें विद्यापति पर माध्व-सम्प्रदायका प्रभाव स्वीकार करना पड़ता है। परन्तु विद्यापति पर माध्व-सम्प्रदायका ही ऋण नहीं है, उन्होंने विष्णुस्वामी तथा निंबार्काचार्यके मतोंको भी ग्रहण किया था। न तो भागवतपुराणमें ही और न माध्व मतमें ही राधाका उल्लेख किया गया है। कृष्णके साथ विहार करनेवाली अनेक गोपियोंमें राधा भी हो सकती है, पर कृष्णकी चिर प्रेयसीके रूपमें वे नहीं देख पड़तीं। उन्हें यह रूप विष्णुस्वामी तथा निंबार्क संप्रदायोंमें ही पहले पहल प्राप्त हुआ था। विष्णु स्वामी मध्वाचार्यकी ही भांति द्वैतवादी थे। भक्तमालके अनुसार वे प्रसिद्ध मराठा भक्त ज्ञानेश्वरके गुरु और शिक्षक थे। राधाकृष्णकी सम्मिलित उपासना इनकी भक्तिका नियम था। विष्णु स्वामीके ही समकालीन निंबार्क नामक तैलंग ब्राह्मणका आविर्भाव हुआ, जिन्होंने वृन्दावनमें निवास कर गोपाल कृष्णकी भक्ति की थी। निंबार्कने विष्णुस्वामी भी अधिक दृढ़तासे राधाकी प्रतिष्ठा की और उन्हें अपने प्रियतम कृष्णके साथ गोलोकमें चिर निवास करने वाली कहा। राधाका यही चरम उत्कर्ष है। विद्यापतिने राधा और कृष्णकी प्रेमलीलाका जो विशद वर्णन किया है, उस पर विष्णुस्वामी तथा निंबार्क मतोंका प्रभाव प्रत्यक्ष है। विद्यापति राधा और कृष्णके संयोग शृङ्गारका ही विशेषतः वर्णन करते हैं। उसमें कहीं कहीं अश्लीलत्व भी आ गया है। पर अधिकांश स्थलोंमें प्रिया राधाका प्रियतम कृष्णके साथ बड़ा ही सात्विक और रसपूर्ण सम्मिलन प्रदर्शित किया गया है। बंगालके चण्डिदास आदि कृष्णभक्त कवियोंने भी राधाकी प्रधानता स्वीकृत की है। हिन्दीकी प्रसिद्ध भक्त और कवयित्री मीराबाईके प्रसिद्ध पद "मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई" में गोपाल कृष्णका स्मरण है जो निंबार्क सम्प्रदायके प्रचलनके अनुसार है। मीराबाईके कुछ पदोंमें जो अश्लीलता देख पड़ती है, वह वास्तवमें प्रेमातिरेकके कारण है और निःसन्देह सात्विक है। विद्यापति और मीराबाई पर विष्णुस्वामी तथा निंबार्क मतकी छाप थी। विष्णु स्वामी सिद्धान्तोंमें मध्वाचार्य और निंबार्क स्वामी रामानुजके अनुयायी थे।

वल्लभाचार्यके दार्शनिक सिद्धान्त शुद्धाद्वैतवाद कहलाये। शंकरके ज्ञानके बदले ये भक्तिको ग्रहण करते हैं और भक्ति ही साधन तथा साध्य भी बतलाई जाती है। वल्लभाचार्य तथा वल्लभाचारी देखो।

सूरदास—वल्लभाचार्यके शिष्योंमें सर्वप्रधान, सूरसागरके रचयिता, हिन्दीके अमर कवि महात्मा सूरदास हुए। जिनकी सरसवाणीसे देशके असंख्य सूखे हृदय हरे हो उठे और भग्नाश जनताको जीनेका नवीन उल्लास मिला। सूरदासका जन्म लगभग सं० १५४०में आगरासे मथुरा जानेवाली सड़कके किनारे रुनकता नामक गांवमें हुआ था।

जब महात्मा वल्लभाचार्यसे सूरदासजीकी भेंट हुई थी तब तक वे वैरागीके वेशमें रहा करते थे। तबसे ये उनके शिष्य हो गए और उनकी आज्ञासे नित्य प्रति अपने उपास्यदेव और सखा कृष्णकी स्तुतिमें नवीन

भजन बनाने लगे। इनकी रचनाओंका बृहत् संग्रह सूर-सागर है जिसमें एक ही प्रसंग पर अनेक पदोंका संकलन मिलता है। भक्तिके आवेशमें वीणाके साथ गाते हुए जो सरस पद उन अंध कविके मुखसे निःसृत हुये, उनमें पुनरुक्ति चाहे भले हो हो, पर उनकी मर्मस्पर्शिता और हृदयहारितामें किसीको कुछ भी संदेह नहीं हो सकता।



सूरदास।

सूरसागरके सम्बन्धमें कहा जाता है, कि उसमें सवा लाख पदोंका संग्रह है। पर अब तक सूरसागरकी जो प्रतियां मिली हैं उनमें छः हजारसे अधिक पद नहीं मिलते। परन्तु यह संख्या भी बहुत बड़ी है। इतनी ही कविता उसके रचयिताको सरस्वतीका वरद महाकवि सिद्ध करनेके लिये पर्याप्त है। इस ग्रन्थमें कृष्णकी बाल-लीलासे ले कर उनके गोकुलत्याग और गोपिकाओंके विरह तककी कथा फुटकर पदोंमें कही गई है। ये पद मुक्तकके रूपमें होते हुए भी एक भावको पूर्णता तक पहुंचा देते हैं। सभी पद गेय हैं, अतः हम सूर सागरको गीतकाव्य कह सकते हैं। गीत-काव्यमें जिस प्रकार छोटे छोटे रमणीय प्रसंगोंको ले कर रचना की जाती है, प्रत्येक पद जिस प्रकार स्वतःपूर्ण तथा निरपेक्ष होता है, कविके आंतरिक हृदयोद्गार होनेके कारण उसमें जैसे कविकी अंतरात्मा झलकती देख पड़ती है, विवरणात्मक कथा-प्रसंगोंका बहिष्कार कर तथा क्रोध आदि कठोर और कर्कश भावोंका सन्निवेश न कर उसमें जैसे सरसता और मधुरताके साथ कोमलता रहती है, उसी प्रकार सूरसागरके गेय पदोंमें उपर्युक्त सभी बातें पाई जाती हैं। यद्यपि कृष्णकी पूर्ण जीवन-गाथा भी सूरसागरमें मिलती है, पर उसमें कथा कहनेकी प्रवृत्ति बिलकुल नहीं देख पड़ती, केवल प्रेम, विरह आदि विभिन्न भावोंकी वेगपूर्ण व्यंजना उसमें बड़ी ही सुन्दर बन पड़ी है।

सूरदासकी कीर्तिको अमर कर देने और हिन्दी कवितामें उन्हें उच्चासन प्रदान करनेके लिए उनका बृहदाकार ग्रन्थ सूरसागर ही पर्याप्त है। सूरसागर हिन्दीकी अपने ढंगकी अनुपम पुस्तक है। शृंगार और वात्सल्यका जैसा सरस और निर्मल स्रोत इसमें बहा है वैसा अन्यत्र नहीं देख पड़ता। सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों तक सूरकी पहुंच है, साथ ही जीवनका सरल अकृत्रिम प्रवाह भी उनकी रचनाओंमें दर्शनीय है। यह ठीक है कि लोकके संबंधमें गंभीर व्याख्याएं सूरदासने अधिक नहीं कीं, पर मनुष्य जीवनमें कोमलता, सरलता और सरसता भी उतनी ही प्रयोजनीय हैं, जितनी गंभीरता। तत्कालीन स्थितिको देखते हुए तो सूरदासका उद्योग और भी स्तुत्य है। परन्तु उनकी कृति तत्कालीन स्थितिसे सम्बंध रखती हुई भी सार्वकालीन और चिरंतन है। उनकी उत्कट कृष्णभक्तिने उनकी सारी रचनाओंमें जो रमणीयता भर दी है, वह अतुलनीय है। उनमें नवोन्मेष शालिनी अद्भुत प्रतिभा है। उनकी पवित्र वाणीमें जो अनूठी उक्तियां आपसे आप आ कर मिल गई हैं, अन्य कवि उनकी जूठनसे ही सन्तोष कर सकते हैं। सूरदास हिन्दीके अन्यतम कवि हैं। उनके जोड़का दूसरा कवि गोस्वामी तुलसीदासको छोड़ कर दूसरा नहीं है। इन दोनों महाकवियोंमें कौन बड़ा है, यह

निश्चयपूर्वक कह सकना सरल काम नहीं।

महाकवि सूरदासके अतिरिक्त राधाकृष्णके प्रेममें मग्न सरस पद रचना चतुर कृष्णदास, परमानन्द, कुम्भन दास, चतुर्भुजदास, छीत स्वामी, गोविन्दस्वामी आदि अष्ट छापके कवि बल्लभस्वामी और उनके पुत्र विट्ठलनाथ की शिष्यपरंपरामें हुए। इन अनेक उत्कृष्ट कवियोंसे हिन्दी साहित्यकी अशेष श्रीवृद्धि हुई।

हितहरिवंश—अष्ट छापके बाहर रह कर भक्तिकाव्य-की रचना करनेवालोंमें हितहरिवंश और स्वामी हरिदास विशेष रीतिसे उल्लेखयोग्य हैं, क्योंकि ये दोनों ही उत्कृष्ट पदोंके प्रणेता और नवीनी संप्रदायोंके स्रष्टा



हितहरिवंश।

हुए। हितहरिवंशजी माध्व और निंबार्क मतोंसे प्रभावित थे, पर उन्होंने राधाकी उपासना ग्रहण कर राधावल्लभी सम्प्रदायका सृष्टि की। उनके "राधा-सुध-निधि" और "हित चौरासी" नामक ग्रन्थके सभी पद अत्यन्त कोमल और सरस भावापन्न हैं। इनके शिष्योंमें ध्रुवदास और व्यासजी प्रधान हुए, जिनकी रचनाओंसे हिन्दीकी पर्याप्त श्रीवृद्धि हुई। अत्यंत कोमल भावापन्न सरस पदोंके रचयिता रसखान भी इस युगके भक्ति-स्रोतमें मग्न महाकवि हुए। रसखान देखो।

अकबरी दरबार—इन भक्त कवियोंके समकालीन प्रसिद्ध मुगल-सम्राट् अकबरके दरबारमें भी अनेक कवियोंको प्रश्रय मिला था। अकबरका राजत्वकाल सुख और समृद्धिसे सम्पन्न था। वैभवकी अट्टालिकाएं खड़ी की जा रही थीं। हिन्दू और मुसलमानोंका साम्य बढ़ रहा था। ऐसे अवसर पर नीतिकार और सूक्तिकार कवियों-का अभ्युदय स्वाभाविक था।

रहीम—अकबरके दरबारके उच्च कर्मचारी होते हुये भी हिन्दी कविताकी ओर खिंचे थे। नीतिके सुन्दर सुन्दर दोहे इन्होंने बड़ी मार्मिकतासे कहे। जीवनके सुख-वैभव का अच्छा अनुभव करनेके कारण रहीमकी तत्संबंधी उक्तियोंमें तीव्र भावव्यंजना है। दोहोंके अतिरिक्त इन्होंने बरवै, सोरठा, सवैया, कवित्त आदि अनेक छंदों तथा संस्कृतके वृत्तोंमें भी रचना की है। उनका बरवै छंदोंमें लिखा नायिकाभेद ठेठ अवधीके माधुर्यसे समन्वित है। कहते हैं, कि गोस्वामी तुलसीदास तकने इससे प्रभावित हो कर इसी छंदमें बरवै रामायण लिखी थी। गोस्वामीजीकी ही भांति रहीमका अवधी और व्रजभाषाओं पर समान अधिकार था और गोस्वामीजी की रचनाओंकी भांति इनकी रचनाएं भी जनतामें अत्य-धिक प्रचलित हुईं। गोस्वामीजीसे इनकी भेंट हुई थी और दोनोंमें सौहार्द भाव भी था। ये बड़े ही उदार-हृदय दानी थे और इनका अनुभव बड़ा ही विस्तृत, सूक्ष्म और सत्य था।

गंग और नरहरि—ये दोनों ही अकबरके दरबारके श्रेष्ठ हिन्दू कवि थे। गङ्गकी शृंगार और वीररसकी जो रचनायें संग्रहोंमें मिली हैं, उनसे इनके भाषा अधि-कार और वाग्वैभवका पता चलता है। जनतामें इनका बड़ा नाम है, परन्तु इनकी एक भी रचित पुस्तक अब तक नहीं मिली। "तुलसी गंग दोऊ भये, सुक-विनके सरदार" की पंक्ति इन्हींको लक्ष्य करके कही गई है। नरहरि बंदीजन अकबरके दरबारमें सम्मानित हुए थे। कहते हैं कि बादशाहने इनका एक छप्पय सुन कर अपने राज्यमें गो-वध बंद कर दिया था। नीति या

पर इन्होंने अधिक छंद लिखे। गंग और नरहरि देखो।

अकबरके दरबारियोंमें बीरबल और टोडरमल भी कवि हो गए हैं। बीरबल अकबरके मंत्रियोंमेंसे थे और अपनी वाक्चातुरी तथा विनोदके लिये प्रसिद्ध थे। इनके आश्रयमें कवियोंको अच्छा सम्मान मिला था और इन्होंने स्वयं व्रज-भाषामें सरस और सानुप्रास रचना की थी। महाराज टोडरमलके नीति संबंधी फुटकर छंद मिलते हैं जो कविताकी दृष्टिसे बहुत उच्च कोटिके नहीं हैं। इनके अतिरिक्त मनोहर, होलराय आदि कवि भी अकबरी दरबारमें थे। स्वयं बादशाह अकबरकी भी व्रज भाषामें कुछ रचनायें पाई जाती हैं। व्रज भाषाको इतना बड़ा राजसम्मान इसको पहिले कभी नहीं मिला था।

दरबारसे असंपर्कित कवियोंमें सेनापतिका स्थान सर्वोच्च है। इन्होंने षट्ऋतुओंका वर्णन किया है जो बड़ा ही हृदयग्राही हुआ है। इन्हें प्रकृतिकी सूक्ष्म सूक्ष्म बातोंका अनुभव भी था और इनका निरीक्षण भी विशेष तीव्र था। इनकी पिछले समयकी भक्ति और वैराग्य की रचनायें चित्त पर स्थायी प्रभाव डालती हैं। भाषा व्रजकी ग्रामीण होते हुए भी अलंकृत है। इनका कवित्त-रत्नाकर अब तक अप्रकाशित है। सेनापति देखो।

इसी कालकी रचनाओंमें नरोत्तमदासका "सुदामाचरित" भी है, जो कविताकी दृष्टिसे अच्छा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अकबर और जहांगीर-के राजत्वकालमें हिन्दी कविता, क्या भाषा और क्या भावोंकी दृष्टिसे विशेष प्रौढ़ हो गई।

रीतिकाल।

हिन्दीमें सूर और तुलसीके समय तक साहित्यकी इतनी अधिक अभिवृद्धि हो चुकी थी कि कुछ लोगोंका ध्यान भाषा और भावोंको अलंकृत करने तथा संस्कृतकी काव्यरीतिका अनुसरण करनेकी ओर खिंच रहा था। इसका यह अर्थ नहीं है कि सूर और तुलसी तथा उनके पूर्वके सत्कवियोंमें आलङ्कारिकता नहीं थी अथवा वे काव्य रीतिसे परिचित ही न थे। ऐसी बात नहीं थी। अनेक कवि पूर्ण शास्त्रज्ञ और काव्य-कलाविद् थे। वे सूक्ष्मसे सूक्ष्म आलंकारिक शैलियोंका पूरा पूरा ज्ञान रखते थे। स्वयं महात्मा तुलसीदासजीने अपनी अनभिज्ञताका विज्ञापन देते हुए भी व्रज और अवधी दोनों भाषाओं पर अपना पूर्ण आधिपत्य तथा काव्य रीतिका सूक्ष्मतम अभिज्ञान दिखाया है। अन्तर इतना ही है कि उन्हें काव्य-कलाको साधन मात्र बना कर रचना करनी थी, साध्य बना कर नहीं। अतएव उन्होंने अलङ्कारों आदिसे सहायकका काम लिया है, स्वामीका नहीं। इसके विपरीत पीछेके जो कवि हुए, उन्होंने काव्य-कला की परिपुष्टिको ही प्रधान मान कर शेष सब बातोंको गौण स्थान दिया और मुक्तकोंके द्वारा एक एक अलङ्कार एक एक नायिका अथवा एक एक ऋतु वर्णन किया है। आगे चल कर यह प्रथा इतनी प्रचलित हुई कि बिना रीति-ग्रन्थ लिखे कवि-कर्म पूरा नहीं समझा जाने लगा। हिंदी साहित्यके इस कालको हम इसीलिये रीतिकाल कहते हैं। नीचे रीतिकालके कुछ मुख्य कवियों तथा आचार्यों-का संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

केशवदास—यद्यपि समय विभागके अनुसार केशव-दास भक्तिकालमें पड़ते हैं और यद्यपि गोस्वामी तुलसी-दास आदिके समकालीन होने तथा रामचन्द्रचन्द्रिका आदि ग्रंथ लिखनेके कारण वे कोरे रीतिवादी नहीं कहे जा सकते, परंतु उन पर पिछले कालके संस्कृत साहित्य का इतना अधिक प्रभाव पड़ा था कि अपने कालकी हिंदी काव्यधारासे पृथक् हो कर वे चमत्कारवादी कवि हो गए और हिंदीमें रीति ग्रंथोंकी परम्पराके आदि आचार्य कहलाए।

केशवदास ओड़छेके राजा इंद्रजित्सिंहके आश्रित दरबारी कवि थे। संस्कृत साहित्य-मर्मज्ञ पंडित-परम्परामें उत्पन्न होनेके कारण इनकी प्रवृत्ति रीति-ग्रंथों की ओर हुई थी। संस्कृतसे पूर्ण परिचित होनेके कारण इनकी भाषा संस्कृतमिश्रित और साहित्यिक है। इनकी कृतियोंमें कविप्रिया, रसिकप्रिया, रामचंद्रचंद्रिका आदि मुख्य हैं। यद्यपि केशवके पहले भी कृपाराम, गोप, मोहन-लाल आदिने रीति साहित्यके निर्माणका प्रारम्भ किया था, पर उनकी रचनाएं केशवदासके सर्वतोमुख प्रयास-के सामने एकांगी हो गई हैं। रीति कालके इन प्रथम आचार्य केशवदासका स्थान हिंदीमें बहुत अधिक महत्त्व-पूर्ण है। कुछ आलोचक उन्हें हृदयहीन कहते हैं पर

हृदयहीनता कह कर सम्बोधित करनेमें हम उनके प्रति अन्याय करते हैं, क्योंकि एक तो उनकी हृदयहीनता जानो समझी हृदय-हीनता है, और फिर अनेक स्थलोंमें उन्होंने पूर्ण सहृदय होनेका परिचय दिया है। जिस कविकी रसिकता वृद्धावस्था तक बनी रहे, उसे हृदयहीन कहा भी कैसे जा सकता है? यह बात अवश्य है कि केशवदास उन कविपुंगवोंमें नहीं गिने जा



केशवदास।

सकते जो एक विशिष्ट परिस्थितिके निर्माता हैं। वे तो अपने समयकी परिस्थिति द्वारा निर्मित हुए हैं और उसके प्रत्यक्ष प्रतिबिंब हैं। केशवदास देखो।

चिंतामणि और मतिराम—ये त्रिपाठी बन्धु मुक्तक छंदोंमें रीतिशैलीकी रचना करनेवालोंमें अग्रगामी हुए। चिन्तामणिके काव्यविवेक, कविकुलकल्पतरु, काव्यप्रकाश आदि बड़ी ही सरस कविता-पुस्तकें हैं। मतिराम तो अपनी भाषा और भावोंके सरल, सुंदर स्वाभाविक प्रवाहके लिये रीतिकालके सर्वश्रेष्ठ कवियोंमें परिगणित हुए। रसराज और ललितललाम रीतिकालकी श्रेष्ठ रचनाएं इनकीही कृतियां हैं। मतिराम देखो।

बिहारीलाल—रीतिकालके कवियोंमें प्रसिद्धिकी दृष्टिसे बिहारी अन्यतम हैं। बिहारी उस श्रेणीके समीक्षकोंमें



बिहारीलाल।

सबसे अधिक प्रिय हैं जो अलग अलग दोहोंकी कारीगरी पर मुग्ध होते और बातकी करामात पसंद करते हैं। सौंदर्य और प्रेमके सुन्दरतम चित्र बिहारीने खींचे हैं। पर अलंकरणकी ओर उनकी प्रवृत्ति सबसे अधिक थी। उनकी कविता आवश्यकतासे अधिक नपी तुली हो जानेके कारण सर्वत्र स्वाभाविकता समन्वित नहीं है। बिहारीने

घाट-बाट देखनेमें जितना परिश्रम उठाया होगा, उतना वे यदि हृदयकी टोहमें करते तो हिन्दीकविता उन्हें पा कर अधिक सौभाग्यशालिनी होती। यह सब होते हुए भी उनकी सतसई हिंदीकी अमरकृति कहलायगी और श्रेणी-विशेषके साहित्य-समीक्षकों तथा काव्य-प्रेमियोंके लिये तो वह सर्वश्रेष्ठ रचना है ही। दोहे जैसे छोटे छन्दमें इतने अलंकारोंकी सफल योजना करनेमें विहारीकी टक्करका कदाचित् ही कोई कवि हिंदीमें मिले।

विहारीलाल देखो।

देव—ये इटावेके रहनेवाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका काव्यक्षेत्र बड़ा व्यापक और विस्तृत था। रीतिकाल-के कवियोंमें इतनी व्यापकता और कहीं नहीं देख पड़ती। देवकी सौन्दर्य-विवृति सत्य अतः मर्मस्पर्शिनी है। परन्तु इनके गायनका मुख्य विषय प्रेम है। रीतिकालके थोड़े-से आचार्योंमें देवकी गणना की जाती है। रीति संबंधिनी उनकी कुछ स्वतंत्र उद्भावनाओंका उल्लेख मिश्र बंधुओंने किया है। पांडित्यकी दृष्टिसे रीतिकालके समस्त कवियोंमें देवका स्थान आचार्य केशवदाससे कुछ नीचे माना जा सकता है, कलाकारकी दृष्टिसे वे विहारीसे निम्न ठहर सकते हैं, परन्तु अनुभव और सूक्ष्मदर्शितामें उच्चकोटिकी काव्यप्रतिभाका मिश्रण करने और सुंदर कल्पनाओंकी अनोखी शक्ति ले कर विकसित होनेके कारण हिंदी काव्यक्षेत्रमें सहृदय और प्रेमी कवि देवको रीतिकालका प्रमुख कवि स्वीकार करना पड़ता है।

भिखारीदास—ये ट्योंगा, प्रतापगढ़ (अवध) के रहनेवाले कायस्थ कवि थे। इनका काव्यनिर्णय ग्रन्थ अब भी रीतिके विद्यार्थियोंका प्रिय ग्रंथ है। भिखारीदासके आचार्यत्वकी बड़ी प्रशंसा की जाती है और रीतिके सब अंगोंका विवेचन करनेके कारण उनकी कृतियां बड़े आदरसे देखी जाती हैं। उनकी सुन्दर समीक्षाओं तथा मौलिक उद्भावनाओंका उल्लेख भी किया गया है। कविताकी दृष्टिसे दासजीकी रचनाएं बहुत ऊंची नहीं उठीं। रीति-कालके पूर्ववर्ती कवियोंके भावोंको ले कर स्वतंत्र विषय खड़ा करनेमें यद्यपि वे बड़े पटु थे, पर भावोंके निर्वाहकी मौलिक शक्ति न होनेके कारण उन्हें सफलता कम मिली है। अवधमें रह कर शुद्ध चलती व्रज-भाषा लिख सकना तो बहुत कठिन है, पर दासजीकी भाषा सामान्यतः शुद्ध और साहित्यिक है। इससे उनके व्रज भाषाके विस्तृत अध्ययनका पता चलता है। समीक्षा बुद्धिके अभावके कारण रीतिकी लीक पर चलनेवाले अनेक कवियोंसे भिखारीदासका स्थान बहुत ऊंचा है, पर कवियोंकी बहुत ऊंची पंक्तिमें उन्हें कभी स्थान नहीं दिया गया।

पद्माकर—रीतिकालके अंतिम चरणके पद्माकर सबसे प्रसिद्ध कवि हैं। ये तैलङ्ग ब्राह्मण मोहनलाल भट्टके पुत्र थे। पिताकी प्रसिद्धिके कारण अनेक राजदरबारोंमें इनका सम्मान हुआ था। इनकी शृंगाररसकी कविताएं इतनी प्रसिद्ध हुईं कि इनके नाम पर कितने ही कविनाम-धारियोंने अपनी कुत्सित वासनाओंसे सने उद्गारोंको मनमाने ढंगसे फैलाया। आज भी इनके नामकी ओट ले कर बहुत-सी अश्लील रचनाएं देहातोंकी कविमंडलीमें सुनी सुनाई जाती हैं। पद्माकरकी कृतियोंमें यदि थोड़ा अश्लीलत्व है तो उनके अनुकरणकारियोंमें उसका दशगुणा। पद्माकरकी अनुप्रासप्रियता भी बहुत प्रसिद्ध है। जहां अनुप्रासोंकी ओर अधिक ध्यान दिया जायगा वहां भावोंका नैसर्गिक प्रवाह अवश्य भंग होगा और भाषामें अवश्य तोड़ मरोड़ करनी पड़ेगी। संतोषकी बात इतनी ही है कि उनके छंदोंमें उनकी भावधाराको सरल स्वच्छन्द प्रवाह मिला है, जिनमें हावोंको सुन्दर योजनाके बीचमें सुन्दर चित्र खड़े किए गए हैं।

इसके अतिरिक्त कालिदास त्रिवेदी, कुलपति मिश्र, कृष्ण कवि, ग्वाल कवि, घनानन्द, ठाकुर कवि, तोषनिधि, थान कवि, दुलह, द्विजदेव, नेवाज, पजनेस, प्रतापसाहि, बोधा, भूपति (राजा गुरुदत्त सिंह), मण्डन मिश्र, महाराज जसवन्त सिंह, यशोदानन्दन, रघुनाथ, रसनिधि, रसलीन, रसिक सुमति, श्रीधर या मुरली, श्रीपति, सुखदेव मिश्र आदिके नाम उल्लेखनीय हैं।

भूषण और लाल—हिन्दीके इस सर्वतोव्याप्त शृंगार प्रवाहके बीच भूषण और लालका अभ्युदय हुआ जिन्होंने जातीय जागृतिका शक्तिशाली उपक्रम किया। 'भूषण'

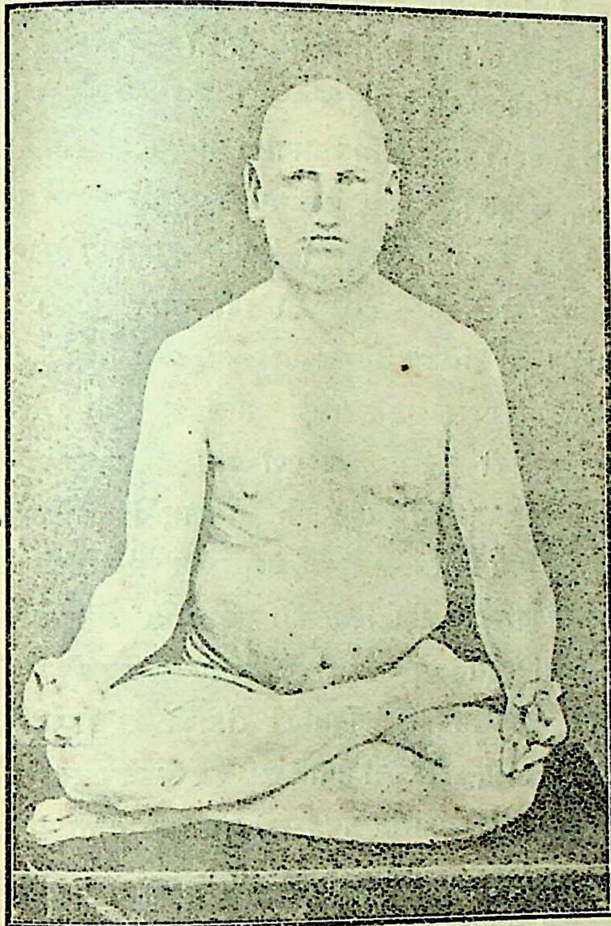
और 'लालकवि' देखो। औरंगजेबके धार्मिक कट्टरपनके कारण जब हिन्दू जातिका अस्तित्व ही संकटापन्न हो गया, तब प्रतिकारकी प्रेरणासे महाराष्ट्र-शक्तिका अभ्युदय हुआ। इस शक्तिको संघटित करनेवाले छत्रपति-शिवाजी हुए जिनके मार्गप्रदर्शनका कार्य समर्थ गुरु रामदासने किया था। शिवाजीके अतिरिक्त बुंदेलखंडके प्रसिद्ध अधिपति छत्रसालने भी स्थानीय राजपूत शक्तिको उत्तेजित करनेका सफल प्रयास किया था। इस प्रकार महाराष्ट्र और मध्यदेशकी शक्तिका जो उत्थान हुआ, उसमें राष्ट्रीयताकी पूरी पूरी झलक दिखाई पड़ी। संयोगसे इन दोनों राष्ट्रनायकोंको भूषण तथा लाल जैसे सुकवियोंका सहयोग भी प्राप्त हुआ, जिससे शक्ति-संघटनमें बड़ी सहायता मिली। जातियोंके उत्थानमें जब कभी महात्माओं, योद्धाओं तथा कवियोंकी सम्मिलित सहायता मिलती है, तब वह बड़े ही सौभाग्यकी सूचना होती है और उससे उनके कल्याणका पथ बहुत कुछ निश्चित और निर्धारित हो जाता है। उसी कालमें सिक्खोंकी वीरताका भी उदय हुआ और उन्होंने राष्ट्रहितकी साधनामें पूरा पूरा सहयोग दिया, पर सिक्ख धर्मका आरंभ संतोंकी वाणी तथा उन्हींकी प्रवृत्ति और प्रकृतिके अनुकूल हुआ था। पीछेसे समयकी स्थितिने इस धर्म पर ऐसा प्रभाव डाला कि वह संत साधुओंके धर्मका बाना उतार कर वीरोंको वेश भूषा तथा कृतियोंसे सुसज्जित और अलंकृत हो गया। यद्यपि गुरु गोविंदसिंहके समयमें हिंदी काव्योंकी रचना हुई पर वे वीरगाथात्मक नहीं थे वरन् उस समयके साहित्यकी प्रगतिके अनुकूल थे। भूषण और लालकी रचनाओं पर विचार करते हुए हमें यह भूल न जाना चाहिये कि इनका आविर्भाव उस कालमें हुआ था जिस कालमें रीति-ग्रंथोंकी परम्परा ही सर्वत्र देख पड़ती थी। नायिका-भेदकी पुस्तकों, नखशिख वर्णनों और श्रृंगाररसके फुटकर पद्योंका जो प्रबल प्रवाह उस समय चला था, उससे बच कर रहना तत्कालीन किसी कविके लिये बड़ा ही कठिन था। भूषण और लाल भी उस सर्वतोमुखी प्रवाहसे एकदम बचे न रह सके। यद्यपि भूषणकी सभी रचनाएं प्रायः वीररसकी हैं परंतु उन्होंने अपने "शिवराजभूषण" नामक ग्रंथमें उन रचनाओंको विविध अलङ्कारों आदिके उदाहरण-स्वरूप रखा है। यह काल-दोष था। उस समय इससे बच सकना असम्भव था। इसी प्रकार लालकविने भी यद्यपि वीरव्रत धारण किया था, तथापि "विष्णुविलास' नामक नायिका-भेदकी एक पुस्तक उन्होंने लिख ही डाली। कविवर लालके 'छत्रप्रकाश' नामक ग्रंथमें प्रसिद्ध छत्रसालकी वीरगाथा अङ्कित है और प्रबंधकाव्यके रूपमें होते हुए भी उसकी रचना अत्यंत प्रौढ़ और मार्मिक हुई है। महाकवि भूषणकी ही भांति कविवर लालके इस ग्रंथमें जातीयताकी भावना मिलती है और उन्हींकी भांति इनकी इस रचनामें श्रृङ्गार रस नहीं आने पाया है।

आधुनिक काल।

कवितामें परिवर्तन—हिन्दीकी ह्रासकारिणी श्रृंगारिक कविताके प्रतिकूल आंदोलनका श्रीगणेश उस दिनसे समझा जाना चाहिये जिस दिन भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने अपने "भारतदुर्दशा" नाटकके प्रारंभमें समस्त देशवासियोंको संबोधित करके देशकी गिरी हुई अवस्था पर उन्हें आँसू बहानेको आमंत्रित किया था। इस देशके और यहांके साहित्यके इतिहासमें वह दिन किसी अन्य महापुरुषके जयंती-दिवससे किसी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं है। उस दिन शताब्दियोंसे सोते हुए साहित्यने जागनेका उपक्रम किया था, उस दिन रूढ़ियोंकी अनिष्टकर परंपराके विरुद्ध प्रबल क्रांतिकी घोषणा हुई थी। उस दिन छिन्न भिन्न देशको एक सूत्रमें बांधनेकी शुभ भावनाका उदय हुआ था। उस दिन देश और जातिके प्राण एक सत्कविने सच्चे जातीय जीवनकी झलक दिखाई थी और उसी दिन संकीर्ण प्रांतीय मनोवृत्तियोंका अंत करनेके लिये स्वयं सरस्वतीने राष्ट्रभाषाके प्रतिनिधि कविमें कंठमें बैठ कर एक राष्ट्रीय भावना उच्छ्वसित की थी। भारत माताकी करुणोज्ज्वल छवि देशने और देशके साहित्यने उसी दिन देखी थी और उसी दिन सुनी थी टूटी फूटी श्रृङ्गारिक वीणाके बदले गंभीर झंकार, जिसे सुनते ही एक नवीन जीवनके उल्लासमें वह नाच उठा था।

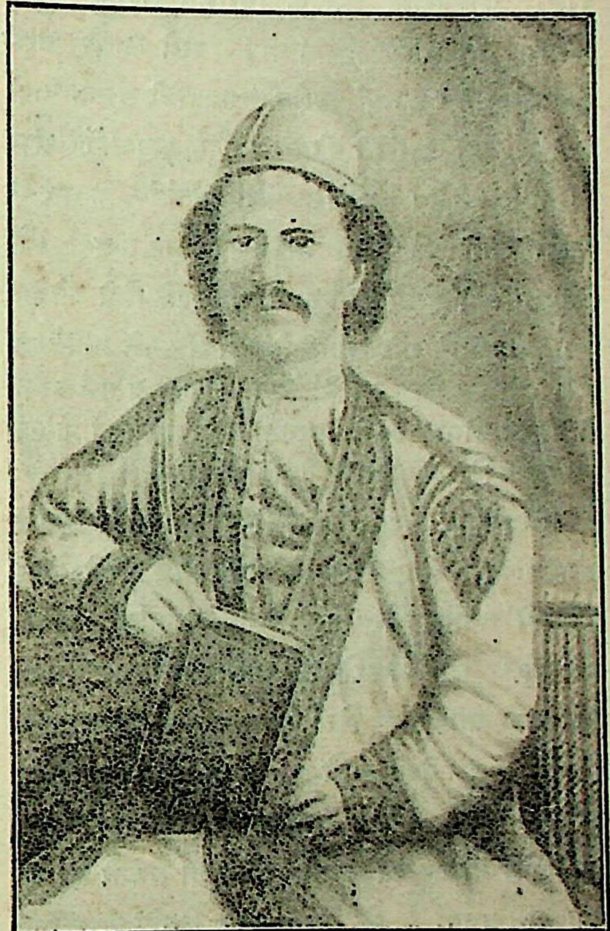
राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, भारतेन्दु

हरिश्चंद्र आदिके उद्योगसे सामाजिक; साम्प्रदायिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक क्षेत्रोंमें जो हलचल मची, उसके परिणामस्वरूप सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात हुई जनतामें शिक्षाकी अभिरुचि। संस्कृत तथा उर्दू फारसीकी ओर प्रवृत



स्वामी दयानन्द सरस्वती।

करनेवाली प्रेरणा स्वामी दयानंदसे अधिक मिली और हिन्दी अङ्गरेजीकी पढ़ाई तो कुछ पहिलेसे ही प्रारम्भ हो चुकी थी। पड़ोसमें होनेके कारण उन्नतिशील बंगला भाषाकी ओर भी कुछ लोगोंका ध्यान लगभग उसी समयसे खिंचा। इस प्रबल शिक्षाप्रचारका जो प्रभाव राजनीतिक अभिज्ञता, सामाजिक जागति और धार्मिक चेतना आदिके रूपमें पड़ा, वह तो पड़ा ही, हिन्दी साहित्यक्षेत्र भी उसके शुभ-परिणामस्वरूप अनंत उर्वर हो गया। सारा साहित्य नवीन प्रकाशसे परिपूर्ण हो कर ज्योतिकी शत सहस्र किरणें विकर्ण करने लगा। हमारी कविता भी सजग हो उठी। वह अपनी स्थविरताका परित्याग कर आगे बढ़ी और सामयिक प्रवृत्तियोंके अनुकूल रूप-रंग बदल कर शिक्षित जनताके साहचर्यमें आ गई। उस कालकी हिन्दी कविता मुख्यतः देश-प्रेम और जातीयताकी भावनाको ले कर उदित हुई थी, यद्यपि अन्य प्रकारकी रचनायें भी थोड़ी बहुत होती रहती थीं।



भारतेंदु हरिश्चंद्र।

भारतेन्दु हरिश्चंद्रकी कविता हिन्दीमें नवीन प्रगतिकी पताका ले कर आई थी, उस समयके अन्य कवियोंने सच्चे सैनिकोंकी भांति अपने सेनापतिका अनुगमन किया था। उन सभी कवियोंपर भारतेन्दुका प्रभाव स्पष्टतः देख पड़ता है। यहां हम हरिश्चंद्रकी फुटकर रचनाओंकी बात नहीं कहते जो चली आती हुई शृंगारिक कविताकी श्रेणीकी ही मानी जायेंगी। उनकी जो रचनायें जातीय भावनाओंसे प्रेरित हो कर लिखी गईं, जिनमें देशकी अवस्था और समाजकी अवस्था आदिका वर्णन है, यहां उसीका विवेचन अभीष्ट है। हम यह स्वीकार करते हैं,

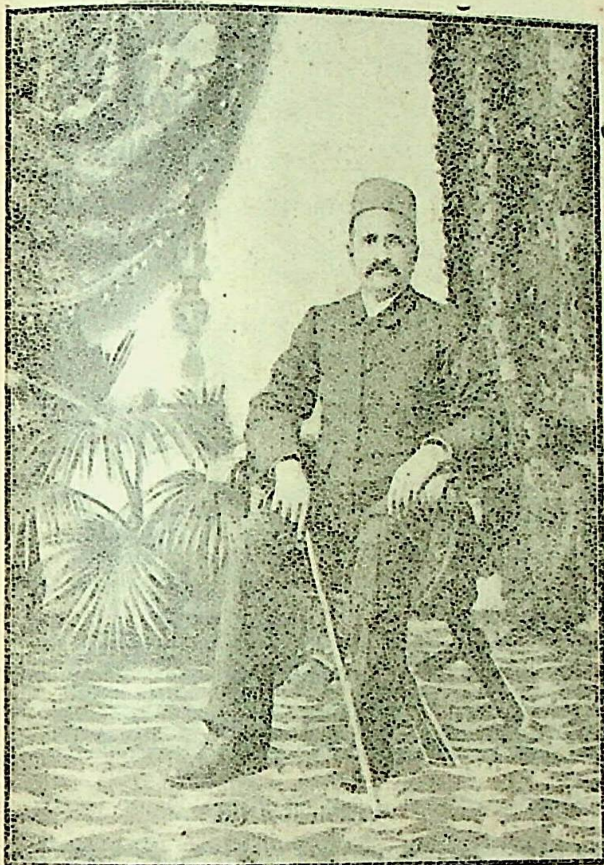
कि भारतेन्दुमें उत्कट देश-प्रेम और प्रगाढ़ समाज-हितैषिताके भाव थे, परन्तु साथ ही हम यह भी मान लेते हैं कि उनका देशानुराग, जातिप्रेम आदि बाह्य परिस्थितियोंके फलस्वरूप थे, उन्हें उन्होंने जीवनके प्रवाहके भीतरसे नहीं देखा था। अनेक अवसरों पर तो राजा शिवप्रसाद आदिके विरोधमें इन्होंने स्वदेशप्रेमका व्रत धारण किया था। इसी कारण उनकी तत्संबंधिनी रचनायें विशेष तन्मयताकी सूचना नहीं देतीं। कहीं कहीं तो बंगला आदिके अनुवादोंके रूपमें ही व्यक्त हुई हैं। क्षणिक परिस्थितियोंके आधार पर निर्मल साहित्यके मूलमें भावनाकी वह तीव्रता और स्थिरता नहीं होती जो स्थायी साहित्यके लिये अपेक्षित है। राजनीति और समाजनीतिको जीवनके अविच्छिन्न अंग बना कर जो रचनायें होंगी, काव्यकी दृष्टिसे उनका ही महत्त्व होगा, उन्हें प्रचारक या उपदेशककी दृष्टिसे देखनेसे कविकर्ममें अवश्य बाधा पड़ेगी।

हरिश्चंद्रके उपरांत हिन्दीके कवियोंकी प्रवृत्ति अंगरेजीकी लीरिक कविताके अनुकरणमें छोटी छोटी कवितायें बनाने और उन्हें पत्रोंमें प्रकाशित करनेकी ओर हुई। लीरिक कवितामें आत्माभिव्यंजनकी प्रधानता रहनी चाहिए, पर हिन्दीके तत्कालीन कविताकारोंमें यह बात कम देखी जाती है। न तो कवियोंके उपयुक्त चुनावकी दृष्टिसे और न तन्मयताकी दृष्टिसे उनकी रचनाएं श्रेष्ठ लीरिक कविताओंमें गिनी जा सकती हैं। यह स्पष्ट जान पड़ता है, कि शिक्षा आदि विषयों पर कविता लिखनेवाले व्यक्तिमें काव्यकी सच्ची प्रेरणा कम होती है, निबंधरचनाका भाव अधिक होता है। हिन्दीके उस कालके कवियोंने ऐसे ही विषयों पर कविता की, जिससे जनसमाजमें जागति तो फैली, पर कविताका विशेष कल्याण न हो सका। काव्यके लिये निबंधोंकी सी बुद्धिगम्य विचारप्रणालीकी आवश्यकता नहीं होती, भावोंको उच्छ्वसित करना आवश्यक होता है। अनेक प्रमाणोंको एकत्र कर पद्यका ढांचा खड़ा करना कविता नहीं है और चाहे जो कुछ हो। उस कालकी हिन्दी कविता में समाजसुधार और जातीयताका इतना दृढ़ प्रभाव पड़ चुका था, कि उनके प्रभावसे मुक्त हो कर रचना करना किसी कविके लिये संभव नहीं था।

अब तक व्रजभाषा ही कविताका माध्यम थी और कवित्त सवैया आदि छंदोंका ही प्रयोग अधिक होता था। पर इस समयके लगभग भाषाके माध्यममें परिवर्तन किया गया, व्रजभाषाके बदले खड़ी बोलीका प्रयोग होने लगा। इस समय तक खड़ी बोली हिन्दी गद्यकी प्रचलित भाषा हो चुकी थी, पर पद्यमें अपनी कोमलता और सौंदर्यके कारण व्रज भाषा ही व्यवहारमें लाई जा रही थी। खड़ी बोलीके पक्षपातियोंका सबसे बड़ा तर्क यही था कि बोलचालकी जो भाषा हो उससे विभिन्न भाषाका प्रयोग कवितामें न होना चाहिये। यहाँ हम इस तर्ककी उपयुक्तता पर कुछ भी नहीं कहेंगे। पर पढ़ी लिखी जनताकी प्रवृत्ति खड़ी बोलीकी ओर अधिक हो रही थी, इसमें संदेह नहीं। छंदोंमें भी अनेकरूपता आने लगी थी। नए नए छंदोंका इस कालमें अच्छा आविष्कार हुआ। परंतु इस कालकी सबसे महत्त्वपूर्ण बात है व्याकरणकी प्रतिष्ठा। भारतेंदु हरिश्चन्द्रके समसामयिक कवियोंको जो मार्ग प्रशस्त करना था, उसमें व्याकरणके जटिल नियमोंको स्थान नहीं दिया जा सकता था। हिन्दीके उस क्रांति-युगमें व्याकरणकी व्यवस्था संभव भी नहीं थी। उस समय तो कविताको रीतिकी संकीर्णतासे निकलना था, उसे खुली हवामें ला कर स्वस्थ करना था, पर कुछ कालके उपरांत जब हिन्दी गद्य कुछ उन्नत हुआ, तब भाषा-संस्कार आदिकी ओर भी ध्यान दिया गया। यह सब होते हुए भी हमको इतना तो अवश्य स्वीकृत करना पड़ेगा, कि उस कालकी खड़ी बोली बड़ी कर्कशता ले कर आई थी, उसमें काव्योपयुक्त कोमलता नहीं थी। परन्तु कर्कशतामें कोमलताका समावेश करने और व्याकरणके नियमोंसे भाषाको शृंखलित करनेकी चेष्टा उस कालमें अवश्य हुई थी।

पाठकजी और द्विवेदीजी—स्वर्गीय पंडित श्रीधर पाठक और पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी खड़ी बोलीकी कविताके प्रथम लेखक और आचार्य हुए। पाठकजीने गोल्डस्मिथकी कवितापुस्तकोंका अनुवाद 'ऊजड़ ग्राम' 'एकांतवासी योगी' और 'श्रांत पथिक' के नामसे किया और कुछ मौलिक कविताएँ भी कीं। द्विवेदीजीने मराठी साहित्यकी प्रगतिसे परिचित हो कर

हिन्दीकी सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिका 'सरस्वती'में छोटी छोटी रचनाएँ कीं और अनेक कवियोंको प्रोत्साहन दिया। यदि पाठकजीमें कवित्व द्विवेदीजीसे अधिक है तो द्विवेदीजीमें भाषाका मार्जन पाठकजीको अपेक्षा



श्रीधर पाठक।

अधिक है। उस समय खड़ी बोलीका जो अनिश्चित रूप प्रचलित था उसे सुधार कर काव्योपयुक्त बनानेकी चेष्टा करनेके कारण द्विवेदीजीका स्थान अधिक महत्त्वपूर्ण समझा जायगा। परन्तु मराठी कविताको कर्कशता द्विवेदीजीकी रचनाओंमें भी देख पड़ी। कुछ काल उपरांत द्विवेदीजीने 'कुमारसंभव' आदि संस्कृत ग्रन्थोंके अनुवाद कवितामें किए, जो अपने ढंगके अनुपम हुए। पाठकजीने व्रजभाषाका पल्ला भी पकड़ा और बड़ी ही मधुर कविताकी सृष्टि की। द्विवेदीजीके अनुयायियोंमें आगे चल कर अनेक प्रसिद्ध कवि हुए, जिनमें बाबू मैथिलीशरण गुप्त सबसे अधिक यशस्वी हैं। पाठकजीको प्रकृतिकी रम्य क्रीड़ाभूमि काश्मीरमें तथा अन्य मनोहर पहाड़ी प्रदेशोंमें रहनेका सुअवसर मिला था, जिसके फलस्वरूप उनके रसिक हृदयने प्राकृतिक दृश्योंके साथ आंतरिक अनुराग प्राप्त कर लिया था। इस अनुरागकी स्पष्ट झलक उनकी रचनाओंमें देख पड़ती है।

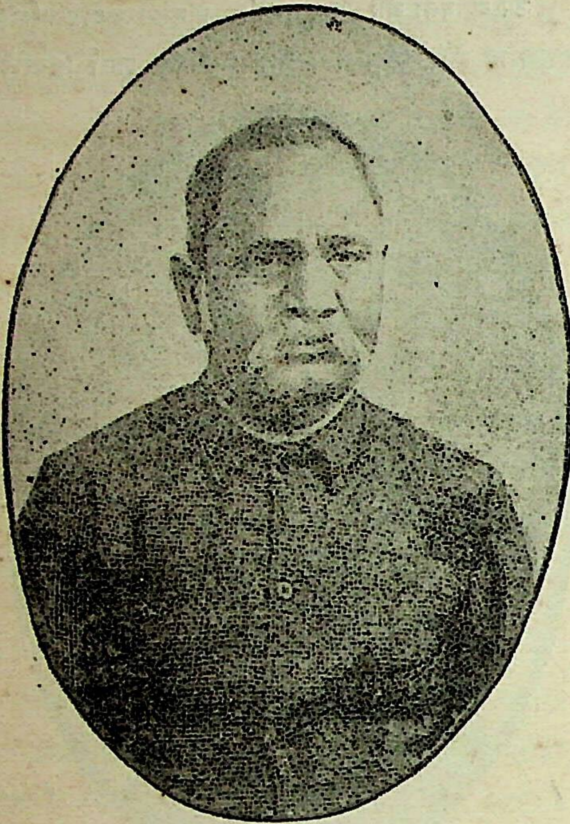
उपाध्यायजी और नाथूरामजी—पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय और पण्डित नाथूराम शंकर शर्मा हिन्दीके



अयोध्यासिंह उपाध्याय (हरिऔध)।

उन प्रसिद्ध कवियोंमें है जिन्होंने द्विवेदीजीके प्रभावके बाहर रह कर काव्य-रचना की। अपने प्रारंभिक कविता-कालमें उपाध्यायजी व्रजभाषामें कविता करते थे; पर आगे चल कर उन्होंने पदावलीका आश्रय ले कर संस्कृत वृत्तोंमें 'प्रियप्रवास' की रचना की। 'प्रियप्रवास'-में उपाध्यायजीकी कवित्वशक्ति बड़ी सुन्दर और उसके कुछ स्थलोंमें काव्यत्व उच्च कोटिका मिला, परन्तु 'प्रियप्रवास'की रचनाके उपरांत उन्हें काव्यमें मुहावरोंका चमत्कार दिखाने तथा उपदेशों और व्यंग्यों द्वारा समाजसुधार करनेकी धुन सवार हुई। तथापि अंतःकरणको अकृत्रिम प्रेरणासे लिखो जानेके कारण उनकी अनेक कृतियां अच्छी बन पड़ी हैं। हिन्दीके आधुनिक कवियोंमें उपाध्यायजी अपनी कृति बहुलता और अनेकमुखी साहित्यसृष्टिके कारण भिन्न-भिन्न पाठकोंकी रुचिको भिन्न-भिन्न प्रकारसे आकर्षित करते हैं।

पण्डित नाथूरामजीशर्मा विलक्षण शब्दनिर्माता और कवि हैं। आर्यसमाजी होते हुए भी उनकी सब कविताएं



पंडित नाथूराम शंकर शर्म्मा।

सांप्रदायिक नहीं हो गई हैं और कुछमें तो उत्तम कोटिके कवित्वकी झलक मिलती है। शृंगाररसके पद्माकरी कवियोंकी भांति भी इन्होंने कुछ कविताएं कीं, पर वे उनके योग्य नहीं कही जा सकतीं।

मैथिलीशरण गुप्त—बाबू मैथिलीशरणजी गुप्त आधुनिक खड़ी बोलीके सबसे प्रसिद्ध प्रतिनिधि कवि हैं। पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदीके प्रभावमें रह कर उन्होंने अपनी भाषाका बड़ा ही सुन्दर और परिमार्जित रूप खड़ा किया। द्विवेदीजीकी ही भाँति उनकी भाषामें संस्कृत का पुट रहता है पर 'प्रियप्रवास' की भाँति वह अतिशय संस्कृतगर्भित नहीं होता। उर्दूके बहुत ही थोड़े शब्दोंको ग्रहण करनेके कारण वे पंडित गयाप्रसाद 'सनेही' जी की उर्दूमिश्रित कविताशैलीसे भी विभिन्न रूपमें हमारे सामने आते हैं। भाषाकी दृष्टिसे उनका मध्यम मार्ग ही कहा जायगा। लोकप्रियताकी दृष्टिसे मैथिली शरणजीको जितना गौरव प्राप्त हुआ है, उतना आधुनिक कालमें भारतके शायद ही किसी कविको प्राप्त हुआ हो। विश्वकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी



मैथिलीशरण गुप्त।

ख्याति समस्त संसारमें है। संसारकी अनेक भाषाओंमें उनकी रचनाओंका अनुवाद भी हो चुका है और उनके अनेकों संस्करण भी प्रकाशित हो चुके हैं। परन्तु बंगलामें श्री रवीन्द्रनाथकी किसी भी पुस्तकके इतने संस्करण नहीं निकले जितने श्री गुप्तजी की पुस्तकोंके निकल चुके हैं। वास्तवमें श्री शरत्चन्द्र चट्टोपाध्यायको छोड़ कर भारतकी किसी अन्य भाषाके किसी भी कवि या लेखकको यह सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ कि उसके जीवन हीमें उनकी पुस्तकोंके इतने संस्करण निकल सकें जितने श्रीगुप्तजीके 'जयद्रथ-बध' के प्रकाशित हो चुके हैं। गुप्तजीकी 'भारत भारती' अब भी देशप्रेमी नव युवकोंका कंठहार हो रही है। उसके सैकड़ों पद हिन्दीभाषा-भाषी जनताकी जिह्वाकी नोक पर धरे रहते हैं। कितने ही नौ-सिखिए कवि अब भी उसका अनुकरण करते देखे जाते हैं। पर काव्यकी दृष्टिसे उसका विशेष महत्त्व नहीं है। काव्यको

दृष्टिसे उनका 'जयद्रथवध' खंड-काव्य उत्कृष्ट हुआ है। इसमें वीररसका पूर्ण परिपाक और बीच बीचमें करुण रसके सुन्दर छींटे देख कर मन रसमग्न हो जाता है। उनकी अन्य रचनाओंमें 'पंचवटी' सर्वश्रेष्ठ है। उसमें लक्ष्मणका चरित्र बड़ा ही उज्ज्वल चित्रित हुआ है, और पूरी पुस्तकमें सुंदर पद्योंकी अनोखी छटा देख पड़ती है। गुप्तजीका आधुनिक समयको प्रतिनिधि कवि होना इसी बातसे सिद्ध होता है कि उनकी छायावादके ढंगकी रचनाएं भी उस श्रेणीके कवियोंकी प्रशंसा पा चुकी हैं। गुप्तकी कवितामें कहीं कृत्रिमता नहीं देख पड़ती। गुप्तजीने 'साकेत' नामक एक महाकाव्य भी लिखा है। यह अभी तक पुस्तकाकार रूपमें प्रकाशित नहीं हुआ है, परन्तु उसके बहुतसे अंश हिन्दीके सामयिक मासिक पत्रोंमें प्रकाशित हो चुके हैं। गुप्तजीकी यह कृति निश्चय ही उन्हें हिन्दीके आधुनिक कवियोंमें सर्वोच्च आसन प्रदान कर अमर बनावेगी। 'साकेत'में जा कर गुप्तजीकी भाषा पूर्ण परिपक्वताको प्राप्त हुई है। इसमें उनका भाषा पर अधिकार और काव्य प्रतिभाके साथ-साथ चरित्र-चित्रण और मनोभावोंके विश्लेषणकी प्रतिभाका भी पूर्ण परिचय मिलता है। उन्होंने बंगला के प्रसिद्ध कवि माइकेल मधुसूदन दत्तके 'मेघनादवध', 'वीरांगना', 'विरहिणी व्रजांगना' तथा नवीन चंद्र-सेनके 'पलासीर युद्ध'का भी हिंदीमें अनुवाद किया है। इन अनुवादोंमें गुप्तजीको अद्भुत सफलता मिली है। इनसे इनकी विलक्षण क्षमताका पता तो चलता ही है, खड़ी बोलीकी शब्दशक्ति भी प्रकट होती है।

सनेहीजी और दीनजी—पंडित गयाप्रसाद शुक्ल सनेही और लाला भगवानदीन उर्दू मिली भाषामें कविता करते हैं। दोनों ही राष्ट्रीयताके भाव-को ले कर आये हैं और दोनोंकी रचनाएं ओज-स्विनी हुई हैं। अंतर इतना ही है कि सनेही-जीने आधुनिक समाजको अपनी कविताका लक्ष्य बनाया और दीनजी महाराणा प्रताप, शिवाजी आदि वीर नृपतियोंकी प्रशस्तियाँ लिखनेमें लगे रहे। राष्ट्रीय कवियोंको साहित्यकी क्लिष्ट भाषा ले कर नहीं चलना पड़ता, उन्हें तो जनताकी प्रचलित भाषाका आश्रय लेना पड़ता है। इस दृष्टिसे सनेहीजी और दीनजी दोनोंने ही भाषाका उपयुक्त चुनाव किया है। राष्ट्रीय कवियोंको पूरी सफलता तभी मिल सकती है जब वे राष्ट्रीय आंदोलनोंमें स्वयं सम्मिलित हों और उत्साह-पूर्वक जनताको मुक्तिका पथ दिखलावें। चंद, भूषण आदि वीर कवियोंने ऐसा ही किया था। हिन्दीके आधुनिक राष्ट्रीय कवियोंमें पंडित माखनलाल चतुर्वेदी और पंडित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'का कार्य इस दृष्टिसे प्रशंसनीय कहा जायगा। सनेहीजीकी कुछ श्रृंगारिक रचनाएं अच्छी नहीं हुई हैं, पर वे उनकी प्रारंभिक कृतियां हैं।

शुक्लजी—पंडित रामचंद्र शुक्लकी प्रसिद्धि उत्कृष्ट गद्यलेखक और समालोचककी दृष्टिसे है, उनकी कवि-



रामचन्द्र शुक्ल।

ताएं उन्हें अधिक सम्मानित नहीं कर सकी हैं। बुद्ध-चरितके अतिरिक्त उनकी अन्य रचनाएं इधर उधर

बिखरी पड़ी हैं, संगृहीत नहीं हुई हैं। शुक्लजी हिन्दीके विद्वान् और दार्शनिक आलोचक हैं, परन्तु उनकी सहृदयता भी विशेष उल्लेखयोग्य है। वन्य प्रकृतिके उजाड़ और सूने स्वरूपके प्रति भी उनका जितना अनुराग है उतना बागीचेोंमें खिले हुए गुलाबके फूलके प्रति नहीं। सौन्दर्यको बड़े ही व्यापकरूपमें देखनेकी अंतर्दृष्टि शुक्लजीको मिली है। उनके प्राकृतिक वर्णन बुद्धचरित-के सर्वश्रेष्ठ अंश हैं, उनसे उनका सूक्ष्म निरीक्षण प्रतिभासित होता है। 'हृदयके मधुरभार' शीर्षक उनके फुटकर पद्योंमें कहीं व्यंग्य और कहीं मीठी चुटकियोंके द्वारा मानव-समाजकी अज्ञता, दुर्बलता और अहंकारिताका नग्नरूप दिखाया गया है।

त्रिपाठीजी—पंडित रामनरेश त्रिपाठीने हिंदीमें 'मिलन', 'पथिक' तथा 'स्वप्न' नामक तीन खंड-काव्योंकी रचना की है। उनकी भाषामें संस्कृतका सौंदर्य दर्शनीय है। यद्यपि उनमें भावोंकी प्रचुरता नहीं है, पर एक ही वस्तुको बड़ी सुन्दरतासे कई बार दिखानेमें उन्हें बड़ी सफलता मिली है। राष्ट्रीयताकी भावना उनकी पुस्तकोंमें भरी पड़ी है। इसीसे राजनीतिक क्षेत्रके बड़े-बड़े व्यक्तियोंने उनकी प्रशंसा की है, यद्यपि उनकी राजनीति कहीं कहीं उनकी कवितामें बाधक हो गई है। 'विधवाका दर्पण' शीर्षक उनकी एक मुक्तक रचना, हिन्दीमें उनकी अब तककी कृतियोंमें उच्च स्थानकी अधिकारिणी है।

व्रजभाषाके आधुनिक कवि।

व्रज भाषामें कविता करनेवालोंमें हरिश्चन्द्रके उपरांत प्रेमघन और श्रीधर पाठक श्रेष्ठ कवि हुए। इनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इनके पश्चात् स्वर्गीय पंडित सत्यनारायण शर्मा कविरत्न और बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकरका नाम प्रसिद्ध है। राय देवीप्रसाद पूर्ण कानपूरके वकील थे। वे व्रजभाषाकी अच्छी कविता करते थे। उनके 'चन्द्रकला-भानुकुमार' नाटकके कुछ सवैये ऐसे उत्कृष्ट हुए हैं जो देव और मतिरामकी समता करते है। उन्होंने कालिदासके अमरकाव्य 'मेघदूत' का व्रजभाषामें 'धराधरधावन' नामसे अनुवाद भी किया है। वे खड़ीबोलीमें भी कविता करते थे। उनकी स्फुट कविताओंमें 'शकुन्तला जन्म' नामक कविता अच्छी बन पड़ी है।

पण्डित सत्यनारायण कविरत्न व्रजमंडल (आगरे) के रहनेवाले व्रजपतिके अनन्यभक्त, बड़े ही रसिक और सरल स्वभावके व्यक्ति थे। उनकी रचनाओंमें व्रजकी माधुरी लबालब भरी है। उनकी स्फुट कविताओंका संग्रह 'हृदय तरंग' के नामसे प्रकाशित हो चुका है। उन्होंने भवभूतिके 'मालती-माधव' नाटकका ऐसा सरस और मधुर अनुवाद किया है, जिसमें मौलिकताका आभास झलकता है। देशके कुछ महा-पुरुषोंको—जैसे महात्मा गांधी, कवीन्द्र रवीन्द्र, स्वामी रामतीर्थ, लोकमान्य तिलक आदि—जो प्रशस्तियां सत्यनारायणजीने लिखी हैं वे भी बड़े मार्केकी हैं। स्वदेशानुरागकी सच्ची झलक दिखानेवाले थोड़े कवियोंमें उनकी गणना होगी।

रत्नाकरजी—व्रजभाषाके आधुनिक सर्वोत्कृष्ट कवि हैं। इनका 'हरिश्चन्द्रकाव्य' सुंदर हुआ है, पर 'गंगावतरण'



जगन्नाथदास रत्नाकर।

नामक नवीन रचनामें इनकी सच्ची काव्यप्रतिभा चमक उठी है। इस ग्रन्थमें रत्नाकरजीने प्रकृतिके नाना रूपोंके साथ

अपने हार्दिक भावोंका सामंजस्य दिखा दिया है। रत्नाकरजीकी भाषा-शैली पद्माकरी कही जा सकती है और अनुभावोंके प्रस्तुत करनेमें उन्होंने आधुनिक मनोविज्ञानके सिद्धांतोंका उपयोग किया है। व्रजभाषाके आधुनिक कवियोंमें वियोगी हरिजीको भी अच्छी प्रसिद्धि है। ये भक्त हैं, दार्शनिक हैं और वीररसकी कविता करनेवाले हैं। यद्यपि यह युग व्रजभाषाका नहीं है तथापि उपर्युक्त कवियोंकी रचनाएं उत्कृष्ट भी हुई है और पठित जनतामें उनका प्रचार भी हुआ है। आधुनिक कालके व्रजभाषाके कवियोंमें रत्नाकरजीका स्थान सर्वश्रेष्ठ है।

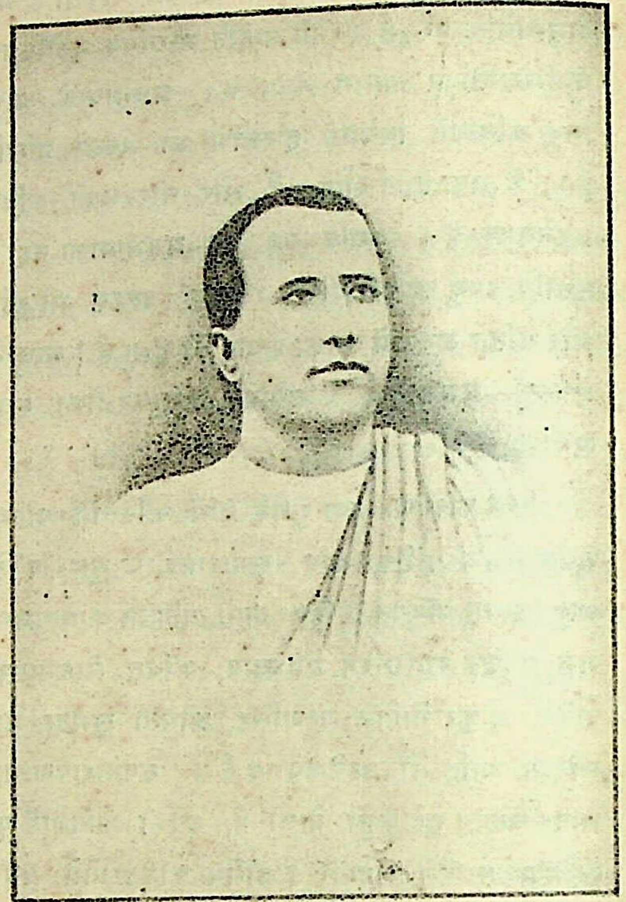
अन्य कविगण—इस युगके अन्य कवियोंमें पण्डित रूपनारायण पांडेय, बाबू सियारामशरण गुप्त, पंडित अनूप शर्मा, पण्डित गिरिधर शर्मा, पण्डित कामताप्रसाद गुरु, पंडित रामचरित उपाध्याय, पंडित लोचनप्रसाद पांडेय, ठाकुर गोपाल शरणसिंह, श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान आदि भी उल्लेखयोग्य हैं। रूपनारायणजीको भाषा चलती हुई खड़ी बोली है, उनकी कवितामें पूरी रसात्मकता है। हिन्दीकी लीरिक कविताओंमें उनकी 'वनविहंगम' शीर्षक रचना उत्कृष्ट है। सियारामशरणजीने सामाजिक कुरीतियों पर इतनी तीव्र व्यंग्यमयी और करुणकविता की है, कि चित्त पर स्थायी प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। समाजनीतिको काव्योपयोगी बनानेकी विधि हिंदीमें सियारामशरणजीको सबसे अधिक आती है। इस क्षेत्रमें उनकी सफलता प्रायः अद्वितीय है। वीररसकी फड़कती हुई कविता करनेके कारण पंडित अनूप शर्माको कुछ लोग आधुनिक भूषण कहते है, वास्तवमें उनकी अनेक रचनाएं अपूर्व ओजस्विनी हुई हैं। पंडित गिरिधर शर्मा "नवरत्न" संस्कृतके विद्वान् और हिन्दीके अच्छे कवि हैं। इन्हें गुजराती और बंगलाकी कविता-पुस्तकोंके अनुवादमें अच्छी सफलता मिली है। गुरुजीकी कविताओंमें व्याकरणके नियमोंकी अच्छी रक्षा हुई है। पंडित रामचरित उपाध्याय और पंडित लोचनप्रसाद पांडेयको आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीजीने प्रोत्साहित कर कवि बनाया था। उपाध्यायजीकी रामचरितचिन्तामणि अपने ढंगकी सुन्दर पुस्तक है। पांडेयजीकी छोटी छोटी रचनाएं अच्छी हुई हैं। ठाकुर गोपाल शरणसिंह भी 'सरस्वती' और द्विवेदीजीकी छायामें ही बढ़ कर कवि हुए हैं। 'माधवी'में उनकी कुछ रचनायें अच्छी हुई हैं। श्रीमती सुभद्राकुमारी निश्चय ही इस समयकी सबसे अच्छी महिला-कवि हैं। उनकी रचनायें सरल और सजीव होती हैं। उनमें सुकुमार, संवेदनापूर्ण भावोंकी न्यूनता नहीं होती। इन कवियोंके अतिरिक्त स्वर्गीय पंडित मन्नन द्विवेदी और पंडित माखनलाल चतुर्वेदी आदिकी कविताएं भी महत्त्व रखती हैं। माखनलाल चतुर्वेदीकी रचनायें, पुरानी शैली और नवीन छायावादी शैली—दोनोंके बीचकी हैं। पुरानी शैलीके विचारसे उनकी कृतियाँ छायावाद लिए हुए होती हैं और छायावादी रचनाओंमें वे सबसे अधिक सुलझी हुई होती हैं। श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की कुछ रचनायें अच्छी हुई हैं।

छायावाद।

हिन्दीकी काव्यधाराका सामान्य परिचय ऊपर दिया गया है। अब थोड़े समयसे हिन्दी कवितामें रहस्यवाद या छायावादकी सृष्टि हो रही है। कुछ लोग रहस्यवाद या छायावादको आध्यात्मिक कविता बतलाते हैं और पाश्चात्य देशोंके उदाहरण द्वारा यह सिद्ध करते हैं, कि धर्मगुरुओं और ज्ञानियोंने ही रहस्यवादकी कविता की है। इंग्लैंडके अनेक रहस्यवादी कवि सांप्रदायिक कवियोंकी श्रेणीमें आवेंगे, क्योंकि उनकी कवितामें लोकसामान्य भावोंका समावेश नहीं है, विभिन्न संप्रदायोंकी विचारपरंपराके अनुसार उसकी रचना हुई है। परन्तु रहस्यवादकी कविता सांप्रदायिक आधारको ग्रहण किए बिना भी लिखी जा सकती है। इंग्लैंडके ब्लेक, पारसके उमर खैयाम और भारतके जायसी आदि कवियोंने बहुत कुछ ऐसी ही कविता की है। यह ठीक है, कि उनकी काव्यगत अनुभूतियाँ सामान्य अनुभूतियोंसे विभिन्न हैं; पर वे सत्य हैं, अतः उनमें रसात्मकता पूरी मात्रामें पाई जाती है। हिन्दीके कवि जायसीने प्रकृतिके विविध रूपोंमें अनंत विच्छेद और अनंत संयोगकी जो झलक दिखलाई है, उसका उन्होंने स्वतः अनुभव किया था, केवल सूफी संप्रदायकी किंवदंतीके आधार पर वह अवलंबित

नहीं है। हिन्दीकी आधुनिक रहस्यवादकी कवितामें थोड़ी बहुत सांप्रदायिकता अवश्य घुस आई है। इस आधुनिक रहस्यवादके उत्पादनमें हिन्दीं कवियोंको श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी रचनाओंसे बहुत प्रेरणा मिली है। छायावादकी कवितामें सबसे खटकनेवाली बात उसके भावोंकी अप्रासादकता है। इस संसारके उस पार जो जीवन है उसका रहस्य जान लेना सबके लिये सुगम नहीं है। दार्शनिक सिद्धांतोंकी अनुभूति भी सबका काम नहीं है। यह मान लेना कि जो सुगमतासे दूसरोंकी समझमें न आ सके अथवा जिसमें विभिन्न या विपरीत भावोंके द्योतक शब्दोंका साहचर्य स्थापित किया जाय ऐसी कविता ही प्रतिभाकी एकमात्र द्योतक है, कहाँ तक अनुचित या असंभव है, इसके कहनेकी आवश्यकता नहीं है। इस समय बहुत सी ऐसी रचनायें हो रही है जो इन दोषोंसे मुक्त नहीं कही जा सकतीं। छायावादके सम्बन्धमें एक बात और भी है जिससे पुरानी शैलीवाले आशंकित हो उठे हैं। वह यह है, कि कई छायावादियोंने छन्दों और भाषा दोनों ही के साथ बहुत अधिक स्वतन्त्रता लेना प्रारम्भ किया है। पर इन सब बातोंसे निराश होनेकी आवश्यकता नहीं है। यह तो एक प्रकारके प्रयोग हो रहे हैं। इसमें जो कुछ सत्य है और नित्य होगा वह स्थायी रूप ग्रहण कर लेगा, शेष अन्य सब बातें अपने आप ही नष्ट हो जायंगी। समयके प्रभाव और विद्याके प्रसारसे जब यह प्रवाह संयत प्रणालियोंमें चलने लगेगा तब हिन्दी कविताका नया विकास बड़ा ही मनोरम होगा।

छायावादके कवि—यहां पर यह कह देना भी बहुत आवश्यक जान पड़ता है, कि हिंदीके रहस्यवादी कवियोंमें जिनकी गणना होती है, वे सबके सब रहस्यवादी नहीं हैं। उनमेंसे कुछने तो रहस्यवादकी एक भी कविता नहीं लिखी। अंगरेजी लीरिक कविताके ढंग पर रचना करनेवाले कितने ही नवीन कवि रहस्यवादी कहलाने लगे हैं। बाबू जयशंकर प्रसाद कुछ पहलेसे ही रहस्यवादकी रचनाएं करने लगे थे। उनकी कवितामें सूफी कवियोंका ढंग अधिकतर पाया जाता है, यद्यपि अंगरेजी कविताकी पालिश भी उनमें कम नहीं है। प्रसादजीने संस्कृत साहित्यका भी अच्छा अध्ययन



जयशंकर प्रसाद।

किया है और इनकी कविताकी भाषा संस्कृतप्रधान होती है। भारतीय अद्वैतवादको लेकर काव्यशैलमें आनेवाले कवियोंमें पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी मुख्य हैं। उन्होंने तथा पंडित सुमित्रानंदन पंतने पश्चिमीय शैलीका अधिक आश्रय लिया है और रवींद्रनाथकी भांति वैष्णव कविताकी भी सहायता ली है। सामूहिक दृष्टिसे देखते हुए छायावादियोंमें श्री सुमित्रानन्दन पन्तकी रचनायें सर्वश्रेष्ठ हैं। उनके भावोंकी उड़ान बहुत ऊंची है। उनकी भाषा संस्कृतबहुल होती है, परन्तु यह निश्चय रूपसे कहा जा सकता है, कि उनकी रचनाओंमें खड़ी बोली बहुत कुछ कोमल हो कर आई है। इनके अतिरिक्त श्रीरामकुमार 'कुमार' और पंडित मोहनलाल महतोकी रचनाओंमें भी रहस्यवादकी छाप है। रवींद्रनाथको काव्यगुरु स्वीकार करनेवाले ये ही हैं, यद्यपि रवींद्रकी कविताकी थोड़ी बहुत नकल सबने की है।

हिंदी कविताका भविष्य—अब तकको कविताका ऊपर जो विवरण दिया गया है, उससे यह तो प्रकट होता है, कि कविताकी अनेकमुखी प्रगति इस युगमें हो रही है, पर साथ ही यह भी प्रकट होता है कि विशेष अंतर्दृष्टिसंपन्न महाकवियोंका अभ्युदय अब तक नहीं हुआ है। यह युग हिंदीके सर्वतोमुख विकासका है। पश्चिमीय शैलियोंका ग्रहण इस युगकी प्रधान विशेषता है। साहित्यके प्रत्येक क्षेत्रमें प्रगति हो रही है। फिर भी अब तक परिवर्तनका ही युग चल रहा है। परिवर्तनके युगमें जीवनकी महान् और चिरकालीन भावनाओंको ले कर काव्यरचना करना प्रायः असंभव होता है। साहित्यकारोंका लक्ष्य जब तक परिवर्तनकी ओर से हट कर जीवनकी ओर नहीं जाता, तब तक उत्कृष्ट साहित्यकी सृष्टि नहीं हो सकती। परन्तु इस समय देशकी राजनीतिक और सामाजिक स्थिति भी अच्छी नहीं है। प्रतिभाशाली अनेक व्यक्ति साहित्यक्षेत्रसे अलग काम करते हैं। अब तक साहित्य जीवनकी गहनताके बाहरका दिखलाऊ नंदन निकुंज बना हुआ है। इसलिये सच्चे कर्मनिष्ठ उस ओरसे विरक्त रहते हैं। साहित्यके लिये यह दुर्भाग्यकी बात है। रूस और फ्रांसके उत्कृष्ट साहित्यकार प्रबल क्रांतियोंके भीतरसे उत्पन्न हुए थे, तमाशा देखनेवालोंके अंदरसे नहीं। भारतमें भी क्रांतिका वैसा ही युग आया हुआ है। आशा की जाती है कि निकट भविष्यमें ही इस सर्वतोव्याप्त हलचलके बीचमें किसी दिव्यात्माका उदय होगा जिससे हिंदी कविताकी कल्याणसाधना होगी और जिससे अखिल भारतीय जनसमाजको श्रेयमार्ग मिलेगा।

गद्य-प्रवाह

आधुनिक युगकी सबसे बड़ी विशेषता है खड़ी बोलीमें गद्यका विकास। इस भाषाका इतिहास बड़ा ही रोचक है। यह भाषा मेरठके चारों ओरके प्रदेशमें बोली जाती है और पहले वहीं तक इसके प्रचारकी सीमा थी, बाहर इसका बहुत कम प्रचार था। पर जब मुसलमान इस देशमें बस गये और उन्होंने यहां अपना राज्य स्थापित कर लिया, तब दिल्लीमें मुसलमानी शासनका केंद्र होनेके कारण विशेष रूपसे उन्होंने उसी प्रदेशकी भाषा खड़ी बोलीको अपनाया। यह कार्य एक दिनमें नहीं हुआ। अरब, फारस और तुर्किस्तानसे आए हुए सिपाहियोंको यहां वालोंसे बातचीत करनेमें पहले बड़ी कठिनता होती थी। न ये उनकी अरबी फारसी समझते थे और न वे इनकी हिंदवी। पर बिना वाग्व्यवहारके काम चलना असंभव था, अतः दोनोंने दोनोंके कुछ कुछ शब्द सीख कर किसी प्रकार आदान प्रदानका मार्ग निकाला। यों मुसलमानोंकी उर्दू (छावनी) में पहले पहल एक खिचड़ी पकी जिसमें दाल चावल सब खड़ी बोलीके थे, सिर्फ नमक आगंतुकोंने मिलाया। आरंभमें तो वह निरी बाजारू बोली थी, पर धीरे धीरे व्यवहार बढ़ने पर और मुसलमानोंको यहांकी भाषाके ढांचेका ठीक ठीक ज्ञान हो जाने पर इसका रूप कुछ स्थिर हो चला। जहां पहले शुद्ध अशुद्ध बोलनेवालोंसे सही गलत बोलवानेके लिये शाहजहांको "शुद्धो सहीह इत्युक्तो ह्यशुद्धो गलतः स्मृतः" का प्रचार करना पड़ा था, वहां अब इसकी कृपासे लोगोंके मुंहसे शुद्ध अशुद्ध न निकल कर सही गलत निकला करता है। आजकल जैसे अङ्गरेजी पढ़े लिखे भी अपने नौकरसे एक ग्लास पानी न मांग कर एक गिलास ही मांगते हैं, वैसे उस समय मुख-सुख उच्चारण और परस्पर बोध-सौकर्यके अनुरोधसे वे लोग अपने ओजबेकका उजबक, कुतकाका कोतका कर लेने देते और स्वयं करते थे, पर ये लोग बेरहमन सुन कर भी नहीं चौंकते थे। बैसवाड़ी हिन्दी, बुंदेलखंडी हिंदी, पंडिताऊ हिंदी और बाबू इंगलिशकी तरह यह उस समय उर्दू हिंदी कहलाती थी, पर पीछे भेदक उर्दू शब्द स्वयं भेद्य बन कर उसी प्रकार उस भाषाके लिये प्रयुक्त होने लगा जिस तरह संस्कृत वाक्के लिये केवल संस्कृत शब्द। मुसलमानोंने अपनी संस्कृतिके प्रचारका सबसे बड़ा साधन मान कर इस भाषाको खूब उन्नत किया और जहां जहां फैलते गए, वे इसे अपने साथ लेते गए। उन्होंने इसमें केवल फारसिक तथा अरबीके शब्दोंको ही उनके शुद्धरूपमें अधिकता नहीं कर दी, बल्कि उसके व्याकरण पर भी फारसी अरबी व्याकरणका रंग चढ़ाया। इस अवस्थामें इसके दो रूप हो गए, एक तो हिन्दी कहलाता

रहा और दूसरा उर्दू नामसे प्रसिद्ध हुआ। दोनोंके प्रचलित शब्दोंको ग्रहण करके पर व्याकरणका संघटन हिन्दीके ही अनुसार रख कर, अंगरेज़ोंने इसका एक तीसरा रूप हिन्दुस्तानी बनाया। अतएव इस समय खड़ी बोलीके तीन रूप वर्त्तमान हैं—(१) शुद्ध हिन्दी जो हिन्दुओंकी साहित्यिक भाषा है और जिसका प्रचार हिन्दुओंमें है, (२) उर्दू जिसका प्रचार विशेषकर मुसलमानोंमें है और जो उनके साहित्यको और शिष्ट मुसलमानों तथा कुछ हिन्दुओंकी घरके बाहरकी बोलचालकी भाषा है और (३) हिन्दुस्तानी जिसमें साधारणतः हिन्दी उर्दू दोनोंके शब्द प्रयुक्त होते हैं और जिसका बहुतसे लोग बोलचालमें व्यवहार करते हैं। इसमें अभी साहित्यकी रचना बहुत कम हुई है। इस तीसरे रूपके मूलमें राजनीतिक कारण हैं।

भ्रमवश हिन्दीमें खड़ी बोली गद्यके जन्मदाता लल्लूजी लाल माने जाते हैं। यह भ्रम उन अंगरेज़ोंके कारण फैला है जो अपने आनेके पहले गद्यका अस्तित्व हिन्दीमें स्वीकार ही नहीं करते। परन्तु यह बात असत्य है। अकबर बादशाहके यहां संवत् १६२० के लगभग गंग भाट था। "उसने चंद छंद बरननकी महिमा" खड़ी बोलीके गद्यमें लिखी है। उसके पहलेका कोई प्रामाणिक गद्य लेख न मिलनेके कारण उसे खड़ी बोलीका प्रथम गद्यलेखक मानना चाहिए। इसी प्रकार १६८० में जटमलने "गोरा बादलकी कथा" भी इसी भाषाके तत्कालीन गद्यमें लिखी है। लल्लूजी लाल हिन्दीबोकी आधुनिक रूप देनेवाले भी नहीं हैं। उनके और पहलेका मुंशी सदासुखका किया हुआ भागवतका हिन्दी अनुवाद 'सुखसागर' वर्त्तमान है। इसके अनंतर इंशाउल्ला खाँ, लल्लूजी लाल तथा सदल मिश्रका समय आता है। इंशाउल्ला खाँकी रचनामें शुद्ध तद्भव शब्दोंका प्रयोग है। उनकी भाषा सरल और सुन्दर है पर वाक्योंकी रचना उर्दू ढंगकी है। इसीलिये कुछ लोग उसे हिन्दीका नमूना न मान कर उर्दूका पुराना नमूना मानते हैं। लल्लूजी लालके 'प्रेमसागर'से सदल मिश्रके 'नासिकेतोपाख्यान'की भाषा अधिक पुष्ट और सुन्दर है। 'प्रेमसागर'में भिन्न-भिन्न प्रयोगोंके रूप स्थिर नहीं देख पड़ते। करि, करिके, बुलाय, बुलाय करि, बुलाय करिके, बुलाय कर, आदि अनेक रूप अधिकतासे मिलते हैं। सदल मिश्रमें यह बात नहीं है। सारांश यह है, कि यद्यपि फोर्टविलियम कालेजके अधिकारियों, विशेषकर डाक्टर गिलक्रिस्टकी कृपासे हिन्दी गद्यका प्रचार बढ़ा और उसका भावी मार्ग प्रशस्त तथा सुव्यवस्थित हो गया, पर लल्लूजी लाल उसके जन्मदाता नहीं थे। जिस प्रकार मुसलमानोंकी कृपासे हिंदीका प्रचार और प्रसार बढ़ा, उसी प्रकार अंगरेज़ोंकी कृपासे हिन्दी गद्यका रूप परिमार्जित और स्थिर हो कर हिन्दी साहित्यमें एक नया युग उपस्थित करनेका मूल आधार अथवा प्रधान कारण हुआ।

उपर्युक्त चार लेखकोंने हिंदीकी पहले पहल प्रतिष्ठा की और उसमें ग्रंथरचनाकी चेष्टा की। इनमें मुंशी सदासुख और सदलमिश्रकी भाषा अधिक उपयुक्त ठहरती है। इनमें सदासुखको अधिक सम्मान मिलना चाहिए, क्योंकि ये कुछ पहले भी हुए और इन्होंने कुछ अधिक साधु भाषाका व्यवहार भी किया। इनके उपरांत विदेशोंसे आई हुई क्रिश्चियन मतका प्रचार करनेवाली धर्मसंस्थाओं अथवा मिशनोंने हिंदीमें अपने कुछ धर्मग्रंथों, विशेषकर बाइबिलका अनुवाद किया। बाइबिलका अनुवाद भाषाकी दृष्टिसे बड़ा महत्त्वपूर्ण है। यह देशके विस्तृत भू-भागमें फैली हुई खड़ी बोलीकी सामान्यतः साधु भाषामें किया गया है। शासक अंगरेज़ोंने मुसलमानोंकी उर्दूको कचहरियोंमें जगह दी थी, पर धर्मप्रचारक मिशनरी यह भलीभाँति जानते थे, कि उर्दू यहांके जनसमाजकी भाषा कदापि नहीं; इसीलिये बाइबिलका अनुवाद शुद्ध हिन्दीमें हुआ था। उर्दूपन उससे बहुत दूर रखा गया। उसकी भाषाका रूप सदासुख और लल्लूजी लालकी ही भाँति है, पर विदेशीय रचनाशैलीके कारण थोड़ा बहुत अंतर अवश्य देख पड़ता है। लल्लूजी लालकी भाषामें ब्रजकी बोली मिली हुई है, पर उपर्युक्त अनुवाद ग्रंथोंमें उसका बहिष्कार कर मानों खड़ी बोलीके आगामी प्रसारकी पूर्व सूचना सी दी गई है। जब ईसाइयोंकी धर्म-पुस्तकें निकल रही थीं तब छापनेकी कल इस देशमें आ चुकी

थी, जिससे पुस्तकोंके प्रचारमें बड़ी सहायता मिली।

छापेखानोंके फैल जाने पर हिन्दीकी पुस्तकें शीघ्रता-से बढ़ चलीं। इसी समय सरकारी अंगरेजी स्कूल भी खुले और उनमें हिंदी उर्दूका झगड़ा खड़ा किया गया। मुसलमानोंकी ओरसे सरकारको यह समझाया गया कि उर्दूको छोड़ कर दूसरी भाषा संयुक्त-प्रांतमें है ही नहीं। कचहरियोंमें उर्दूका प्रयोग होता है, मदरसोंमें भी होना चाहिए। परंतु सत्यका तिरस्कार बहुत दिनों तक नहीं किया जा सकता। देवनागरी लिपिकी सरलता और उसका देशव्यापी प्रचार अंगरेजोंकी दृष्टिमें आ चुका था। लिपिके विचारसे उर्दूकी क्लिष्टता और अनुपयुक्तता भी आँखोंके सामने आती जा रही थी। परंतु



राजा शिवप्रसाद

नीतिके लिये सब कुछ किया जा सकता है। अंगरेज समझ कर भी नहीं समझना चाहते थे। इसी समय युक्त प्रांतमें स्कूलोंके इंस्पेक्टर हिन्दीके पक्षपाती काशी-के राजा शिवप्रसाद नियुक्त किए गये। राजा साहबके प्रयत्नसे देवनागरीलिपि स्वीकार की गई और स्कूलोंमें हिन्दीको स्थान मिला। राजा साहबने अपने अनेक परिचित मित्रोंसे पुस्तकें लिखवाई और स्वयं भी लिखीं। उनकी लिखी हुई कुछ पुस्तकोंमें अच्छी हिन्दी मिलती है, पर अधिकांशमें उर्दूप्रधान भाषा ही उन्होंने लिखी। ऐसा उन्होंने समय और नीतिको देखते हुए अच्छा ही किया।

इनकी रची हुई पुस्तकोंकी नामावली यह है—वर्णमाला, बालबोध, विद्यांकुर, वामामनरंजन हिन्दी व्याकरण, भूगोल हस्तामलक, छोटा हस्तामलक भूगोल, इतिहास-तिमिर-नाशक, गुटका, मानवधर्मसार, सैंडफोर्ड ऐंड मारटिंस स्टोरी, सिखोंका उदय और अस्त, स्वयं-बोध उर्दू, अंगरेजी अक्षरोंके सीखनेका उपाय, राजा भोजका सपना और वीरसिंहका वृत्तान्त। इन ग्रन्थों-मेंसे कई संग्रहमात्र हैं और अधिकतर राजा साहबके ही बनाये हैं। राजा साहबकी भाषा वर्त्तमान भाषासे बहुत मिलती है, केवल वह साधारण बोलचालकी ओर अधिक झुकती है और उसमें उर्दू शब्दोंका भी कुछ आधिक्य है। इन्होंने कुछ छन्द भी बनाये हैं, पर विशेषतया गद्य ही लिखा है। ये जैनधर्मावलम्बी थे। इनका जन्म संवत् १८८० में और स्वर्गवास १९५२में हुआ।

इसी समयके लगभग हिन्दीमें संस्कृतके शकुंतला नाटक आदिका अनुवाद करनेवाले राजा लक्ष्मणसिंह हुए।

ये आगराके रहनेवाले थे। इनका कविताकाल संवत् १९१६के इधर उधर है। ये संवत् १९१३में डेपुटीकलेक्टर नियत हुए और १९४६में इन्हें पेंशन मिली। संवत् १९२७में सरकारसे इन्हे राजाकी पदवी राजभक्तिके कारण मिली। इनका जन्म संवत् १८८३में हुआ और १९५३ में इनका स्वर्गवास हुआ। राजा साहबने पहले पहल खड़ी बोलीमें कालिदास कृत 'शकुन्तलानाटक' का अनुवाद गद्यमें करके संवत् १९१९में प्रकाशित किया। इस पुस्तकका हिन्दी रसिकोंमें बहुत बड़ा सम्मान हुआ। संवत् १९३२ में विलायतके प्रसिद्ध हिंदीप्रेमी फ्रेडरिक पिनकाट महाशयने इसे इंगलिस्तानमें छपवाया। इस पुस्तकको इंग्लैण्डमें यहां तक आदर मिला कि यह इण्डियन सिविलसर्विसकी परीक्षापुस्तकोंमें सम्मिलित की गई। संवत् १९३४में राजा साहबने रघुवंशका

अनुवाद गद्यमें मूल श्लोकोंके साथ प्रकाशित किया। यह एक बहुत बड़ी पुस्तक है। संवत् १९३८ में इन महाशयने प्रसिद्ध मेघदूतके पूर्वार्द्ध का पद्यानुवाद छपवाया और संवत् १९४० में उसके उत्तरार्द्धका भी अनुवाद प्रकाशित करके ग्रन्थ पूर्ण कर दिया।



राजा लक्ष्मणसिंह

यह ग्रन्थ चौपाई, दोहा, सोरठा, शिखरिणी, सवैया, छप्पै, कुण्डलिया और घनाक्षरी छन्दोंमें बनाया गया है, जिनमें भी सवैया और घनाक्षरी अधिक हैं। इन्होंने दोहा, सोरठा और चौपाइयोंमें तुलसीदासकी भाषा रक्खी है और शेष छन्दोंमें व्रजभाषा। इनके गद्यमें भी दो चार स्थानों पर व्रज भाषा मिल गई है, परंतु उसकी मात्रा बहुत ही कम है। इनकी भाषा मधुर एवं निर्दोष है, वर्त्तमान हिन्दी-भाषाका प्रचार जब तक भारतवर्षमें रहेगा तब तक विद्वन्मडलीमें राजा साहबका नाम बड़े आदरके साथ लिया जायेगा।

गद्यके क्षेत्रमें भारतेंदु और उनके समकालीन—भारतेंदु हरिश्चंद्रके कार्य-क्षेत्रमें आते ही हिंदीमें समुन्नति-का युग आया। अब तक तो खड़ी बोली गद्यका विकास होता रहा और पाठशालाओंके उपयुक्त छोटी छोटी पुस्तकें लिखी जाती रहीं, पर अब साहित्यके अनेक



पण्डित बालकृष्ण भट्ट

अंगों पर ध्यान दिया गया और उनमें पुस्तकरचनाका प्रयत्न किया गया। भारतेंदुने अपने बंगाल-भ्रमणके उपरांत बंगलाके नाटकोंका अनुवाद किया और मौलिक नाटकोंकी रचना की। कवितामें देशप्रेमके भावोंका प्रादुर्भाव हुआ। पत्र-पत्रिकाएं निकलीं। 'हरिश्चंद्र-मैगजीन' और हरिचंद्र-पत्रिका' भारतेंदुजीके पत्र थे। छोटे छोटे निबंध भी लिखे जाने लगे। उनके लिखनेवालोंमें हरिश्चंद्रके अतिरिक्त पंडित बालकृष्ण भट्ट, पंडित प्रतापनारायण मिश्र, पंडित बदरीनारायण चौधरी, ठाकुर जगमोहनसिंह आदि थे।

भट्टजीका जन्म संवत् १९०१ में प्रयागमें हुआ था।

ये संस्कृतके अच्छे विद्वान और भाषाके एक परम प्राचीन लेखक हैं। संवत् १९३४ में प्रयागसे हिन्दी-प्रदीप नामक एक सुन्दर मासिक पत्र प्रायः ३२ वर्ष तक निकलता रहा। भट्टजी उसके सदैव सम्पादक रहे। इनकी गद्यलेखन-पटुता एवं गम्भीरता सर्वतोभावेन सराहनीय है। कलिराजकी सभा, रेलका विकट खेल, बालविवाह नाटक, सौ अजानका एक सुजान, नूतन ब्रह्मचारी, आदि लेख इनके चमत्कारिक हैं। पद्मावती, शर्मिष्ठा और चन्द्रसेन नामक उत्तम नाटक ग्रन्थ भी भट्टजीने रचे हैं। नाटककारोंमें श्रीनिवास



पण्डित अम्बिकादत्त व्यास।

दास और राधाकृष्णदासका नाम उल्लेखयोग्य है। 'परीक्षागुरु' नामक एक अच्छा उपन्यास भी उस समय लिखा गया। आर्यसमाजके कार्य-कर्त्ताओंमें स्वामी दयानंदके उपरांत सबसे प्रसिद्ध पंडित भीमसेन शर्मा हुए जिन्होंने आर्यसमाजका अच्छा साहित्य तैयार किया। पंडित अंबिकादत्त व्यास भी उस कालके मौलिक लेखकोंमेंसे थे। अखबार नवीसोंमें बाबू बालमुकुंद गुप्त सबसे अधिक प्रसिद्ध हुए। गुप्तजीका जन्म संवत् १९२२में रोहतक जिलेमें हुआ था। इनको हिन्दी लेखनसे सदैव बड़ी रुचि थी और इन्होंने पत्रोंके सम्पादनसे ही अपनी जीविका भी चलाई। आपने सात वर्ष बङ्गवासीका सम्पादन किया और फिर भारतमित्रके आप जीवन पर्यन्त सम्पादक रहे। आपने रत्नावली नाटिका, हरिदास, शिवशम्भुका चिट्ठा, स्फुट कविता, खेलौना आदि पुस्तकें भी रचीं। इनकी गद्य और पद्य रचनाओंमें मजाककी मात्रा खूब रहती थी और वे बड़ी मनोरंजक होती थी। होलीके संबंधमें ये टेसू आदि खूब मार्केके बनाते थे। इनका शिवशम्भु-



बालमुकुन्द गुप्त

का चिट्ठा एक बडा ही लोकप्रिय ग्रन्थ है। इनका स्वर्गवास संवत् १९६४ में हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गद्यके विभिन्न अंगोंको ले कर बड़े ही उत्साहपूर्वक उनमें मौलिक रचनाएं करनेवाले हिंदीके ये उन्नायक बड़े ही शुभ अवसर पर उदय हुए थे। इनकी वाणीमें हिंदीके बाल्यकालकी झलक है, पर यौवनागमकी सूचना भी मिलती है। देशप्रेम और जातिप्रेमकी भावनाओंको

ले कर साहित्यक्षेत्रमें आनेके कारण इन सबकी रचनाएं हिंदीमें अपने ढंगकी अनोखी हुई हैं।

भारतेंदुकी नाटक-रचना शैलीमें भारतीय शैली और पाश्चात्य शैलीका सम्मिश्रण हुआ है। भारतीय शैलीके अंकों और गर्भांकों तथा विष्कंभक आदिको बदल कर बंगलाके ढंग पर अंक और दृश्यकी परिपाटी चली, पर संस्कृतके सूत्रधार नटी प्रस्तावना आदि ज्यों के त्यों बने रहे। चरित्रोंका चित्रण करनेमें भारतेंदुने संस्कृतके वर्गीकरणोंका अनुसरण किया, पात्रोंकी वैयक्तिक विशेषताओंकी ओर ध्यान नहीं दिया। यद्यपि उनके अनेक नाटक अनुवादित नाटक ही हैं और उनके मौलिक अधिकांश नाटकोंमें भी कथानकका निर्माण उन्हें नहीं करना पड़ा है, पर कुछ नाटकोंमें उन्होंने अपनी कथानक-निर्माणकी शक्तिका अच्छा परिचय दिया है। 'सत्य हरिश्चंद्र'में सत्यका उच्च आदर्श दिखाया गया है। अन्य नाटकोंमें प्रेमकी पवित्र धारा बही है। भारतदुर्दशामें स्वदेशानुराग चमक उठा है। भारतेंदुकी परिमार्जित गद्य शैलीका व्यवहार उनके सभी नाटकोंमें देख पड़ता है, हाँ विषय और प्रसंगके अनुसार भाषा सरल अथवा जटिल हो गई है। लाला श्रीनिवासदासके 'रणधीर प्रेममोहिनी' 'संयोगिता स्वयंवर' आदि नाटक तथा बाबू राधाकृष्ण दासका 'महाराणा प्रताप नाटक' साहित्यिक दृष्टिसे अच्छे हैं, यद्यपि रंगशालाके उपयुक्त नहीं। प्रेमघनजीका 'भारतसौभाग्य' नाटक भी अच्छा है, पर बहुत बड़ा हो गया है। राय देवीप्रसाद पूर्णका 'चंद्रकला भानु कुमार' नाटक गद्य काव्यकी शैलीमें लिखी गई सुंदर कृति है।

नागरी-प्रचारिणी सभा और सरस्वती—हिंदी साहित्यका यह विकास बड़ा ही आशाप्रद और उत्साहवर्द्धक था। थोड़े समयकी यह साहित्यिक प्रगति उस कालके मनोयोग और कृतिशीलताकी परिचायक हुई है। इस कालके उपरांत साहित्यके सभी अंगोंकी बड़ी सुंदर उन्नति हो चली और प्रत्येक क्षेत्रमें अच्छे अच्छे लेखकोंका अभ्युदय हुआ।

१६वीं शताब्दिके अंतिम दशाब्दमें साहित्यके सौभाग्यसे दो ऐसी बातें हुईं जिनसे हिंदी-साहित्यकी अभिवृद्धिमें बड़ी सहायता पहुंची। इनमेंसे प्रथम है काशीकी 'नागरी-प्रचारिणी-सभा'की स्थापना और द्वितीय है प्रयागसे 'सरस्वती' मासिक पत्रिका प्रकाशन।

संवत् १६५० में काशीके कुछ उत्साही साहित्यिकोंने

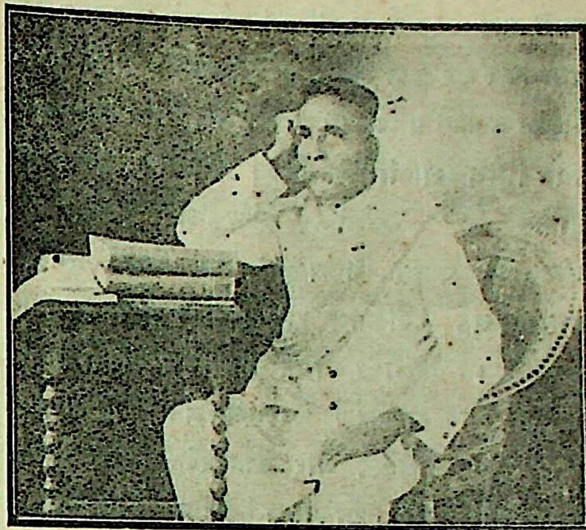


राय साहब बाबू श्यामसुन्दर दास

जिनमें राय साहब श्याम सुन्दर दास प्रमुख हैं, नागरी-प्रचारिणी-सभाको जन्म दिया। सभाका उद्देश्य नागरी लिपि तथा हिन्दी भाषाका प्रचार, प्रसार तथा उन्नति करना था। सभा अपने सदुद्देशमें पूर्ण सफल हुई और उसने हिन्दी भाषा और साहित्यकी जो सेवा की उस पर किसी भी संस्थाको गौरव हो सकता है। सभाने संयुक्त प्रान्तके न्यायालयोंमें हिन्दीको स्थान दिलाया, हिन्दीके प्राचीन ग्रंथोंका अनुसन्धान करके उन्हें प्रकाशित कराया, पारितोषिक दे कर उच्चकोटिके साहित्य-प्रकाशकों प्रोत्साहन प्रदान किया; हिंदीमें विज्ञान सम्बन्धी शब्दोंकी रचना करके 'हिंदी वैज्ञानिक

कोश" निर्माण कराया और "हिंदी शब्द-सागर"के सदृश वृहत् और महत्त्वपूर्ण शब्दकोश बनवा कर प्रकाशित किया। इस प्रकार हिंदी-साहित्य-क्षेत्रके निर्माणका बहुत कुछ प्रारम्भिक कार्य इसी सभाके द्वारा हुआ है। काशी नागरी-प्रचारिणी सभाके प्राण राय साहब श्यामसुन्दर दास हैं। उनमें संगठन करने और संस्थाका सुचारुरूपसे संचालन करनेकी अपूर्व क्षमता है। वे लोगोंसे काम लेना खूब जानते हैं। अतः नागरी प्रचारिणी सभाकी सफलताका अधिकांश श्रेय बाबू साहब हीको प्राप्त है। इस हेतु हिंदी-जगत् बाबू साहबका चिर ऋणी और कृतज्ञ रहेगा। बाबू श्यामसुन्दर दासकी कई रचनायें भी हैं। उनकी 'साहित्या लोचन' नामक पुस्तकमें प्राच्य और पाश्चात्य साहित्यकी तुलनात्मक आलोचना की गई है। 'भाषा-विज्ञान'में उन्होंने भाषाओंकी उत्पत्ति तथा हिन्दी और उसकी उपभाषाओंकी विश्लेषणात्मक विवेचना की है। 'हिन्दी भाषा और साहित्य'में बाबू साहबने हिंदीका इतिहास उपस्थित किया है। 'नागरी-प्रचारिणी सभा' ने अपने यहां 'भारत-कला-भवन' खोल कर भारतके दृश्य काव्यकी रक्षाका भी स्तुत्य प्रयत्न किया है, जिसका श्रेय राय कृष्णदासको है। सभा 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' नामकी एक पुरातन खोज विषयक त्रैमासिक पत्रिका भी निकालती है, जिसका विद्वन्मंडलीमें समुचित सम्मान है।

जिस समय प्रयागकी प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'सरस्वती' का जन्म हुआ उस समय हिन्दीमें उच्च कोटिकी विशुद्ध साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओंका प्रायः सर्वथा अभाव था। सम्पादकप्रवर पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदीके सम्पादकत्वमें 'सरस्वती'ने हिन्दी साहित्यकी प्रगति पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाला। उस समय खड़ी बोली हिन्दी गद्यकी सर्वमान्य रूपसे और गद्यकी आंशिक रूपसे भाषा बन चुकी थी, परंतु अभी तक उसके संस्कारका प्रयत्न नहीं प्रारम्भ हुआ था। द्विवेदीजीके समान व्याकरणविद् और प्रामाणिक विद्वान्के हाथोंमें जा कर 'सरस्वती'ने भाषा संस्कारका महान कार्य सम्पादन किया। यह पहले ही कहा जा चुका है कि



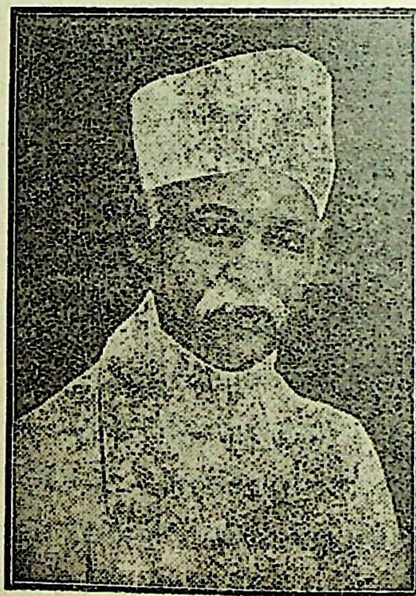
पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी

श्री द्विवेदीजीने खड़ी बोलीको हिन्दी-पद्यमें प्रतिष्ठित करनेमें कितना अधिक कार्य किया है। परन्तु हिन्दी गद्यकी भाषाको भी परिमार्जित करनेका गौरवमय श्रेय भी श्री द्विवेदीजीको ही है। उन्होंने भाषाकी काट-छांट कर सुसंस्कृत बनाया, व्याकरणके नियमोंकी प्रतिष्ठा की, सैकड़ों नवीन लेखकोंको प्रोत्साहन दिया और पाश्चात्य-सभ्यताके प्रेमी सैकड़ों नवयुवकोंको अङ्गरेजीकी ओरसे हटा कर हिन्दीकी ओर आकर्षित किया। हिन्दी साहित्यके अनेकों वर्त्तमान सुप्रसिद्ध लेखक और कवि 'सरस्वती'की ही गोदमें पल कर बड़े हुए; उन्होंने द्विवेदीजीसे ही साहित्यकी प्रथम दीक्षा ग्रहण की थी। द्विवेदीजीकी लेखन शैली मध्य श्रेणीकी है। उसमें न तो संस्कृत शब्दोंका बाहुल्य होता है और न उर्दू शब्दोंकी प्रचुरता। उनकी भाषा संस्कृतमिश्रित होती है परन्तु उसमें आवश्यकतानुसार उर्दू शब्दोंका भी यथोचित समावेश होता है।

इस प्रकार काशी-नागरी प्रचारिणी-सभाकी स्थापना और 'सरस्वती' पत्रिकाके प्रकाशनसे हिंदी गद्यकी उन्नतिको पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। भाषामें प्रौढ़ता आई, वह सामर्थ्यवान् हुई और उसमें अनेक सुंदर शैलियोंका आविर्भाव हुआ। जिस प्रकार उर्दूमें लखनऊ और देहलीके दो केंद्रोंकी विभिन्न शैलियां हैं, उस प्रकार हिंदीमें स्थानभेदके अनुसार शैली भेद तो नहीं हुआ, पर कितनी ही व्यक्तिगत शैलियां उत्पन्न हुईं, जो

आगे चल कर वर्गबद्ध शैलियां बन गईं और इधर-उधर घूम फिर कर कुछ स्थानों पर जा अटकीं, जिनसे स्थान-भेदका उपक्रम प्रारम्भ हो गया। इस समय स्थूल रूपसे तीन भिन्न स्थानोंमें तीन भिन्न शैलियोंके रूप स्पष्टतः दीखते हैं। काशीके अधिकांश लेखक तथा कलकत्तेके पंडित गोविन्दनारायण मिश्रके प्रभावसे प्रभावान्वित लेखकगण संस्कृतबहुल भाषाका प्रयोग करते हैं। देहलीकी ओरके लेखकगण अपनी भाषामें उर्दू पारसीके साधारण शब्द स्वतंत्रता पूर्वक व्यवहार करते हैं। लखनऊ और कानपुरके साहित्यिकों पर महावीरप्रसादजी द्विवेदीका पर्याप्त प्रभाव पड़ा, अतः उन्होंने मध्य मार्गका अवलम्बन किया। उनकी भाषामें संस्कृत शब्द होते हैं परन्तु उर्दू शब्दोंका भी यथोचित समावेश होता है। यह शैली अन्य शैलियोंकी अपेक्षा अधिक लोकप्रिय हुई है। इसके अतिरिक्त हास्य-विनोद, बहस-मुबाहसा, व्यंग्य, व्याख्यान, दर्शन, उपन्यास, कहानी आदि विभिन्न विषयोंके उपयुक्त कितनी ही शैलियोंका प्रादुर्भाव हुआ है और हो रहा है। बहुत-सी न्यूनताओंके रहते हुए भी इन शैलियोंसे यह प्रत्यक्ष हो जाता है, कि विभिन्न विषयोंको यथोचित रूपसे प्रकट करनेकी क्षमता भाषामें उपस्थित है। देशमें उच्च शिक्षाका माध्यम अङ्गरेजी है। आज कल अनेकों अङ्गरेजीकी उच्च शिक्षा प्राप्त विद्वान् हिंदीकी ओर झुक रहे हैं, जिसके कारण भाषा पर अङ्गरेजी रचना प्रणालीका विशेष प्रभाव कदाचित् आवश्यकतासे अधिक पड़ रहा है। न केवल अङ्गरेजीके सहस्रों शब्द अनुदित हो कर हिन्दीके शब्द-भंडारमें प्रवेश कर रहे हैं, वरन् अङ्गरेजी पदविन्यास तककी छाया हिन्दीमें दृष्टिगोचर होने लगी है। इस प्रकार हिन्दीमें कितनी ही शैलियोंका विकाश हुआ और हो रहा है। मासिक पत्रिकाओंके निकलनेसे सामयिक साहित्यकी अच्छी श्रीवृद्धि हुई। राजनीतिके आंदोलनके फलस्वरूप हिंदीको राष्ट्रभाषा बनानेका उद्योग किया जा रहा है। राजनीतिक आंदोलन और शिक्षाकी उन्नतिके साथ ही पत्र-पत्रिकाएं बढ़ती जा रही हैं। साहित्यके सब अंग भर रहे हैं। विश्वविद्यालयोंमें हिंदी उच्चतम कक्षाओंमें पढ़ाई जाने लगी है। विविध विषयोंकी महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं।

गत बीस वर्षोंमें हिन्दी-साहित्यके इतिहासमें सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है हिन्दी साहित्यसम्मेलनकी स्थापना। आज हिन्दीको केवल उत्तरीय भारत और आर्यावर्तकी भाषाका ही पद प्राप्त नहीं है, वरन् उसे सम्पूर्ण भारत-वर्षकी राष्ट्र-भाषा होनेका भी गौरवपूर्ण पद प्राप्त हुआ है। भारतके प्रधान प्रधान पुराविदोंके कथनानुसार भारतीय सभ्यताका उत्पत्तिस्थान और केन्द्र सदासे आर्यावर्त्त ही—गंगा-यमुनाके तीरका प्रदेश रहा है। अतः भारतके हृदय-देशकी भाषा होनेके कारण, सिद्धान्त रूपसे, हिन्दीका भारतकी राष्ट्रभाषा होना स्वतः सिद्ध है। परन्तु हिन्दीको व्यवहारिक रूपसे राष्ट्र-भाषाके सिंहासन पर बैठनेका श्रेय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनको ही है।



पंडित मदनमोहन मालवीय

संवत् १९६७ वि०में काशीमें महामना पंडित मदन मोहन मालवीयकी अध्यक्षतामें प्रथम हिंदी साहित्य-सम्मेलनका अधिवेशन हुआ था। इस सम्मेलनकी स्थापनामें काशीके कुछ संभ्रान्त सज्जनों और नागरी प्रचारिणी सभाके कतिपय सदस्योंका हाथ था। परन्तु शीघ्र ही सम्मेलन एक पृथक् संगठनके रूपमें विकसित हो कर एक महत्त्वपूर्ण प्रभावशाली संस्था बन गया।

नागरी-प्रचारिणी-सभा कतिपय विशिष्ट व्यक्तियोंके हाथ-में ही रही और वह आर्थिक सहायताके लिए सदा सरकारके आश्रित भी रही। इसके विपरीत हिन्दी साहित्य-सम्मेलनका विकास देशकी राष्ट्रीय भावनाओंके अनुकूलपूर्ण जनसत्तात्मक प्रणाली पर हुआ। इस समय देशमें राष्ट्रीय कांग्रेसके पश्चात् सबसे बड़ा अखिल भारतीय जनसत्तात्मक संगठन कदाचित् हिन्दी साहित्य-सम्मेलन ही है। सम्मेलनका प्रभाव और कार्यक्षेत्र अत्यन्त व्यापक और विस्तृत है। उसने हिमालयके तुषारमण्डित पार्श्वों पर बसे हुए दुर्गम ग्रामोंसे ले कर सुदूर मद्रासके सागर-धौत समुद्र-तट तक हिन्दीका सन्देश पहुंचानेका अमूल्य प्रयत्न किया है; जिसमें उसे प्रेरणोत्पादक सफलता भी प्राप्त हुई है। सम्मेलनके इस वृहत् कार्य, इस महान् सेवा और इस आशातीत सफलताका अधिकांश श्रेय सम्मेलनके प्राण श्रीयुत बाबू पुरुषोत्तम दासजी टंडनको है। टंडन जी प्रयागके रहनेवाले हैं। उन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालयसे एम० ए० एल० एल० बी०की परीक्षायें योग्यता पूर्वक पास कीं। उनका जीवन बड़ा ही सात्विक रहा है। वे प्रयाग म्यूनीसिपल बोर्डके चेयरमैन रह चुके है। देशके सार्वजनिक जीवनमें उन्होंने बड़ा भाग लिया है। स्व० लाला लाजपतराय उन्हें अपने जीवनमें ही अपनी पीपुल्सपार्टीका उत्तराधिकारी चुन गये थे। सम्मेलनके लिए उन्होंने जो किया वह अत्यन्त महत्त्व पूर्ण है।

यह पहले कहा जा चुका है, कि देशमें उच्च शिक्षाका माध्यम अंगरेजी है और कुछ समय पूर्व तक भारतके किसी भी विश्वविद्यालयमें हिन्दीका प्रवेश नहीं था। फलतः हिन्दी-साहित्यके गम्भीर अध्ययनको न तो कोई प्रोत्साहन ही मिलता था और न कहीं उसके पठन-पाठनका प्रबंध ही था। सम्मेलनने हिंदी साहित्यकी कई परीक्षायें प्रचलित कीं और उनके लिए देशके नाना स्थानोंमें सैकड़ों परीक्षा-केन्द्र स्थापित किये। इन परीक्षाओंकी स्थापनासे हिन्दी-साहित्यके अध्ययन और प्रसारमें बड़ी वृद्धि हुई। इनके द्वारा सर्वसाधारण श्रेणीके नवयुवकोंको, जिन्हें स्कूल और कालेजोंकी शिक्षा प्राप्त करनेका अवसर नहीं मिला—अपने ग्रामके एक एकान्त कोनेमें बैठे बैठे ही ज्ञान-वर्द्धन और अध्ययनका स्वर्ण सुयोग अनायास ही प्राप्त हो गया। सम्मेलनकी ये परीक्षायें अत्यन्त लोकप्रिय हुईं और उनके द्वारा अनेकों नवयुवक लेखक उत्पन्न हो गये।

सम्मेलनने अनेकों उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित कराईं, सत्साहित्यका प्रचार किया, जनताकी रुचि साहित्यकी ओर फेरनेका प्रयत्न किया; सब प्रकारके साहित्योत्पादनको प्रोत्साहन प्रदान किया और सभा-समितियों, अदालतों और विश्वविद्यालयों आदिमें हिन्दीको स्थान दिलानेकी चेष्टा की। हिन्दी-साहित्यकी उच्च कोटिकी शिक्षा देनेके उद्देशसे सम्मेलनने प्रयागमें "हिन्दी-विद्यापीठ"की स्थापना की जो गत वर्षसे एक ट्रस्टके अन्तर्गत एक स्वतन्त्र संस्थाके रूपमें कार्य कर रहा है।

सम्मेलनका अधिवेशन प्रति वर्ष देशके विभिन्न नगरोंमें हुआ करता है। सम्मेलनके सभापतिके पद पर आसीन होना, हिन्दीके किसी भी विद्वानके लिये गौरवकी बात है। सम्मेलनका एक मुख्य उद्देश हिन्दीको राष्ट्र-भाषा बनाना है। अतः सम्मेलनके मन्दिरमें राष्ट्रभाषाके प्रत्येक पुजारीके लिए स्थान है, वहां किसी प्रकारका भेदभाव नहीं है। सम्मेलनको इस बातका गौरव है, कि उसके सभापतिके आसनको राष्ट्र भाषाप्रेमी बंगाली, गुजराती और महाराष्ट्र विद्वान् भी सुशोभित कर चुके हैं।

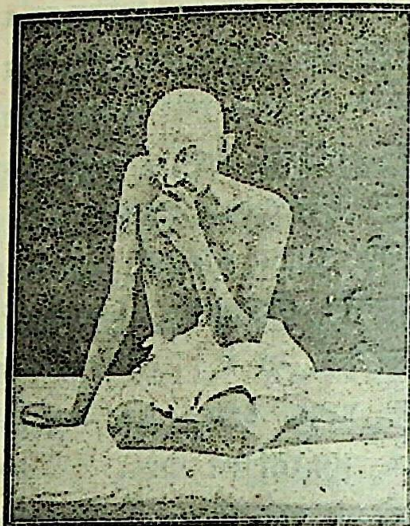
अब तक हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके सभापतिके आसन पर निम्नलिखित विद्वान् बैठ चुके हैं—

१—महामना पंडित मदनमोहन मालवीय—काशी
२ स्व० पं० गोविन्दनारायण मिश्र—प्रयाग
३—स्व० पं० बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'—कलकत्ता
४—स्व० महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द)-भागलपुर
५—स्व० पंडित श्रीधर पाठक—लखनऊ
६—रायसाहब श्यामसुन्दर दास—प्रयाग
७—स्व० साहित्याचार्य पं० रामावतार शर्मा—जबलपुर
८—महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी—इन्दोर
९—महामना पंडित मदनमोहन मालवीय—बम्बई।

१०—स्व० विष्णुदत्त शुक्ल—पटना
११—डाकूर भगवानदास—कलकत्ता
१२—पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी—लाहोर
१३—बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन—कानपूर
१४—पंडित अयोध्या सिंह उपाध्याय—दिल्ली
१५—स्व० पंडित माधवराव सप्रे—देहरादून
१६—पंडित अमृतलाल चक्रवर्त्ती—वृन्दावन
१७—रायबहादुर महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा—भरतपूर
१८—पंडित पद्म सिंह शर्म्मा—मुजफ्फरपूर
१९—स्व० गणेशशंकर विद्यार्थी—गोरखपूर
२०—बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर—कलकत्ता।

अखिल-भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके ढंग पर देशके कई प्रान्तोंमें प्रान्तीय साहित्य सम्मेलनोंका भी संगठन हुआ है, जिनसे हिन्दीके प्रसार और उन्नतिमें बड़ी सहायता पहुंची है। इन साहित्य सम्मेलनोंके प्रोत्साहनसे अनेकों स्थानोंमें हिन्दीके विद्यालय भी स्थापित हो गये हैं।

संवत् १९७५में हिन्दी-साहित्य सम्मेलनका अष्टम अधिवेशन होलकर राज्यकी राजधानी इन्दोरमें हुआ था। सम्मेलनके इतिहासमें यह अधिवेशन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। इस अधिवेशनमें सभापतिके आसनको सुशोभित करनेवाले साबरमतीके ऋषि महात्मा गांधी थे। उस समय तक सम्मेलनवाले हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनानेकी बात केवल मुखसे ही कहा करते थे। उसे किसीने व्यवहारिक रूप नहीं दिया था। महात्मा गांधी स्वयं गुजराती हैं। परंतु इस दूरदर्शी महापुरुषने देखा कि देश और राष्ट्रके कल्याणके लिए देशमें एक राष्ट्र-भाषाका होना अत्यन्त आवश्यक है और यह कार्य केवल हिंदी भाषाके द्वारा ही हो सकता है। सत्याग्रहका जन्मदाता इस कालका सबसे महान् कर्मठ व्यक्ति है। वह प्रत्येक बातमें केवल दूसरोंको उपदेश दे कर ही चुप नहीं रह जाता, वह जो कुछ कहता है उसे सबसे पहले स्वयं ही कर दिखाता है। महात्माजीने हिंदीको राष्ट्र भाषा स्वीकार किया और मद्रास प्रांतमें उसके प्रचारके लिए स्वयं अपने पुत्रोंको भेजा। महात्माजीकी देख-



महात्मा गांधी

रेखमें सम्मेलन मद्रासमें हिंदी-प्रचारका अच्छा कार्य कर रहा है। भारतके हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तोंके अतिरिक्त अन्य प्रान्तोंमें हिंदीका जो प्रचार हो रहा है उसमें महात्माजीका अनन्य प्रभाव है। यह उन्हींके प्रभावका फल है, कि आज कल भारतवर्षकी सर्वाग्रणी राष्ट्रीय संस्था इंडियन नेशनल कांग्रेसमें अधिकांश वक्तृतायें हिंदी हीमें होती है। आज कल प्रत्येक राष्ट्रीय नेताके लिए—चाहे वह किसी भी प्रान्तका हो—हिंदी जानना अनिवार्य हो रहा है। अपने इस आ-भारत-व्यापी प्रसारके लिए हिन्दी मोहनदास कर्मचन्द गांधीकी चिर ऋणी रहेगी।

साहित्य-सम्मेलनका अन्य महत्त्वपूर्ण अधिवेशन सम्वत् १९७७में कलकत्तेमें हुआ था। इस अधिवेशनकी मुख्य विशेषता 'श्री मंगलाप्रसाद पारितोषिक'की स्थापना है। जिस प्रकार प्रति वर्ष संसारकी सर्वोत्कृष्ट साहित्यिक रचनाके लिए नोबुल पुरस्कार दिया जाता है, उसी प्रकार हिंदीकी सर्वोत्तम रचनाके लिए 'श्री मंगलाप्रसाद पारितोषिक'का विधान किया गया।

कलकत्ते और बनारसमें शीतलप्रसाद खड्ग प्रसादकी प्राचीन प्रतिष्ठित व्यापारी कोठियां हैं। इस कोठीके वर्तमान स्वत्वाधारियोंमें बाबू गोकुल चन्दजी तीन भाई थे—(१) आनरेबिल राजा सर मोतीचंद के० टी०, सी० आई० ई०, (२) बाबू गोकुल चंद जी (३) स्वर्गीय बाबू मंगला प्रसाद एम० ए०। बाबू मंगला प्रसाद

प्रतिभाशाली नवयुवक थे। उन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालयसे बी० एस० सी० और कलकत्ता विश्वविद्यालयसे एम० ए०की परीक्षायें योग्यतापूर्वक पास की थीं तथा महामना पं० मदनमोहन मालवीयके साथ हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापनाके लिये भी प्रयत्न किया था। परन्तु दुर्भाग्यसे केवल ३४ वर्षकी अल्प वयमें ही वे काल-कवलित हो गये।

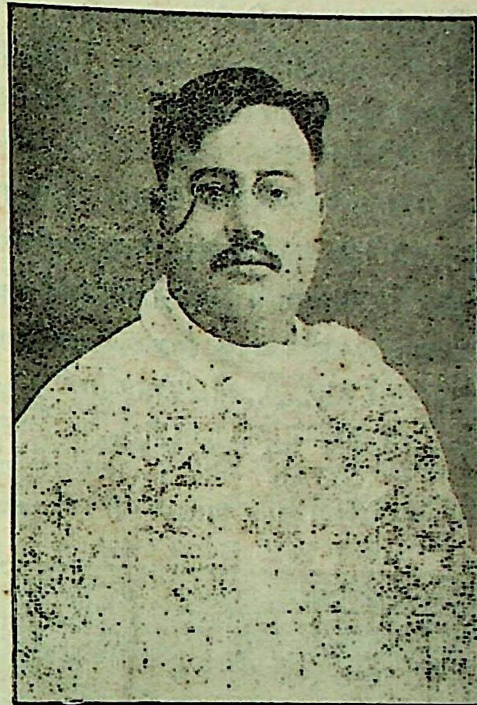
बाबू गोकुलचंदजीका वंश बहुत उदार और विद्यानुरागी है। सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय दानवीर नेता श्रीयुत शिव प्रसाद गुप्त भी इसी वंशके रत्न हैं। बाबू गोकुलचंदजी बड़े साहित्यानुरागी, धार्मिक और उदार सज्जन हैं।



बाबू गोकुलचन्दजी

इन्होंने हिन्दू विश्वविद्यालयको एक लाख रुपये प्रदान किये थे। कलकत्तेमें सुप्रसिद्ध विद्वान् बाबू भगवानदासजी एम० ए० के सभापतित्वमें अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्यसम्मेलनका जो ग्यारहवां अधिवेशन हुआ था, उसी अधिवेशनमें अपने स्वर्गीय भ्राता बाबू मंगलाप्रसादकी स्मृतिको चिरस्थायी बनानेके लिए इन्होंने हिंदी-साहित्य-सम्मेलनको ४०,०००) के प्रोमेसरी नोट इसलिए प्रदान किये कि सम्मेलन हिंदीके मौलिक साहित्यको प्रोत्साहन देनेके लिए इस धनके ब्याजसे १२००) का एक पुरस्कार प्रतिवर्ष हिंदीकी सर्वोत्तम पुस्तकके रचयिताको भेंट करे।

सम्वत् १९८८में सम्मेलनका बीसवां अधिवेशन पुनः कलकत्तेमें हुआ था। बाबू गोकुलचन्द जी तथा उनके पुत्रने इस बार फिर अपने साहित्य प्रेम और विद्यानुरागका परिचय दिया। बाबू गोकुल चंदके बड़े पुत्र कुमार



कुमार कृष्णकुमार एम० ए० बी० एल०

कृष्ण कुमार एम० ए० बी० एल०, एम० आर० ए० एस० कलकत्ता कार्पोरेशनके कौंसिलर, इस सम्मेलनके प्रधान स्वागत मन्त्री थे। इनका अधिकांश समय पुस्तकें पढ़ने या लेख आदि लिखनेमें जाता है। स्वभाव इनका बहुत ही सीधा सादा और मिलनसार है। कलकत्तेके हिन्दी प्रेमियों तथा सहायकोंमें आपकी गणना हुए बिना नहीं रह सकती। बाबू गोकुलचन्दने इस बार फिर सम्मेलनको १०,०००) प्रदान किये जिससे सम्मेलन हिन्दीके उच्च कोटिके ग्रंथोंकी एक ग्रंथमाला प्रकाशित कर सके।

जिससे साहित्यके सम्पूर्ण अंगोंको इस पुरस्कारसे प्रोत्साहन प्राप्त हो सके यह प्रबन्ध किया गया है, कि यह पारितोषिक प्रति वर्ष बारी-बारीसे विभिन्न विषयोंकी रचनाओं पर दिया जाय। इसके लिए साहित्यके सम्पूर्ण विषय निम्नलिखित चार भागोंमें विभक्त कर दिये गये हैं—

१ साहित्य—इसके अन्तर्गत काव्य, उपन्यास, नाटक, समालोचना, रीति ग्रन्थ आदि आते हैं।

२ समाज शास्त्र—इसके अन्तर्गत पुरातत्त्व, इतिहास, राजनीति और अर्थशास्त्र आदि विषय हैं।

३ दर्शन—इसके अंतर्गत धर्म, नीति, तर्क, अध्यात्म और मनोविज्ञान आदिकी गणना होती है।

४ विज्ञान—जिसमें गणित, रसायन, भौतिक विज्ञान, ज्योतिष, वैद्यक और कृषि-विज्ञान आदि विषय विवेचित होते हैं।

मंगला प्रसाद पारितोषिक प्रति वर्ष क्रमानुसार इन्हीं विषयोंमें एक विषयकी सर्वश्रेष्ठ रचनाके कर्त्ताको प्रदान किया जाता है। जिस वर्ष जिस विषयकी बारी आती है उस विषयके विद्वानोंकी एक निर्णायक-समिति बनाई जाती है, जो परीक्षार्थ आये हुए समस्त ग्रन्थोंको पढ़ कर यह निर्णय करती है, कि कौन-सा ग्रंथ सर्वोत्तम और पुरस्कारके योग्य है। अब तक यह पुरस्कार निम्नलिखित सात व्यक्तियोंको मिल चुका है—



पण्डित पद्मसिंह शर्मा

१ श्री पद्मसिंह शर्माको सर्व प्रथम साहित्यविषयक पुरस्कार उनकी बिहारी-सतसईकी टीका पर मिला था। श्री पद्मसिंह जीका ग्रंथ समालोचना-ग्रंथ है। उन्होंने समालोचनाकी एक नवीन शैली प्रचलित की जो अब तक हिंदीमें अज्ञात थी। यह शैली तुलनात्मक आलोचना शैली है। उन्होंने बिहारीके दोहोंको ले कर संस्कृत, प्राकृत, उर्दू, पारसी और हिंदीके अनेक कवियोंकी सादृश्य भाव-वाली कविताओंसे तुलना करके बिहारीकी उत्कृष्टता प्रकट की है। शर्माजीकी भाषा बड़ी सजीव और ओजपूर्ण होती है। वे मुजफ्फरपुर साहित्य सम्मेलनके सभापति भी हो चुके हैं।

२—इतिहास-विषयक दूसरा पुरस्कार राजपूतानेके सुप्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता और इतिहासज्ञ महामहोपाध्याय रायबहादुर पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझाको मिला। उनकी "प्राचीन भारतीय लिपिमाला" नामक पुरातत्त्व-विषयक ग्रंथ उस वर्ष सर्वोत्तम ग्रन्थ माना



पण्डित गौरीशंकर हीराचंद ओझा

गया। श्री ओझाजीने इस ग्रन्थमें बड़ी खोजपूर्वक यह दिखलाया है, कि भारतवर्षकी सम्पूर्ण लिपियों—देवनागरी, बंगला, गुजराती, तामिल, तैलगू, मलयालम आदिका विकास किस प्रकार हुआ। ओझाजीकी

यह पुस्तक ऐसी है जिस पर किसी भी भाषाको गौरव हो सकता है।

३—तीसरे वर्ष दर्शन विषयक पुरस्कार श्री सुधाकर द्विवेदीको 'मनोविज्ञान' नामक ग्रंथ पर मिला।

४—चौथे वर्ष विज्ञानका पुरस्कार डाक्टर त्रिलोकीनाथ वर्माको "हमारे शरीरकी रचना" नामक पुस्तक पर प्रदान हुआ।

५—पांचवें वर्ष पुनः साहित्यकी बारी आई और श्रीयुत वियोगी हरिको "वीरसतसई" नामक काव्य ग्रंथ पर पुरस्कार मिला।

६—छठे वर्ष समाजशास्त्रविषयक द्वितीय पारितोषिक श्री सत्यकेतु विद्यालंकारको "मौर्यराज्यका इतिहास" नामक इतिहास ग्रंथ पर दिया गया।

७—इस वर्ष दर्शनविषयक पुरस्कार श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए० को उनकी "आस्तिकवाद" नामक रचनाके लिए मिला है।

पिछले तीन वर्षसे संयुक्त प्रान्तीय सरकारकी सहायतासे 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' नामक एक संस्था स्थापित हुई है। इस संस्थाका उद्देश्य हिंदी और उर्दू साहित्य की उन्नति करना है। एकेडेमीने उत्तम साहित्यकी सृष्टिके लिए लेखकोंको प्रोत्साहन और सहायता देना प्रदान किया है और आशा है, कि उससे हिंदीको समुचित लाभ होगा।

कुछ दिनोंसे हिंदीमें कुरुचिपूर्ण अश्लील साहित्यका कुछ अधिक उत्पादन हो रहा था। परन्तु "विशालभारत"ने इस गंदे साहित्यकी प्रगति रोकनेके लिए एक जोरदार आंदोलन उठाया, जिसके फल स्वरूप इस दूषित साहित्यकी बाढ़ रुक गई तथा जनताकी सुरुचिवृद्धिको प्रोत्साहन मिला।

पहले हम हिंदी कविताकी अब तककी प्रगतिका संक्षिप्त विवरण दे चुके हैं, गद्यके विविध अंगोंका आधुनिक कालमें जो विकास हुआ है अब उसका दिग्दर्शन कराते हैं—

समालोचना—भारतेंदु हरिश्चंद्रके समयसे ही साहित्यिक समालोचना होने लगी थी, पर पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदीके समयसे उसका स्वरूप निश्चित हुआ। द्विवेदीजीकी समालोचनाएं अधिकांश निर्णयात्मक होती थीं। सरस्वतीमें पुस्तकोंकी भी और संस्कृत तथा हिंदीके कुछ कवियोंकी भी द्विवेदीजीने समालोचनाएं लिखीं। द्विवेदीजीकी चलाई हुई पुस्तक-समीक्षाकी संक्षिप्त प्रणालीका अनुसरण अब तक मासिक पत्रिकाओंमें हो रहा है। द्विवेदीजीकी समालोचनाएं भाषाकी गड़बड़ीको दूर करनेमें बहुत सहायक हुई, साथ ही आलोचनामें संयत होकर लिखनेका ढंग भी प्रतिष्ठित हुआ। द्विवेदीजीके समकालीन समालोचकोंमें मिश्रबंधुओंका स्थान विशेष महत्त्वपूर्ण है। उनका हिन्दी साहित्यका इतिहास ग्रंथ अपने ढंगकी पहली रचना होनेके कारण बड़ी मूल्यवान् वस्तु हुई। "हिन्दी नवरत्न"में कवियोंकी समालोचनाका सूत्रपात हुआ। उनकी आलोचनाओंके सम्बन्धमें विद्वानोंमें मतभेद हो सकता है और है भी, पर समालोचनाका कार्य आरंभ करने कारण मिश्रबंधुओंका हिंदी साहित्य पर ऋण है और उसे स्वीकार न करना कृतघ्नता माना जायगा। इस बातका बिना ध्यान रखे कि सब बातोंमें क्रमिक विकास होता है, पूर्व कृतियोंको तुच्छ मानना जहां अनुचित है वहां इस बातका भी ध्यान रहना चाहिये कि हमारे ज्ञान तथा अनुभवकी वृद्धि निरंतर होती रहती है, इसलिये साहित्यके विद्यार्थियों, समालोचकों तथा निर्माताओंका अपने अपने मतोंको वेदवाक्य मान बैठना, नवाविष्कृत तथ्योंकी अवहेलना करना तथा भिन्न मत रखनेवालोंको हेय समझना साहित्यके भावी विकास और उन्नतिके लिये हितकर न सिद्ध होगा।

हिंदीके कवियों पर आलोचनात्मक लेख और पुस्तकें लिखनेवालोंमें पंडित पद्मसिंह शर्मा और पंडित कृष्णविहारी मिश्रके नाम उल्लेखयोग्य हैं। हिन्दीमें तुलनात्मक आलोचना-शैलीका आविष्कार पंडित पद्मसिंह शर्माने किया था। वह वस्तुतः एक नई चीज थी। पंडित कृष्णविहारी मिश्रने इस विषयको आगे बढ़ाया है। शर्माजीकी शैलीका अनुसरण अन्य लोगोंने न किया हो यह दूसरी बात है परन्तु यह शैली दृढ़ हो रही है। शर्माजीकी भाषा उर्दू मिश्रित और चोटीली होती है। मिश्रजीकी भाषा सरल और गम्भीर है।

अंगरेजी ढंगकी गंभीर आलोचनाएं लिखनेवालोंमें राय साहब श्यामसुन्दरदास और पंडित रामचन्द्र शुक्ल प्रमुख हैं। जायसी, तुलसी, सूर आदि कवियों पर उनके निबंध सुंदर विश्लेषणात्मक आलोचनाके रूपमें लिखे गए हैं, जिनसे कवियोंके मानसिक और कलात्मक विकास पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। विश्वविद्यालयोंकी उच्च श्रेणियोंमें पढाई जाने योग्य समालोचनाओंमें शुक्लजीकी समालोचनाएं सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हुई हैं। बाबू पदुमलाल बख्शीने भी दो एक समालोचनात्मक पुस्तकें लिख कर हिन्दीके विकासक्रमको स्पष्ट करनेका प्रयत्न किया है। मासिक पत्रिकाओंमें समालोचनाएं लिखनेका ढंग अधिक उपयुक्त और प्रशंसनीय होता जा रहा है। पहलेकी अपेक्षा व्यक्तिगत आक्षेपोंकी बहुत कुछ कमी हो गई है। कदाचित् यह कह देना अनुचित न होगा कि समालोचनाका काम बहुत महत्त्वपूर्ण है और उसे सफलतापूर्वक करना सबका काम नहीं है।

नाटक—अन्य सभी साहित्योंमें नाटकोंका विवेचन रंगशालाके नियमों प्रतिबंधों आदिको ले कर होता है। अंगरेजीके अनेक विद्वान् समालोचक तो रंगशालाके अनुपयुक्त नाटकोंको नाटक कहते ही नहीं। उन देशोंमें रंगशालाएं बहुत अधिक विकसित हो चुकी हैं और प्रत्येक नाटककार उनके नवीनतम विकाससे परिचित होना आवश्यक समझता है। नवीन विकासके कारण जो पुरानी नाटकीय रचनाएं आधुनिक रंगमंचके अनुपयुक्त हो गई हैं, अथवा पिछड़ी हुई देख पड़ने लगी हैं, उनको निम्न स्थान दिया जाता है। स्वयं शेक्सपियरके नाटक भी रंगमंचकी दृष्टिसे पुराने हो गए हैं अतः कम खेले जाते हैं, अथवा सुधार कर खेले जाते हैं। हिंदीके लिये यह बड़ी लज्जाकी बात है, कि अब तक वह पारसी रंगमंचके ही हाथोंमें पड़ी है, उसकी अपनी रंगशालाएं या तो हैं ही नहीं, अथवा मृतक-सी हैं। व्यवसायिक रंगमंच तो हिन्दीमें कदाचित् एक भी नहीं। हम लोग अब तक नाटक खेलनेको तुच्छ नटोंका काम समझते हैं। अनेक आधुनिक नाटककार घर पर कल्पनाके द्वारा नाटकीय प्रतिबंधों पर विचार करते हैं, रंगशालाओंमें जा कर नाटक देख कर या खेल कर अपने अनुभवकी वृद्धि नहीं कर पाते। पारसी रङ्गमंच अपने पुराने अवगुणोंको लिये हुए चला जा रहा है। वही अलंकरणाधिक्य, अस्वाभाविक भाषा और वही अस्वाभाविक भाषण! हिन्दीकी जो दो एक नाटकमंडलियां हैं, वे तिथि-त्योहारों पर कुछ खेल खेला कर ही सन्तोष कर लेती हैं। यह स्थिति बड़ी ही शोचनीय है। बङ्गला, मराठी, गुजराती आदि भाषाओंके रङ्गमंच विशेष उन्नत हैं और प्रतिदिन उन्नति करते जाते हैं। ऐसी अवस्थामें राष्ट्रभाषा हिन्दी पर गर्व करनेवालोंका मस्तक अवश्य नीचा होता है। हिन्दी भाषी रईसोंको चाहिये कि यथासम्भव शीघ्र नाट्यमण्डलियोंको सहायता दें और हिन्दीभाषी विद्वानोंको चाहिये कि वे यथासंभव शीघ्र अभिनय-कार्यको अपने हाथमें लें, उसे नटोंका काम ही न समझते रहें। साथ ही हिंदीभाषी जनताको चाहिये कि वह हिन्दी नाट्यमंडलियोंके नाटक देख कर उन्हें प्रोत्साहन दे।

आधुनिक नाटककारोंमें बाबू जयसंकर प्रसाद, पंडित बदरीनाथ भट्ट, पंडित गोविन्दवल्लभ पंत आदि प्रसिद्ध हैं। बाबू प्रेमचन्द्रजीने 'संग्राम' और "कर्बला" नामके दो नाटक लिखे हैं जिनमें उन्हें सफलता नहीं हुई। पंडित गोविन्दवल्लभ पंतको रङ्गमंचका अच्छा अनुभव है और उनकी 'वरमाला' हिन्दी नाटकोंमें महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। पौराणिक आधार पर लिखी गई प्रेमकी वह कथा पंतजीकी कवित्वशक्तिसे चमक उठी है और नाटकके उपयुक्त हो गई है। पंडित बदरीनाथ भट्टके नाटक व्यंग्य और विनोदकी दृष्टिसे हिंदीमें अपने ढंगके अच्छे हैं, पर जहां व्यंग्य और विनोद नहीं है वहांका कथोपकथन शिथिल और उखड़ा हुआ जान पड़ता है और कहीं कहीं हास्य और विनोद भी निम्न श्रेणीका हो गया है। श्रीवास्तवजीके प्रहसनोंकी बड़ी धूम है, पर हमारी दृष्टिमें वे कुरुचि उत्पन्न करनेवाले हैं, उनका विनोद बहुत निम्नकोटिका है और उनका प्रभाव नवयुवकों पर अच्छा नहीं पड़ता। बाबू जयशंकर प्रसादने अब तक आठ दश नाटक लिखे हैं। उनमेंसे अधिकांश ऐतिहासिक हैं। प्रसादजीने प्राचीन इतिहासका

अच्छा अध्ययन किया है और प्राचीन भारतीय समाज के भूले हुए चित्रोंको दिखलानेमें उनकी क्षमता प्रशंसनीय है। देश और कालके उपयुक्त वस्तु निर्माण करना प्रसादजीकी विशेषता है। मानसिक वृत्तियोंको पात्रोंका स्वरूप दे कर लिखा हुआ उनका "कामना" नाटक हिन्दीमें अपने ढंगका अद्वितीय है। हमारी सम्मतिमें 'चित्तवृत्तियाँ इतनी जटिल और एक दूसरीसे ऐसी अविच्छिन्न भावसे मिली हुई होती हैं, कि उन्हें अलग करके दिखानेमें कृत्रिमता आ ही जाती है। उनका 'एक घूंट' नामका एकांकी नाटक सिद्धान्तप्रतिपादनकी दृष्टिसे चाहे जो हो, पर नाटकीय दृष्टिसे कुछ नहीं है। सिद्धान्तोंको अग्रस्थान मिल गया है, कथोपकथनमें नाटकीय प्रभाव लुप्त हो गया है। फिर भी इतना तो निःसंदेह कहा जा सकता है, कि नाटकोंके क्षेत्रमें प्रसादजीकी रचनाएं बड़े महत्त्वकी हैं और अब तकके नाटककारोंमें वे ही सर्वश्रेष्ठ हैं। परन्तु उनके नाटकोंमें रंगमंच पर खेले जानेकी अनुपयुक्तताका बहुत बड़ा दोष है। दूसरे रहस्यमय उक्तियोंका अनावश्यक प्रयोग किया गया है जो कहीं कहीं भावोंको निरर्थक बना देता है।

उपन्यास—'परीक्षागुरु'के उपरान्त हिन्दीके उपन्यासोंमें 'चन्द्रकांता संतति'का नाम आता है। बाबू देवकीनंदन खत्रीको इस रचनाका उस समय इतना अधिक स्वागत किया गया कि अब हमारे लिये वह आश्चर्यकी बात हो गई है; लाखों निरक्षरों और उर्दूदां लोगोंने 'चन्द्रकांता संतति' पढ़नेके लिये हिंदी सीखी। चन्द्रकांताके अनुसरणमें हिंदीमें अनेक उपन्यास लिखे गए। इनके अनन्तर गहमरीजीके जासूसी उपन्यासोंका युग आया। उनके अनेक उपन्यास अनुवादित हैं, कुछ मौलिक भी हैं। घटनाओंकी ओर आकर्षण रहता है, चरित्रके विकासका कहीं पता नहीं रहता, भाषा भी प्रायः देहाती रहती है। इसी समयके लगभग बंगलाके कुछ अच्छे उपन्यासोंका हिंदीमें अनुवाद हुआ जिससे साहित्यिक उपन्यासोंकी मौलिक रचनाएं भी होने लगीं। पंडित किशोरीलाल गोस्वामीने इस ओर पहले पहल प्रयत्न किया। उनकी रचनाएं साहित्यिक हैं, पर भाषाकी दृष्टिसे सफल नहीं हुई हैं। गोस्वामीजीने अब तक पचासों उपन्यास लिखे होंगे और उनका थोड़ा बहुत प्रचार भी है। उनके उपन्यास अधिकांश घटनाविशिष्ट हैं, पात्रोंके चरित्र-विकासकी ओर कम ध्यान दिया गया है। कहीं कहीं कालदोष भी खटकता है। अंगरेजोंकी आधुनिक उपन्यास समीक्षाके अनुसार गोस्वामीजीके उपन्यासोंका बहुत कम साहित्यिक मूल्य है। उनका विनोद और हंसी कहीं कहीं अश्लीलताकी सीमा तक पहुंच जाती है।

हिंदी उपन्यास-क्षेत्रमें प्रेमचन्दजीकी रचनाओंने युगांतर उपस्थित कर दिया। हिंदीवालोंने उनके पहले मौलिक उपन्यास 'सेवासदन'का उतावलीके साथ स्वागत किया और 'प्रेमाश्रम'के निकलते ही वे हिंदीके सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार कहलाने लगे। सामाजिक



प्रेमचन्दजी

भावोंका प्रतिबिंब इनकी सफलताका मूल कारण है। 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'प्रतिज्ञा', 'गबन' आदि उनके कितने ही छोटे बड़े उपन्यास निकल चुके और निकलते जाते हैं। प्रेमचन्दजीने देहाती समाजका बड़ा

अच्छा अनुभव प्राप्त किया है और उनके सुख-दुःखोंको वे समझते हैं। सामाजिक कुरीतियोंको दूर करनेके उद्देशसे उन्होंने व्यंग्य शैली स्वीकृत नहीं की, मीठी चुटकियोंका प्रयोग किया है। मानसिक वृत्तियोंके उत्थान पतनका सुंदर चित्र अंकित करनेमें प्रेमचन्दजीकी प्रसिद्धि है। वर्णनकी अपूर्व शक्ति प्रेमचन्दजीको मिली है, इस कार्यमें वे संसारके बड़े बड़े उपन्यासकारोंके समकक्ष हैं। प्रेमचन्दजीके उपन्यासोंमें आदर्शवादकी ओर अधिक ध्यान दिया गया, तथ्यवादका उतना विचार नहीं रखा गया। दोनोंका उपयुक्त सम्मिश्रण कदाचित् उनके उपन्यासोंके महत्त्वको और भी बढ़ा देता। कहीं कहीं विशेष कर 'रंगभूमि'में आवश्यकतासे अधिक विस्तार किया गया है। यह उपन्यास दो भागोंमें न होकर एक ही भागमें समाप्त हो जाता तो अधिक रुचिकर होता। पं० विश्वम्भर शर्मा कौशिकके 'मा' उपन्यासमें चरित्र-चित्रणका बड़ा ही मनोहर रूप देख पड़ता है और भविष्यमें हिंदी उपन्यास-जगत् उनसे अच्छी आशाएं रखता है।

हम नहीं कह सकते कि उपन्यास लिखनेके कार्यमें जयशंकर प्रसादजीको कहाँ तक सफलता प्राप्त होगी। 'कंकाल' नामक उपन्यासका निर्माण उसके नामके अनुकूल हुआ है। समस्त उपन्यासके पढ़ जाने पर हमें समाजके नंगे चित्रका उद्घाटन रुचिकर नहीं हुआ। नवयुवक लेखकोंमें भी श्रीजैनेन्द्रकुमारकी 'परख' अच्छी दृष्टिसे देखी जाती है।

आख्यायिका—आधुनिक हिन्दीकी आख्यायिकाएं संस्कृतके हितोपदेश अथवा राजतरंगिणीके ढंग पर नहीं लिखी गईं, अङ्गरेजीकी छोटी कहानियोंकी शैली पर लिखी गई हैं। घटनाओंकी सहायतासे पात्रोंकी व्यक्तिगत विशेषताओंको चित्रित करना आजकलकी कहानियोंका मुख्य लक्ष्य हो रहा है। समाजकी कुरीतियोंके प्रदर्शनार्थ भी कहानियां लिखी जाती हैं, ऐतिहासिक तत्त्वों पर प्रकाश डालनेकी दृष्टिसे भी कहानियां लिखी जाती हैं और दार्शनिक कहानियां भी लिखी जाती हैं। कहानियोंमें न तो घटनाओंका क्रम अधिक जटिल होता है और न जीवनके बड़े बड़े चित्र दिखाए जाते हैं। हिंदीमें आख्यायिकाओंका आरंभ करनेवाले गिरिजाकुमार घोष नामक सज्जन थे। उनके उपरांत श्रीज्वालादत्त, बाबू जयशंकर प्रसाद, श्रीप्रेमचंदजी, कौशिकजी, सुदर्शनजी, हृदयेशजी आदि कहानी लेखक हुए। प्रसादजीकी आख्यायिकाएं कवित्वपूर्ण होती हैं। उनकी कुछ कहानियोंमें प्राचीन इतिहासकी खोई हुई बातोंकी खोज की गई है, कुछमें मनस्तत्त्वकी सूक्ष्म समस्याएं समझाई गई हैं और कुछमें व्यक्तिका व्यक्तित्व स्पष्ट किया गया है। प्रसादजीकी भाषा कहानियोंके बिलकुल उपयुक्त नहीं है और भावोंको भी कभी कहीं कहीं कृत्रिमता आ जाती है। प्रेमचंदजीकी कहानियोंमें सामाजिक समस्याओं पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। उनकी भाषाशैली कहानियोंके बहुत उपयुक्त हुई है और उनके विचार भी सब पढ़े लिखे लोगोंके विचारोंमें मिलते जुलते हैं। यही कारण है, कि प्रेमचन्दजीकी कहानियां सबसे अधिक लोकप्रिय हैं। प्रेमचन्दजी और जयशंकर प्रसादजीकी आख्यायिकाओंमें बड़ा भारी अंतर यह है, कि एकमें घटनाओंकी प्रधानता रहती है और दूसरीमें कोरे भावोंकी। कौशिकजीकी कहानियोंमें पारिवारिक जीवनके बड़े ही मार्मिक और सच्चे चित्र हैं। उनका क्षेत्र सीमित है, पर अपनी सीमाके भीतर वे अद्वितीय हैं। ऐसा जान पड़ता है, कि सुदर्शनजीने पाश्चात्य कथा साहित्यका अच्छा अध्ययन किया है। भारतीय आदर्शोंकी रक्षा करनेकी उनकी चेष्टा प्रशंसनीय है। उनकी कहानियां सरल और रोचक होती हैं। हृदयेशजीकी कहानियोंमें कवित्व है पर उनकी भाषा अत्यधिक अलंकृत तथा उनके भाव कहीं कहीं नितांत कल्पित हो गए हैं। अन्य कहानी-लेखकोंमें 'अंतस्तल'के लेखक श्री चतुरसेन शास्त्री, श्री राय कृष्णदास आदि हैं। उग्रजीकी वे कहानियां अच्छी हैं जिनमें उन्होंने अश्लीलता नहीं आने दी है। उनकी भाषा बड़ी सुंदर होती है। हिंदीकी छोटी कहानियों या गल्पोंका भविष्य बड़ा उज्ज्वल जान पड़ता है, थोड़े ही समयमें इस क्षेत्रमें बड़ी उन्नति हुई है।

निबन्ध—हिन्दीमें अब तक निबन्धोंका युग नहीं आया है। समालोचनात्मक निबंधोंके अतिरिक्त हिंदी

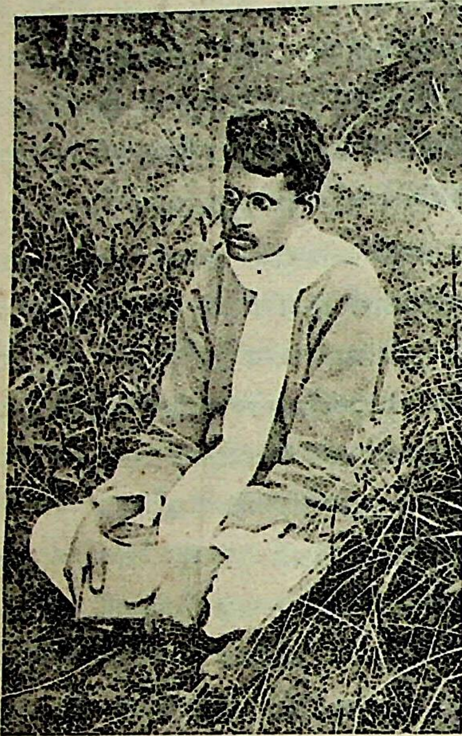
के अन्य सभी निबंध साधारण कोटिके हैं। पंडित बालकृष्ण भट्ट और पंडित प्रतापनरायण मिश्रके निबंध हिंदीको बाल्यावस्थाके हैं। उनमें विनोद आदि चाहे जो कुछ हो, वे साहित्यकी स्थायी संपत्ति नहीं हो सकते। पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदीजीके निबंधोंमें विचारोंकी योजना कहीं कहीं विशृंखल हो गई है। द्विवेदीजीको संपादनकार्यमें इतना व्यस्त रहना पड़ता था कि उनके स्वतंत्र निबंधोंको देख कर हमें आश्चर्य हो होता है। भावात्मक निबंध लिखनेवालोंमें स्व० सरदार पूर्णसिंहका स्थान सबसे अधिक महत्त्वका है, पर थोड़े ही दिन बाद सरदारजी हिंदीको छोड़ कर अंगरेजीकी ओर झुक गए थे। श्रीयुत गुलाबराय और श्रीयुत कन्नोमलके दार्शनिक निबंध भी साधारणतः अच्छे हुए हैं। निबंधोंके क्षेत्रमें पंडित रामचन्द्र शुक्लका सबसे अलग स्थान है। मानसिक विश्लेषणके आधार पर उन्होंने करुणा, क्रोध आदि मनोवेगों पर अनेक अच्छे निबंध लिखे हैं। विवरणात्मक निबंधलेखकोंने यात्रा, भ्रमण आदि पर जो कुछ लिखा है, वह सब मध्यम श्रेणीका है। सारांश यह कि निबंधोंकी ओर अभी विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। हिंदी-साहित्यके इस अंगकी पुष्टिकी ओर सुलेखकोंका ध्यान जाना चाहिए।

अन्यान्य विषय—हिन्दीमें इतिहास-विषयक पुस्तकें भी कुछ निकली हैं। मुगल समयके इतिहास पर स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसादने अच्छा प्रकाश डाला था। राजपूतानेके इतिहासके सम्बन्धमें महामहोपाध्याय पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा बड़े मूल्यवान ग्रंथ निकाल रहे हैं। बृटिश कालीन इतिहास पर श्री सुन्दरलालजीने 'भारतमें ब्रिटिश राज्य' नामक एक बड़ा और उत्तम ग्रंथ लिखा था। हिन्दीमें विज्ञानविषयक पुस्तकोंका बड़ा अभाव है। उसका बड़ा भारी कारण है पारिभाषिक शब्दोंकी कमी। नागरीप्रचारिणी सभाने एक वैज्ञानिक कोश प्रकाशित किया था, जो समयके फेरसे बिलकुल अधूरा हो गया है। दर्शनशास्त्र पर कुछ पुस्तकें निकली हैं, परन्तु इस बातकी आवश्यकता है, कि प्रोफेसर राधाकृष्णकी पुस्तकोंके समान पुस्तकें हिन्दीमें प्रकाशित हों। देशके राजनैतिक आन्दोलनोंके परिणामस्वरूप अर्थशास्त्र, सम्पत्तिशास्त्र और राजनीतिशास्त्र पर भी कई ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। राजनैतिक नेताओंके कुछ जीवनचरित भी प्रकाशित हुए हैं, परन्तु साहित्यिकोंके जीवनचरितोंका एकदम अभाव है। हालमें केवल पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी-लिखित सत्यनारायण कविरत्नकी जीवनीको छोड़ कर अन्य किसी साहित्य-सेवीको कोई अच्छी जीवनी प्रकाशित नहीं हुई। अन्यान्य विषयोंमें हिंदीका भांडार बहुत अपूर्ण है।

पत्र पत्रिकायें—हिंदीका सबसे पहला समाचार पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' संवत् १८८४में कलकत्तेसे युगलकिशोर शुक्लके सम्पादकत्वमें निकला था। दूसरा पत्र भी इन्हीं युगलकिशोरजीने कलकत्तेसे ही निकाला था। तीसरा समाचारपत्र राजा शिवप्रसादका 'बनारस अखबार' था। पण्डित छोटूलाल मिश्रने 'भारतमित्र' निकाला और दुर्गाप्रसाद मिश्रने 'सारसुधानिधि' और 'उचितवक्ता' को जन्म दिया। बाबू हरिश्चन्द्रके पत्रोंका उल्लेख ऊपर हो चुका है। पण्डित बदरीनारायण चौधरी, बाबू लालमुकुन्द गुप्त, श्री रुद्रदत्त शर्मा, श्री अमृतलाल चक्रवर्ती आदिके प्रशंसनीय उद्योगसे लोगोंकी रुचि समाचारपत्रोंकी ओर बढ़ने लगी थी। पण्डित बालकृष्ण भट्टके 'हिंदीप्रदीप' और पण्डित प्रतापनारायण मिश्रके 'ब्राह्मण'ने साहित्यिक और सामाजिक क्षेत्रमें अच्छा काम किया था। राजा रामपालसिंहके 'हिन्दोस्तान'के द्वारा मालवीयजी और बालमुकुन्द गुप्तने हिंदी-संसारमें प्रवेश किया था। इस समय हिंदीमें अनेकों दैनिक, अर्द्ध साप्ताहिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र-पत्रिकायें निकल रही हैं। उनमें कानपूरके 'प्रताप' और उसके यशस्वी शहीद सम्पादक स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थीकी सेवायें विशेष उल्लेखयोग्य हैं।

गणेशजीका जन्म ग्वालियर राज्यमें कायस्थ जातिमें हुआ था। उन्होंने मैट्रिक तक शिक्षा पाई थी। पत्रकार और लेखनकलाकी दीक्षा उन्हें पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीसे मिली थी। गणेशजीने एक-दो मित्रोंकी सहायतासे 'प्रताप' नामक साप्ताहिक पत्रको जन्म दिया। 'प्रताप' देशके लिए स्वराज्य-प्राप्तिके ध्येयको ले कर जन्मा था।

विद्यार्थीजीकी ओजस्वी लेखनी, अविचल सत्यनिष्ठा और निर्भीक शैलीने शीघ्र ही 'प्रताप'का नाम युक्त-प्रदेशके कोने-कोनेमें पहुंचा दिया। प्रताप दीनोंका त्राता, किसानोंकी वाणी, मजदूरोंका सलाहकार और स्वतंत्रता-



गणेशशङ्कर विद्यार्थी

संग्रामका सैनिक बन गया। गणेशजीकी भाषा-शैली अपने गुरुके समान मध्य मार्गकी थी। राजनैतिक झंझटोंमें अत्यन्त व्यस्त रहनेके कारण विद्यार्थीजी हिंदी-के भंडारमें अपनी पूरी भेंट नहीं प्रदान कर सके। यद्यपि वे स्थायी साहित्य नहीं उत्पन्न कर सके, परन्तु उन्होंने पचीसों नये साहित्यिक और पत्रकार उत्पन्न कर दिये। इस बातमें वे अपने गुरु द्विवेदीजीसे किसी भी प्रकार कम नहीं थे। आज कलके अनेकों लेखक, पत्रकार और साहित्यिक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे विद्यार्थीजी होके बनाये हुए हैं। सन १९३१के कानपूरके हिंदूमुस्लिम दंगेमें 'प्रताप'का यह यशस्वी सम्पादक दंगा रोकनेके प्रयत्नमें सच्चे सत्याग्रही वीरकी भांति मुसलमानों द्वारा मार डाला गया।

पं० रामगोविन्द त्रिवेदी वेदांतशास्त्री—सम्वत् १९५१को आश्विन शुक्ल द्वितीयाको कूसी (जिला गाजीपुर) गांवमें आपने जन्म ग्रहण किया। आप सरयूपारीण ब्राह्मण जातिके एक उत्कृष्ट रत्न हैं। आपकी शिक्षा दीक्षा पहले तो कलकत्तेमें, पीछे काशी जा कर पूरी हुई। आप स्वभावके सीधे-सादे और मिलनसार हैं।



पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी वेदांतशास्त्री

आपका संस्कृत-साहित्य-विषयक ज्ञान दुर्दमनीय है। खास कर दर्शन पर आपका अधिकार है। काशीकी 'वेदान्तशास्त्री' तथा 'महोपदेशक'की परीक्षामें आप ही सर्व-प्रथम हुए थे। बंगला, गुजराती, अंग्रेजी आदि भाषाओंमें भी आपका ज्ञान प्रौढ़ है। संस्कृत भाषाके भी आप उत्कृष्ट लेखक और प्रकृष्ट व्याख्यानदाता हैं। काशीके महामण्डलसे हिंदी मासिक 'आर्य-महिला' को निकाल कर तीन वर्ष तक आपने बड़ी खूबीसे उसका सम्पादन किया था। उन्हीं दिनों व्याख्यान देते हुए ... सम्पूर्ण भारतमें आप चक्कर लगा आये

थे। पीछे महामण्डलका ही डेपुटेशन ले कर आप वर्मा गये। वहां भी आपने हिन्दू सभ्यताका खूब प्रचार किया। और तो क्या, चीनकी सीमा लासा तकमें आपके अथक परिश्रमसे कई सभाएं स्थापित हो चुकी हैं। रंगूनमें आ कर 'विश्वदूत' नामक हिन्दी मासिक पत्र निकाल कर कई वर्षों तक आप उसका सम्पादन कलकत्तेसे ही करते रहे। अनन्तर आपने राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र 'सेनापति'को निकाला जो अपनी शानका एक ही था।

उसी समय आपने 'दर्शन-परिचय' नामक एक दर्शन-ग्रन्थ लिख कर हिन्दी-संसारमें हलचल पैदा कर दी। इसमें संसार भरके दर्शनोंका संक्षिप्त परिचय है। इसके बाद १८ पुराणोंके समालोचनात्मक ढंगसे 'हिन्दी विष्णुपुराण' नामका ग्रन्थ लिखा, जिसमें वैज्ञानिक रीतिसे विरोधियोंके खण्डनका उत्तर और हिन्दू धर्मका मण्डन है। इसकी सजावट बड़ी ही सुन्दर है और इसका आकार-प्रकार भी बहुत विशाल है।

आपकी लिखी दूसरी पुस्तकें 'महासती मदालसा' और 'राजर्षि प्रह्लाद' हैं। 'राजर्षि प्रह्लाद'के समान प्रह्लादके विषयमें सर्वांग पूर्ण ग्रन्थ आज तक कहींसे नहीं निकला। 'रत्नावली' नाटिका तथा 'भक्त ध्रुव' नामक दो संस्कृत-ग्रन्थोंको भी आपने हिन्दीमें अपनी शैलीमें लिखा है।

आप इन दिनों एक कोष निकाल रहे हैं, जिसमें लगभग हिन्दीके २५००० प्राप्य-अप्राप्य, प्रकाशित-अप्रकाशित ग्रन्थोंका परिचय रहेगा। इसमें अभी तक हजारों रुपयोंका व्यय हो चुका है।

१९२८ ई०के दिसम्बरमें संसारभ्रमणके लिये आपने प्रस्थान किया था। वर्मा, लंका, मोरिशस, री-यूनियन, दक्षिण अफ्रीका, पोर्तुगीज अफ्रीका, टंगानिका, जंजीबार, केनिया आदिकी आपने यात्रा की। मोरिशसमें आपने ३८ गीता-प्रचारक-मण्डल स्थापित किये, जिसका प्रधान कार्यालय वहांकी राजधानी पोर्ट लुईसमें है। यह संस्था उस द्वीपकी सर्वश्रेष्ठ संस्था है। अखिल दक्षिण अफ्रीका सनातनधर्म महामण्डलकी भी आपने स्थापना की, जिसके आजीवन सभापति आप ही हैं। विदेशोंमें आपने 'हिन्दी, हिन्दू, हिंद'की ही सेवामें समय बिताया। आप ही सर्व-प्रथम सनातनी महोपदेशक थे, जो इन विदेशोंमें भी सनातन धर्मका बिगुल बजा आये।

विदेशसे लौटने पर आप इन दिनों सुलतानगंज (भागलपुर) से हिन्दीकी उत्कृष्ट पत्रिका "गंगा" का सम्पादन कर रहे हैं। हिन्दी माताकी इतनी सेवा कर लेने पर भी अभी आपको सन्तोष नहीं हुआ है। आप लगे हाथ चारों वेदोंका सुन्दर अनुवाद हिन्दीमें करके उस हिन्दी माताके फहराते आँचलको भी भर देना चाहते हैं।

आपको देशाटनका भी पूरा व्यसन है। यह कभी छूटनेको नहीं। आपने अमेरिका और यूरोपका पासपोर्ट बना रखा है और शीघ्र यात्रा करनेकी धुनमें लगे हुए हैं।

बाबू शिवपूजनसहाय—आप गद्य-लेखक अच्छे हैं। आपकी गवेषणायें बड़ी ही महत्त्वपूर्ण होती है। हिन्दीके लिये जितना श्रम आपने किया है उतना बहुतोंने नहीं किया। आप बड़े ही होनहार और प्रशंसायोग्य लेखक हैं। आपकी रचित, अनुवादित और सम्पादित बहुतसी पुस्तकें हैं।

पं० जगदीश झा 'विमल'—आप विहारके उन युवक सुलेखकों और कवियोंमें हैं जिसके लिये प्रान्तको गौरव हो सकता है। आप मैथिल ब्राह्मण हैं। आपका जन्म विहार प्रांतके भागलपुर जिलेके अन्तर्गत कुमैठा नामक ग्राममें संवत् १९४६ भाद्र कृष्णाष्टमीमें हुआ था। शिक्षाकाल समाप्त कर १९११ ई०से आप शिक्षा-विभागमें कार्य कर रहे हैं। आपकी हिंदी-सेवाका समय १९१४ ई०से आरम्भ हुआ। इतने समयमें 'विमलजी'ने हिंदी भाषाकी कितनी सेवा की यह किसी प्रेमीसे छिपी नहीं है। आपकी सुन्दर कहानी, भावपूर्ण कविता, हिन्दीकी सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओंमें छपती रही। आपकी लिखी हुई प्रकाशित पुस्तकोंकी संख्या अस्सीके लगभग है। आपकी कई पुस्तकें मैट्रिक, एफ० ए०के छात्रोंके लिये पाठ्य पुस्तकें स्वीकृत हैं। कुछ पद्य और गद्यकी पुस्तकोंके नाम नीचे दिये गये हैं—

खरासोना, जीवनज्योति, लीलावती, आशा पर पानी, निर्धनकी कन्या, कालचक्र, आंच, कुसुमकुंज, वेणी, रत्नहार, पुष्करिणी, वीणाझंकार, छाया, पद्मप्रसून, सुषमा, रचनाकौमुदी, निबन्धनिधि, तरंगिणी, उच्छ्वास, सती सीता, सती गंधारी, सती सीमंतिनी, सती मनसा, महासती अनुसूया, आदर्श दम्पति, सती पंचरत्न, वीर-बालपंचरत्न, सती सुकन्या, अरुन्धती, द्रौपदी, सुनीति, महावीर, सती वृन्दा, आदर्श-सम्राट्, लक्ष्मीचरित्र, रमणी कर्त्तव्य और सतीसतीत्व।

इस प्रकार हम देखते हैं, कि विमलजी एकनिष्ठ हिन्दीभक्त हैं। समाजके प्रति उनमें दर्द है, बन्धुत्व की उनमें तड़पन है। रहन-सहन उनकी बहुत सरल तथा सादी है।

अङ्गरेजी राज्यकी राजधानी और व्यापारका बड़ा केन्द्र होनेके कारण कलकत्ता धीरे धीरे भारतवर्षका प्रधान केन्द्र भी बन गया। कलकत्ता-वासियोंकी भाषा बंगला है। अतः कलकत्तेका बंगला भाषाका साहित्यिक केन्द्र होना स्वाभाविक ही है, परन्तु हिंदी सदासे भारतकी प्रमुख भाषा रही है। अतः कलकत्ता हिन्दी-साहित्यका भी केंद्र बन गया। लल्लूलाल और सदलमिश्रने यहीं खड़ी बोलीमें पुन: प्राण-प्रतिष्ठा की, पहला समाचारपत्र भी यहीं निकला और आजकल भी हिंदीके सबसे अधिक दैनिक पत्र भी यहींसे निकलते हैं। इस समय कलकत्तेके पुराने साहित्य सेवियोंमें भारतमित्रके प्रथम सम्पादक पण्डित छोटूलाल मिश्र सबसे अधिक वयोवृद्ध हैं।

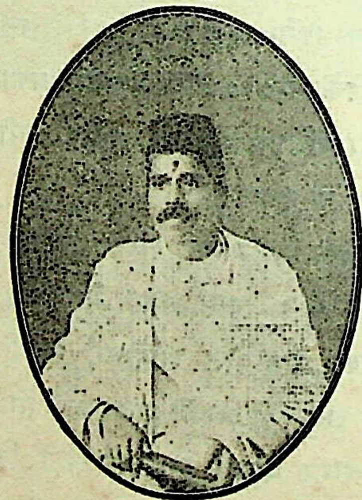
पं० अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयी—आपने पुराने 'भारत-मित्र'को चमकानेमें काफी प्रयत्न किया था। वर्त्तमान पत्रोंमें 'भारतमित्र' सबसे प्राचीन पत्र है। वर्त्तमान हिंदी दैनिकोंमें वही सबसे पहले दैनिक रूपमें निकला था। उसे दैनिक बनानेका सारा श्रेय अम्बिकाप्रसादजीको ही है। वाजपेयीजीके विचार बहुत परिष्कृत हैं, इसीलिए उनके लेख बहुत सुलझे हुए होते हैं। बहुत वर्षों तक 'भारत मित्र'का सम्पादन करनेके बाद वाजपेयीजीने 'स्वतन्त्र' को जन्म दिया, जिसका वे अब तक सम्पादन करते रहे। वाजपेयीजीको हिन्दी व्याकरणका बहुत



पण्डित अम्बिका प्रसादजी वाजपेयी

अच्छा ज्ञान है। उन्होंने इस विषय पर एक पुस्तक भी लिखी है।

पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे—कलकत्तेके अन्य पत्रकारोंमें पं० लक्ष्मण-नारायण गर्देका नाम विशेष उल्लेखयोग्य है। गर्देजी काशी-प्रवासी महाराष्ट्र ब्राह्मण हैं। उनका जन्म



पण्डित लक्ष्मण नारायण गर्दे

सम्वत् १९४६में काशीमें हुआ था। बंग भाषाके सुप्रसिद्ध लेखक स्व० गणेश सखाराम देउस्करके गर्देजी जामाता हैं। ये पहले 'नवनीत' नामक मासिकपत्रमें कार्य करते

रह थे, फिर 'भारतमित्र'के सम्पादकीय विभागमें आये। पंडित अम्बिकाप्रसाद वाजपेयीके 'भारतमित्र' छोड़ने पर गर्देजी 'भारतमित्र'के प्रधान सम्पादक हुए। 'भारतमित्र' छोड़नेके बाद वे 'श्रीकृष्णसन्देश'के सम्पादक हुए। 'श्रीकृष्णसन्देश' अपने जीवनकालमें हिंदीका सर्वोत्तम साप्ताहिक समझा जाता था। आजकल गर्देजी 'विजय' नामक साप्ताहिक-पत्रका सम्पादन करते हैं। हिन्दी लेखकोंमें गीताका जितना गम्भीर अध्ययन गर्देजीने किया है उतना बहुत कम लोगोंने किया होगा। उनकी रचनाओंमें 'सरल गीता', 'महाराष्ट्ररहस्य', 'एशियाका जागरण' और 'श्रीकृष्णचरित्र' हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने कई पुस्तकोंका अनुवाद भी किया।

पं० सकलनारायण शर्मा—आप भी कलकत्तेके प्रसिद्ध साहित्यिकोंमें हैं। वे आरासे निकलनेवाली 'शिक्षा' नामक पत्रिकाके सम्पादक और संस्थापक हैं। शर्माजी संस्कृतके धुरंधर विद्वान् हैं और कलकत्ता विश्व-विद्यालयमें संस्कृत अध्ययनका कार्य करते हैं। उनका जन्म



पंडित सकलनारायण शर्मा काव्यव्याकरणतीर्थ

सम्वत् १९२८में आरामें हुआ था। शर्माजीके ही प्रयत्नसे आराके समान छोटे शहरमें नागरी प्रचारिणी सभाकी स्थापना हुई थी, जो अब तक हिन्दी प्रचारका अनवरत उद्योग करती जाती है। शर्माजीने हिन्दी और संस्कृतमें अनेकों पुस्तकें लिखी हैं। बीसवें हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके स्वागताध्यक्ष पण्डित सकलनारायणजी ही थे। बिहारके हिन्दी लेखकोंमें पांडेयजीका स्थान ऊंचा है। संस्कृतके और पण्डितोंके विपरीत इन्हें मातृभाषा हिन्दीसे बहुत प्रेम है और ये उसके अच्छे उन्नायकोंमेंसे हैं। साथ ही ये आचारवान्, सरल स्वभावके और बहुत मिलनसार हैं।

उपसंहार।

सारांश यह है, कि क्या कला पक्ष और क्या भाव पक्ष दोनोंमें अभी पूर्ण परिपक्वता नहीं आई है, पर हिन्दी दोनोंकी ओर दृढ़तापूर्वक अग्रसर हो रही है। सच बात तो यह है, कि हिन्दी भाषा और साहित्यका वर्त्तमान रूप बड़ा चमत्कारपूर्ण है। इसमें भावी उन्नतिके बीज वर्त्तमान हैं जो समय पा कर अवश्य पल्लवित और पुष्पित होंगे। परिवर्तन कालमें जिन गुणोंका सब बातोंमें होना स्वाभाविक है वे सब हिंदी भाषा और साहित्यके विकासमें स्पष्ट देख पड़ते हैं और कालका धर्म भी पूर्णतया प्रतिबिंबित हो रहा है। इस अवस्थामें जीवन है, प्राण है, उत्साह है, उमंग है और सबसे बढ़ कर बात यह है, कि भविष्योन्नतिके मार्ग पर दृढ़तापूर्वक अग्रसर होनेकी शक्ति और कामना है। जिनमें ये गुण हैं वे अवश्य उन्नति करते हैं। हिंदीमें ये गुण वर्त्तमान हैं और उसकी उन्नति अवश्यंभावी है। हिंदी और उसके साहित्यका भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल और सुन्दर देख पड़ता है आदर तथा सम्मानके पात्र वे महानुभाव हैं जो अपनी कृतियोंसे इसके मार्गके कंटकों और झाड़ झंखाड़ोंको दूर कर उसे सुगम्य प्रशस्त और सुरम्य बना रहे हैं।

हिन्दुस्तान—भारतवर्ष देखो।

हिन्दू (सं० पु०) आर्यावर्त्तवासी वर्णाश्रमधर्मी। मेरुतन्त्रके २३वें पटलमें कुछ श्लोकोंमें हिंदु शब्दका उल्लेख है। ये सब श्लोक उतने प्राचीन नहीं समझे जाते। इन श्लोकोंमें यह भी लिखा है, कि अंगरेज जाति, लण्डन नगर और शाह लोग हिन्दूधर्मको विलोप करनेवाले हैं। यथा—

"पश्चिमाम्नायमन्त्रास्तु प्रोक्ताः पारस्यभाषया ।
अष्टोत्तरशताशीतिर्येषां संसाधनात् कलौ ॥
पञ्च खानाः सप्त मीरा नव साहा महाबलाः ।
हिन्दूधर्मप्रणोत्तारो जायन्ते चक्रवर्त्तिनः ॥
हीनञ्च दूषयत्येव हिन्दूरित्युच्यते प्रिये ।
पूर्वाम्नाये नवशतं षड़शीतिः प्रकीर्त्तिताः ॥
फिरिङ्गभाषया मन्त्रास्तेषां संसाधनात् कलौ ।
अधिपा मण्डलानाञ्च संग्रामेष्वपराजिताः ॥
इंरेजा नवषट्पञ्च लण्डजश्चापि भाविनः ।"

(मेरुतंत्र २३ प०)

मुसलमान तथा दूसरी विदेशी और अनार्यजातियों-को छोड़ भारतवासी मात्र ही हिन्दू कहलाते हैं। वेदमें सप्तसिंधुका उल्लेख है। पारसिक सुप्राचीन धर्मशास्त्र अवस्तामें वह शब्द उच्चारणभेदसे 'हप्त हिन्दु' नामसे व्यवहृत हुआ है। पञ्चनद प्रदेशको ही वेदमें 'सप्त सिंधु' और अवस्तामें 'हप्त हेन्दु' कहा है। सुप्राचीन पारसिकगण पञ्चनद प्रदेशका विषय जानते थे, उन्हें भारतके आभ्यन्तर जनपदका उतना हाल मालूम नहीं था। स्वभावतः वे लोग 'स' के स्थानमें 'ह'का उच्चारण करते थे। इसीसे वे लोग केवल सिंधुवासीको ही 'हिन्दू' कहते हैं। पीछे मुसलमानी-जगत्‌में भारतवासीमात्र ही हिंदू कहलाने लगे। उसीका अपभ्रंश हिन्द है। भारत-में आये हुए मुसलमान लोग समस्त भारतको 'हिंद' और इसके अधिवासीको 'हिंदू' और 'हिंद' इन दोनों नामसे सम्बोधन करते थे। अनन्तर मुसलमानी अधि-कार जब सर्वत्र फैल गया, तब उसके साथ साथ मुसलमानोंको छोड़ भारतवासी आर्यसन्तानमात्र ही 'हिन्दू' कहलाने लगी। मुसलमानी अमलके पहले कोई भी भारतवासी 'हिंदू' कह कर अपना परिचय नहीं देता था, इसीसे किसी भी प्राचीन संस्कृत या प्राकृत ग्रंथमें 'हिन्दू' शब्दका उल्लेख नहीं है। मुसलमानी अधिकार स्थायी होनेके बाद जब तमाम पारसी भाषाका व्यवहार होने लगा, उस समय राजकर्मचारी भारतवासीमात्र ही 'हिन्दू' कह कर अपना परिचय देने लगे। इसी समय शायद मेरुतंत्रमें सर्वप्रथम 'हिन्दू' शब्दका व्यवहार हुआ और आगे चल कर अनार्य जातिको छोड़ भारत-वासी आर्यसंतानमात्र ही 'हिंदू' कह कर अपना परि-चय देने लगी। वर्त्तमान कालमें भारतवासी आर्य-सन्तान जैन और बौद्धगण यद्यपि अपनेको हिन्दू नहीं बतलाते, फिर भी मुसलमानी अमलमें वे लोग हिन्दू कह कर ही अपना परिचय देते थे। इसीसे मुसलमान-ग्रंथमें इन दो सम्प्रदायोंका स्वतंत्र उल्लेख नहीं है। मुसलमानी अमलमें चीनदेशमें जो सब बौद्ध ग्रन्थ रचे गये, उनमें भारतीय बौद्धोंको 'हिन्दू बौद्ध' नाम दिया गया है। अभी आर्य शब्दकी तरह हिन्दू शब्द भी पारि-भाषिक हो रहा है। जो वेद अथवा वेदोदित धर्मग्रन्थ और परलोक पर विश्वास करते हैं तथा गो-मांस छूते तक भी नहीं, वे ही आज कल कट्टर 'हिन्दू' कहलाते हैं, यह हिन्दू सभ्यता एक समय सारे सभ्य-जगत्‌में फैली हुई थी। यहां तक कि तीन हजार वर्ष पहले हिन्दूओं-ने सुदूर एशिया माइनर आदि स्थानोंमें भी वैदिक धर्म-का प्रचार किया था, इसके कितने ही प्रमाण मिलते हैं। हिताइत, आर्य, उपनिवेश, यवद्वीप, कम्बोज आदि शब्दोंमें प्रतीच्य हिन्दू सभ्यताका परिचय देखो।

हिन्दूकुश—एशियाकी एक विस्तृत पर्वतमाला। यह पामीर मालभूमिसे ले कर अफगानिस्तानके उत्तर-पूर्व तक फैली तथा मध्य एशियाके अक्षा० ७३' ३७´ उ०से निकल कर अफगानिस्तानके भारतसीमान्त पर समाप्त हुई है। हिन्दूकुशके उत्पत्तिस्थानसे चार बड़ी बड़ी नदियां निकली हैं, आक्सस, यारन्द दरिया, कुनार और गिलगिट नदी। यह पर्वतमाला हिमालयकी ही प्रसार है, केवल बिचला हिस्सा सिंधुनद द्वारा पृथक् हुआ है। जहां एक खण्ड पर्वतने घोरबंद उपत्यकासे हेलमण्डको अलग किया है, वहां तक पश्चिममें हिंदू-कुशका विस्तार है। इसके बादसे पश्चिमकी ओर इस पर्वतमालाका नाम बदल गया है। इस सीमामें शाखाप्रशाखा ले कर हिंदूकुशका प्रसार २०० मील है। हिंदूकुश पर्वतमालाकी चार प्रधान शाखाएं हैं। इन सब पर्वतशाखासे नदियां निकल कर मध्यएशियाके सभी प्रदेशोंमें बहती हैं।

मध्य एशियाके भिन्न भिन्न स्थानमें जिस प्रकार भिन्न भिन्न जातियोंका वास है, हिन्दूकुश पर भी उसी

नाम	अक्षांश	देशां	ऊंचाई (फुट)
यमुनोत्तरी	३१° ६′ २५″	७८° ३४′ ६″	२००३८
गोसस	२८ ३२ ५५	८४ ३६ ६	२६६८०
सिह्हुर	२७ ५३ १८	८७ ७ ५४	२७७१६
स्वर्गरोपन	३१ ६ ८	७८ ३२ ३२	२०४०५
स्वर्णकोशी	२७ ५८ १३	८६ २८ ३२	२३५७०

हिमालयकी सर्वोच्च शृङ्गमालासे बहुत उत्तरमें हिमालयकी अववाहिका है। इसके पास बहुतसी छोटी छोटी संकीर्ण गिरिगुहा और उपत्यका दिखाई देती हैं। भारतवर्षमें जो सब नदियां बहती हैं, उनकी उत्पत्ति इन सब समवाहु गिरिमालासे हुई है। उत्तर भारतवर्षको जिन सब विख्यात नदियोंने शस्यसम्पदशाली बना दिया है, वे हिमालयके पश्चिम और पूर्वसे निकली हैं। इन सब नद-नदियोंके नाम ये हैं—झेलम, चनाव, रावी, व्यासा, सतलज, यमुना, गंगा, घघरा, गण्डक, कोशी, तिस्ता (मानस और सुवर्णगिरि), ब्रह्मपुत्रनद और विहङ्ग।

देहरादून और यमुनाकी पूरवी समतल भूमिको शिवालिक पर्वतमाला अलग करती है। लेफ्टेनेण्ट कटलीने १९वीं सदीके प्रथम भागमें शिवालिकसे प्रस्तरीभूत अस्थि-विन्यासका सबसे पहले आविष्कार किया। कटली साहब तथा डाक्टर फलकनर साहबने इससे जो सब प्रस्तरीभूत अस्थि संग्रह कीं उसका विवरण Palaeontological Memoirs नामक ग्रन्थमें प्रकाशित हुआ है। उन लोगोंने बड़े परिश्रमसे मिट्टीके भीतर जिन सब स्तन्यपायी पशुओंका देहावशेष आविष्कार किया, उनके साथ दूसरे किसी 'फसिल' या प्रस्तरीभूत अस्थिकी तुलना नहीं हो सकती। वैज्ञानिक अनुसंधान द्वारा इन सब अस्थियोंके प्राणितत्त्वसम्बन्धमें नाना प्रकारके तथ्य आविष्कृत हुए हैं।

आर्य लोगोंके अधिकांश प्रधान प्रधान पुण्यक्षेत्र या तीर्थ इसी हिमालयके ऊपर हैं। स्कन्दपुराणके हिमवत् खण्डमें उन सब तीर्थोंका माहात्म्य विशद रूपमें वर्णित है। गवर्मेण्टसे प्रकाशित हिमालयान् गजेटियरमें यहांके भूतत्त्व, प्राणितत्त्व, भौगोलिक विवरण और इतिहास सविस्तार लिखा है।

तिब्बत शब्दमें अन्यान्य विवरण देखो।

२ सफेद खैरका पेड़।

हिमालयसुता (सं० स्त्री०) पार्वती, उमा।

हिमालया (सं० स्त्री०) भूम्यामलकी, भुईआँवला।

हिमावती (सं० स्त्री०) स्वर्णक्षीरी, स्वनामख्यात औषधविशेष। गुण—तिक्त, प्लीहा और गुल्मोदरनाशक, कृमि, कुष्ठ और कण्डुतिनाशक। (भावप्र०)

हिमाश्रया (सं० स्त्री०) स्वर्णजीवन्ती।

हिमाह्व (सं० पु०) १ कपूर, कपूर। २ जम्बूद्वीपके एक वर्ष या खंडका नाम।

हिमाह्वय (सं० पु०) हिमाह्व देखो।

हिमिका (सं० स्त्री०) १ तृणोपरि पतित हिम, घास पर गिरा हुआ बर्फ। २ शिशिरविन्दु ३ हिमसङ्घात।

हिमेलु (सं० त्रि०) हिमार्त्त।

हिमोत्तरा (सं० स्त्री०) कपिलद्राक्षा, एक प्रकारकी दाख।

हिमोत्पन्ना (सं० स्त्री०) यावनाल।

हिमोदक (सं० क्ली०) शीतल जल, ठंढा पानी।

हिमोद्भवा (सं० स्त्री०) १ शटी, कचूर। २ क्षीरिणी, खिरनी।

हिमोपम (सं० पु०) प्रवाल, मूंगा।

हिम्मत (अ० स्त्री०) १ कोई कठिन या कष्टसाध्य कर्म करनेकी मानसिक दृढ़ता या बल, साहस। २ बहादुरी, पराक्रम।

हिम्मतगढ़—ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० २६° ३′ उ० तथा देशा० ७८° ५″ पू०के मध्य विस्तृत है। इसके निकटवर्ती पन्नियार शहरमें मराठा और ग्रे-के अधीनस्थ अंगरेजी सेनाओंमें एक युद्ध हुआ था।

हिम्मत बहादुर—बुन्देलखण्डके अन्तर्गत छत्रपुरके एक अधिपति। ये 'गोसाईं नवाब हिम्मत बहादुर' नामसे प्रसिद्ध थे। बुन्देला लोगोंने इनका राज्य अधिकार किया। इन्होंने ठाकुर कविके कौशलसे उस बार रक्षा पाई थी, इसीसे वे ठाकुर कविका बड़ा सम्मान करते थे। इन्होंने बहुत सी गोसाईं सेना ले कर सिंधियाकी ओरसे युद्ध किया था। बुंदेलोंका दमन करनेके लिये इन्होंने पहले अली बहादुरको बुंदेलखण्ड जीतनेकी सलाह दी। मराठा-युद्धकालमें ये अंगरेजोंकी ओरसे लड़े थे। आप

अनेक कवियोंके उत्साहदाता थे और स्वयं भी कितनी हिंदी कविता रच गये हैं।

हिम्मतावाद—दिनाजपुर जिलेके अन्तर्गत एक ग्राम। यह दिनाजपुर शहरसे ३० मील पश्चिम कुलिक नदीके ऊपर अक्षा० २५° ४०′ उ० तथा देशा० ८८° १५′ ५०″ पू०के मध्य अवस्थित है।

हिम्मती (फा० वि०) १ साहसी, हिम्मतवाला। २ पराक्रमी, बहादुर।

हिम्य (सं० त्रि०) हिमोत्पन्न, बर्फसे होनेवाला।

हियंसियं (हिउएनसियं, युएनचुवंग)—सुप्रसिद्ध चीन-परिव्राजक और बौद्धयति। किंवदन्ती और चीन-ग्रंथमें इनकी वंश-आख्यायिकाका जो विवरण आया है उससे जाना जाता है, कि चीनराज्यके सुप्राचीन सानराजकुलमें इनका जन्म हुआ। ऐतिहासिक प्रमाणसे हमें मालूम होता है, कि इन्होंने चंपन नामक एक राजकुलमें जन्मग्रहण किया था।

इनके पिता चंपन-हुइ सुविज्ञ और बुद्धिमान् थे। राज्यमें अराजकता स्रोतको बहते देख वे चंपन-पत्तकु ग्राममें चले गये और वहीं एकान्तमें बैठ कर धर्मचर्चामें दिन विताने लगे। यहीं पर ६०० ई०में परिव्राजक युएनचुअङ्गका जन्म हुआ था।

चंपन हुईके चार पुत्रोंमें यु एन चु अङ्ग सबसे छोटे थे। चारों भाइयोंने उपयुक्त पिता और दूसरे दूसरे गुरुओंसे अनेक शास्त्रोंमें अभिज्ञता प्राप्त कर ली थी। परंतु बालक युएन-चुअङ्ग कुछ अधिक चतुर और ज्ञानी थे। दूसरे-दूसरे भाइयोंकी तरह ये खेल कूद या ठाट बाटको पसंद नहीं करते थे। निर्जनमें बैठ कर ज्ञानार्जन करनेकी ओर ही इनकी विशेष प्रवृत्ति थी। प्रथम जीवनमें ये पिताके चलाये धर्मके पक्षपाती थे तथा तदनुयायी इन्होंने कनफुचीमतपोषक सभी शास्त्र और नीतिग्रंथ अध्ययन कर डाले थे।

इनके दूसरे भाई जब बौद्धधर्ममें दीक्षित हुए, तब इस नवीन धर्मके प्रति इनका भी ध्यान दौड़ा। पीछे इन्होंने भाईका पदाङ्क अनुसरण कर बौद्धोंके अनेक सङ्घारामोंमें परिभ्रमण करने और वहीं अपना समय वितानेका विचार किया। इसके बाद बौद्धयति होनेकी वासना उनके हृदयमें प्रबल हो उठी। तदनुसार वे नवीन श्रामणकी तरह बड़े आग्रहसे बौद्धधर्म ग्रंथोंकी आलोचनामें प्रवृत्त हुए। इस प्रकार बीस वर्षकी उमरमें ये श्रमणधर्ममें दीक्षित हुए। इस समय संघाराम-के बौद्ध पण्डितोंके साथ रह कर बौद्धधर्म-सम्बंधीय प्रधान प्रधान और प्रसिद्ध धर्मशास्त्रकी आलोचना करनेके इन्हें काफी समय मिला। इस युवकश्रमणकी ज्ञानज्योति शीघ्र ही चीनजगत्‌में फैल गई। परन्तु ये अधिक दिन चीनराज्यमें चुप चाप बैठ कर समय विताना नहीं चाहते थे। जिस बुद्धकी वाक्यावलीने इनके हृदयमें अभिनव धर्मभाव जगा दिया था, उस बुद्धधर्मलीलाके पवित्र क्षेत्र भारतके बौद्धतीर्थों और बुद्धोपदेशावलीके प्रत्यक्ष निदर्शनोंको अपनी आंखोंसे देखनेकी इनकी उत्कट इच्छा हुई। क्योंकि, बौद्धग्रंथोंकी चीनभाषाका अनुवाद पढ़ कर धर्मतत्त्व विषयमें उन्हें प्रकृत रसास्वादन नहीं मिलता तथा उसे पा कर तृप्ति नहीं होती, ऐसी एक दुर्भावना उन्हें सताने लगी। अनंतर इन्होंने मूलग्रंथ संग्रह करनेका संकल्प किया। बौद्धमतानुसार-दृढ़विश्वासी भारतीय पण्डितवर्ग धर्मतत्त्वका जो निगूढ़ मर्मोद्घाटन करते हैं, वही जानना उनकी हार्दिक इच्छा थी।

६२९ ई०के सितम्बर मासमें परिव्राजकश्रेष्ठ बिना किसीको कहे सुने चंअङ्ग-अन् (वर्त्तमान हसि-अन-फु) राजधानीका परित्याग कर भारतयात्राको निकले। इन्होंने ६३० ई०के सितम्बर मासके शेष भागमें अथवा अक्तूबरके प्रारम्भमें भारत पदार्पण किया। इसके बाद उत्तर और दक्षिण भारतके सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध हिंदू और बौद्ध-तीर्थोंके दर्शन कर वे ६४४ ई०के जुलाई मासमें स्वदेश लौटनेकी तैयारी करने लगे। भारतमें आ कर वे जिन सब तीर्थोंमें गये थे तथा उस समयके जिन सब राजाओंके साथ मिले थे, उन्हें वे अपनी जीवनी (त तं अङ्ग-त-तजु-पन-सु-सन-तसङ्ग-फ-शिह-चुअन्) और भ्रमण-विवरणी (त त, अङ्ग-ह-सि यूकि) ग्रंथमें लिपिबद्ध कर गये हैं।

स्वदेश छोड़नेके १६ वर्ष पीछे अर्थात् ६४५ ई०में युएन-चुवंग चंअङ्ग-अन राजधानीमें लौटे। उस समय

राजा अ' अङ्ग त-अई राजसिंहासन पर अधिष्ठित थे। उन्होंने परिव्राजकके सम्मानार्थ उत्सव मनानेका हुकुम दिया। स्वयं चीन-सम्राट्, अमात्य, सचिववर्ग, राजकर्मचारीवर्ग, वणिक्वृन्द और जनसाधारणने अपना अपना काम काज बंद कर उनका स्वागत किया। राजधानीकी प्रत्येक नरनारीने नाच गान, ध्वजच्छत्र आदिसे सड़क पर उनका स्वागत किया था। और तो क्या, उस समय चीनराजधानीकी निराली छटा देख कर किसका मन नहीं लुभा जाता था!

तुषारावृत शैलशिखर और अनुर्वर मरुक्षेत्रमें शीत और ग्रीष्मका घोर कष्ट अनुभव कर परिव्राजक युपन चुअङ्ग लुब्ध शरीरसे स्वदेश लौटे हैं और अपने साथ भारतसे अत्यंत मूल्यवान् सम्पत्ति लाये हैं, यह सुन कर उनके दर्शनार्थ चीनवासियोंका तांता बंध गया। चीन-परिव्राजक इस उपलक्षमें भारतसे ६५७ तालपत्रमें लिखित पवित्र धर्मग्रंथ (विनय, त्रिपिटक इत्यादि) साथ लाये थे। वे सब ग्रंथ भारतीय देवभाषामें लिखे हुए थे। इसके सिवा वे सोने, चांदी, स्फटिक और चंदनकी लकड़ीकी बनी हुई बुद्ध तथा नाना बौद्धाचार्य या बोधिसत्वमूर्त्ति साथ ले गये थे। उसके साथ कुछ अद्भुत चित्र और १५० बुद्धदेवके उत्तम स्मृति-चिह्न भी विद्यमान थे। उन सब वस्तुओंको २० घोड़ोंकी पीठ पर लाद कर परिव्राजकजीने जुलूसकी शोभाको बढ़ाते हुए नगरमें प्रवेश किया था।

उस समय बिना सम्राट्की आज्ञाके किसी भी चीनवासीको देशांतर जानेका अधिकार नहीं था। हुयंसियं-के राजाज्ञाका उल्लंघन करने पर भी सम्राट् त-अइ-तसुङ्गने जरा भी क्रोध न किया, वरन् उनका दिल खोल कर स्वागत किया और पीछे उनसे मित्रता कर ली। उन्होंने परिव्राजक युपन-चुअङ्गको अपने गुप्त मंत्रणागारमें बुला कर उनके मुखसे अज्ञात भारतका आनुपूर्विक विवरण सुना। पीछे सम्राट्ने उन्हें कष्टकर धर्मजीवनका परित्याग कर गार्हस्थ्यधर्म ग्रहण करनेका अनुरोध किया, पर वे फिर इस संसारमें प्रवेश करनेको राजी न हुए। इसके बाद दृढ़प्रतिज्ञ परिव्राजक अपने संघारामकी निर्जन कोठरीमें बैठ कर पूर्वोक्त बौद्धधर्मग्रंथोंका चीन-भाषामें अनुवाद करने लग गये। अकेला कुल ग्रंथोंका अनुवाद कर उनका प्रचार करना असम्भव-सा जान कर उन्होंने सम्राट्से सहायता मांगी। सम्राट्ने परिव्राजकके सहायतार्थ अन्यान्य पण्डितोंको अनुवाद, लिपिकरण और मुद्राङ्कन आदि कार्योंमें नियुक्त किया। ६४६ ई०में उनके भ्रमणवृत्तान्त (हसि-यु-चि)की पहली कापी सम्राट्को समर्पण की गई। परन्तु सच पूछिये, तो वह ग्रंथ ६४८ ई०में संशोधित हो कर प्रचारित हुआ था।

परिव्राजक कुछ समय अनुवाद करनेमें और बाकी लोगोंको धर्मोपदेश देनेमें बिताते थे। ६६४ ई०के द्वितीय मासके ६ठे दिनमें इनका तिरोधान हुआ।

वे देखनेमें पिताके जैसे लंबे और अच्छे डील डौलके थे। उनका नैतिक जीवन बड़ा ही मधुर था। उसके साथ ज्ञानका उन्मेष रहनेके कारण उनके हृदयमें दया-दाक्षिण्य मानों भरपूर था। वे बौद्धधर्मके कट्टर विश्वासी शाक्य-मुनिके अनुरक्त भक्त होने पर भी देशके प्राचीन मत पर विश्वास करते थे। साठ वर्षकी उमरमें भी इनके हृदयमें पुत्रका कर्त्तव्य जाग्रत था। वे प्राचीन प्रथासे पिताको उपयुक्त समाधि देनेके लिये अग्रसर हुए थे। जब वे स्वयं लाख चेष्टा करके भी पिताके समाधिक्षेत्रका पता न लगा सके, तब उन्होंने अपनी बहन श्रीमती चङ्गको जो कहीं बाहर चली गई थी, बुलाया और उसकी सहायतासे पिताकी समाधिको खोज कर निकाला। पीछे सम्राट्की आज्ञा ले कर उन्होंने पिताकी हड्डीको कब्रमेंसे निकाला और कुलप्रथाके अनुसार बड़ी धूमधामसे फिर उसे गाड़ दिया। भारतमें आ कर बुद्ध और बौद्धधर्मके सभी विषय जाननेके अलावा उन्हें और किसी बातका अरमान नहीं था। स्वयं गौतम बुद्धने जो धर्ममत प्रचार किया, उसमें विश्वास रहने पर भी कई विषयोंमें इनका मत नहीं मिलता था। वे हीनयान मतको निन्दनीय समझते थे। बुद्धकी सरल उपदेशावली उनकी आलोचनाकी एकमात्र उपकरण थी। नालन्दा बिहारमें बौद्धयति शीलभद्रने जो धर्म प्रचार किया था, उन्हींके अनुकरण पर युपनचुअंग चीनसाम्राज्यमें बौद्ध-धर्मका चतुर्थ साम्प्रदायिक मत चला गये हैं।

हिय (हिं॰ पु॰) १ हृदय, मन। २ वक्षस्थल, छाती।

हियरा (हिं॰ पु॰) १ हृदय, मन। २ वक्षस्थल, छाती।

हिया (हिं॰ पु॰) १ हृदय, मन। २ वक्षस्थल, छाती।

हियव (हिं॰ पु॰) कोई कठिन काम करनेकी मानसिक दृढ़ता, साहस।

हिर (सं॰ पु॰) कपड़े आदिकी पट्टी।

हिरकल—एक शैलमाला। यह तुमकुर, हस्सन और कदूर जिलाओंके 'सङ्गमस्थल पर महिसुर राज्यके मध्य अवस्थित है। इन शैलमालामें-से एक पर तिरुपतिका प्रसिद्ध मन्दिर है। दूसरे पर हैदरअलीने नयापुरी नामक एक शहर बसानेकी चेष्टा की थी।

हिरगुनी (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी बढ़िया कपास जो सिंधमें होती है।

हिरङ्गु (सं॰ पु॰) राहुग्रह।

हिरण (सं॰ क्ली॰) १ रेतः, वीर्य। २ स्वर्ण, सोना। ३ वराटक, कौड़ी।

हिरणमय (सं॰ क्ली॰) १ जम्बू द्वीपके नौ खंडों या वर्षोंमें-से एक। भागवतमें पञ्चम स्कन्धके १६वें अध्यायमें इस वर्षका विवरण लिखा है। इस वर्षके उत्तर इलावृत वर्ष है। श्वेत नामक पर्वत इस वर्षका मर्यादागिरि है। यह वर्ष दो हजार योजन विस्तृत है। इसके दोनों ओर क्षीरोदसमुद्र अवस्थित है। (पु॰) २ उक्त वर्षका शासक, अग्नीध्रका पुत्र। ३ हिरण्यगर्भ, ब्रह्मा। ४ एक ऋषि। (त्रि॰) ५ सुवर्णमय, सोनेका।

हिरण्य (सं॰ क्ली॰) हर्य्य गतिकान्त्योः (हर्यतेः कन्यन् हिर च। उण् ५।४४) इति कन्यन् हिरादेशश्च। १ सुवर्ण, सोना। सुवर्ण देखो। २ धुस्तूर, धतूरा। ३ रेतः, वीर्य। ४ द्रव्य, वस्तु। ५ वराट, कौड़ी। ६ अक्षर। ७ एक मन या तौल। ८ हिरणमय वर्ष या खंड। ९ एक दैत्य। १० नित्य, तत्त्व। ११ ज्ञान। १२ ज्योति, तेज। १३ अमृत। १४ रजत, चांदी। १५ धन, दौलत। १६ एक प्रकारका गुग्गुल।

हिरण्यक (सं॰ पु॰) स्वर्ण, सोना।

हिरण्यकक्ष (सं॰ त्रि॰) स्वर्णकक्षयुक्त।

हिरण्यकक्ष्य (सं॰ त्रि॰) हिरण्यकक्षसम्बन्धी।

हिरण्यकर्ण (सं॰ त्रि॰) जिसके कानोंमें सोनेके कुण्डल हों।

हिरण्यकत्तृ (सं॰ पु॰) स्वर्णकार, सुनार।

हिरण्यकशिपु (सं॰ पु॰) एक दैत्य। इसके पिताका नाम कश्यप और माताका नाम दिति था। श्रीमद्भागवत और विष्णु आदि सभी पुराणोंमें इस दैत्यका विवरण आया है जो संक्षेपमें इस प्रकार है। वैकुण्ठ-भवनमें भगवान् हरिके जय और विजय नामक दो द्वारपाल थे। भगवान् विष्णुके द्वारकी रक्षा करना ही इनका काम था। एक दिन सनन्दादि ऋषिगण विष्णुलोक गये। जय और विजयने इन ऋषियोंको पुरप्रवेश करनेसे निषेध किया। इस पर वे लोग बड़े बिगड़े और द्वारपालको शाप दिया, 'भगवान्के निकट रहते हुए भी तुम लोगोंके हृदयका रजस्तमोमल दूर नहीं हुआ है, इसलिये तुम यहां रहनेके योग्य नहीं हो, शीघ्र ही तुम्हारा आसुरी योनिमें जन्म होगा।' इस प्रकार शाप देते ही वे दोनों स्वर्गसे पतित हुए। उन्हें पतित होते देख ऋषियोंको दया आई। उन्होंने जय विजयसे कहा, 'अभी तो आसुरी योनिमें जा कर जन्म लो, पर तीन ही जन्मके बाद तुम शापसे विमुक्त हो जाओगे।' इसी जय और विजयने प्रथम जन्ममें हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु, द्वितीय जन्ममें रावण और कुम्भकर्ण तथा तृतीय जन्ममें शिशुपाल और दन्तवक्र रूपमें जन्म ग्रहण किया।

कश्यपके दिति और अदिति नामकी दो पत्नियां थीं। अदितिके गर्भसे देवताओंका जन्म हुआ। वे अमर और बलवान् हो कर स्वर्गके अधीश्वर हुए। कुछ दिन बाद दितिने भी सौ वर्ष गर्भ धारण कर दो यमजपुत्र प्रसव किये। वे दोनों विशाल पर्वत सदृश और पाषाण-के समान कठिन हो दिन पर दिन बढ़ने लगे। प्रजापति कश्यपने उन दोमेंसे जो पहले जन्मा था उसका नाम हिरण्यकशिपु और जो पीछे जन्मा था उसका नाम हिरण्याक्ष रखा। हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपुका बड़ा प्यारा था और प्रति दिन उसके प्रीतिकर काम किया करता था। धीरे धीरे हिरण्याक्ष अत्यन्त दुर्द्धर्ष हो उठा। एक दिन हिरण्याक्ष गदा ले कर युद्धकी कामनासे स्वर्ग जा पहुंचा। वहां वरुणकी विभावरी नामक पुरी अपना कर सुखसे रहने लगा। वरुण हिरण्याक्षके भयसे छिप रहे। एक दिन हिरण्याक्षने वरुणको देख कर युद्धके लिये ललकारा।

वरुणने कहा, 'हे असुर! आप रणमें बड़े सुदक्ष हैं, रणमें भगवान्को छोड़ और कोई भी व्यक्ति आपको प्रसन्न नहीं कर सकता। इसलिये आप उन्हींके पास जायें और रणपिपासाको निवृत्त करें।"

हिरण्याक्ष नारदके मुखसे हरिकी गति जान कर शीघ्र ही रसातलमें घुसा। वराहरूपी विष्णु पर उसकी दृष्टि पड़ते ही दोनोंमें घोर युद्ध चलने लगा। वराहरूपी हरिने उसके साथ बहुत देर तक युद्ध कर उसे दाँतसे विदीर्ण कर डाला और सुदर्शनचक्रसे उसका वध किया।

हिरण्यकशिपुको जब मालूम हुआ, कि वराहरूपी विष्णुके हाथसे उसका छोटा भाई मारा गया, तब वह बहुत दुःखित हुआ और विष्णुके साथ इसका बदला लेना चाहा। उसने मन ही मन स्थिर किया कि, "विष्णुको चाहे जिस तरह हो निधन कर उनके रक्तसे प्यारे भाईका तर्पण करूंगा।'

अनन्तर हिरण्यकशिपुने दुःखित चित्तसे भाईके श्राद्ध तर्पणादि करके मन्दर पर्वतकी कन्दरामें घुस घोर तपस्या ठान दी। उसकी तपस्यासे ब्रह्मा स्थिर न रह सके। उन्होंने हिरण्यकशिपुके पास जा उसे संबोधन कर कहा, 'तुम्हारी सिद्धि हो चुकी, मैं वर देने आया हूं, जो इच्छा हो मांगो।' इतना कह कर ब्रह्माने अपने कमण्डलुमेंसे जल निकाल दैत्यपति हिरण्यकशिपुके अंग पर जिसे च्युंटियां खा रही थीं, छिड़का। ब्रह्माके कमण्डलुका जल पड़ते ही हिरण्यकशिपु सर्वावयव-सम्पन्न और वज्रके समान दृढ़ाङ्ग हो सामर्थ्य, बल और तेजके साथ उस वल्मीक और कीचड़मेंसे बाहर निकला। तपे सोनेकी तरह उसका शरीर दमकने लगा।

हिरण्यकशिपुने ब्रह्माको प्रणाम कर उनका स्तव किया और कहा, 'भगवन्! आप यदि मुझ पर प्रसन्न हैं, तो यही वर दीजिये, जिससे जगत्से मेरी मृत्यु न हो। केवल यही नहीं, भीतर या बाहरमें, दिन या रातको किसीसे भी मैं न मरूं! नर या मृगसे मेरी मृत्यु न हो और न भूमि या आकाश हीमें।'

अनन्तर ब्रह्माने हिरण्यकशिपुको प्रसन्न करनेके लिये आगे पीछेका विचार किये बिना उससे कहा, 'वत्स! तुम मुझसे जो वर मांग रहे हो, यद्यपि वह वर अत्यन्त दुर्लभ है, तथापि मैंने तुम्हें दे दिया।'

हिरण्यकशिपुने वर पा कर स्वर्णदेहको धारण किया। विष्णुने उसके भाईका निधन किया है, यह स्मरण कर उनके प्रति वह अत्यन्त द्वेष करने लगा। पीछे इन्द्रका स्वर्गराज्य अधिकार कर वह स्वयं इन्द्र बन वहां रहने लगा। देवगण सताये जा कर उसीकी सेवामें नियुक्त हुए। ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन तीनको छोड़ बाकी सभी उपहार द्वारा उसकी उपासना करते थे। समस्त यज्ञका भाग हिरण्यकशिपुको ही मिलता था। देवताओंके उद्देशसे कोई भी यज्ञ नहीं कर पाता था। अनन्तर देवताओंने अत्यन्त पीड़ित हो भगवान् विष्णुकी शरण ली। जब वे लोग विष्णुकी उपासना कर रहे थे उसी समय दैववाणी हुई, 'तुम लोग डरो मत, समयकी प्रतीक्षा करो। हिरण्यकशिपु ब्रह्माके वरसे ही ऐसा दुर्वृत्त हो गया है। जब वह अपने प्रिय पुत्र प्रह्लादके ऊपर अत्याचार करेगा, उसी समय मैं उसका वध करूंगा।' देवगण यह दैववाणी सुन कर निश्चिन्त हुए और भयभीत हो कर रहने लगे।

हिरण्यकशिपुकी पत्नीका नाम कयाधु था। इसी कयाधुके गर्भसे आगे चल कर हिरण्यकशिपुके ह्राद, संह्राद, अनुह्राद और प्रह्राद या प्रह्लाद नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। प्रह्लाद अपनी सुकृतिके कारण जन्मसे ही विष्णुका सेवक था। शुक्राचार्य दैत्योंके कुलपुरोहित थे। शुक्राचार्यके शण्ड और अमर्क नामक शुक्रके समान गुणसम्पन्न अत्यन्त नीतिज्ञ दो पुत्र थे। हिरण्यकशिपुने सुपण्डित नीतिविशारद शण्डामार्कको अपने पुत्रोंका शिक्षाभार सौंपा।

शण्डामार्क इन सब पुत्रोंको दण्डनीतिकी शिक्षा देते थे। परंतु प्रह्लाद उस ओर जरा भी कान नहीं देता था, एकमात्र भगवान्के प्रति अनुरक्त रहता था। केवल अपने ही नहीं, वह सहपाठी बालकोंको भी शण्डामार्कको अनुपस्थितिमें भगवद्भक्तिकी शिक्षा देता था। पुत्रकी इस प्रकार भगवत्प्रीति देख और सुन कर हिरण्यकशिपु उसको उस ओरसे खींचनेकी चेष्टा करने लगा। पर प्रह्लाद विष्णु नाम कब छोड़नेवाला था। पीछे

हिरण्यकशिपुने उसकी हत्या करनेका हुकुम दे दिया। तदनुसार उसके अनुचरोंने प्रह्लादको मारनेके अनेक उपाय किये, पर किसोसे भी उसकी मृत्यु न हुई।

प्रह्लाद देखो।

हिरण्यकशिपु जब किसी भी तरहसे प्रह्लादका वध न कर सका, तब उसने अत्यंत क्रुद्ध हो पुत्रसे कहा, 'तुम मेरी अवज्ञा कर सर्वदा विष्णुका नाम जपा करते हो, अब भी यदि अपना कल्याण चाहते हो, तो विष्णुका नाम छोड़ दो।' इस पर प्रह्लाद कृताञ्जलि हो उसके चरणोंमें गिर कहने लगा, 'पिताजी! आप जन्मदाता हैं, आपका जिससे कल्याण हो, वही करना मेरा एकांत कर्त्तव्य है। भगवान् विष्णु ही इस जगत्के ईश्वर हैं, उनका पराक्रम असीम है, वे ही सामर्थ्य, साहस, धैर्य और इंद्रियके स्वरूप हैं। वह परम पुरुष ही अपनी शक्तिसे सृष्टि, स्थिति और प्रलय किया करते हैं, आप आसुरिक भावका परित्याग कर उन्हींकी शरण लीजिये।'

पुत्रके ऐसे वचन सुन कर हिरण्यकशिपु और भी आग बबूला हो गया। उसने कहा, 'क्या मेरे सिवा और भी कोई इस जगत्का ईश्वर है? रे मूर्ख, यदि है, तो बताओ वह कहां है? यदि कहो, कि वह सर्वत्र व्यापी है, तो यह स्तम्भ जो तुम देखते हो, उसमें क्यों नहीं होगा? इस पर प्रह्लादने वह स्तम्भ देख कर कहा, 'वे जब सर्वत्र विद्यमान हैं, तब इस स्तम्भमें भी वे जरूर हैं। उनको सत्ता नहीं रहनेसे जगत्की सत्ता हो नहीं सकती।' हिरण्यकशिपु बोला, अभी तुम्हारा शिर धड़से अलग करता हूं, देखूं तो सही, किस प्रकार तुम्हारा ईश्वर तुम्हारी रक्षा करता है।'

हिरण्यकशिपु इतना कह कर बड़े जोरसे गरज उठा और उस स्तम्भमें एक मुक्का जमाया। मुक्का लगते ही उस स्तम्भसे ऐसा भयानक शब्द निकला, कि तीनों लोक थर्रा उठा। ब्रह्मादि देवगण अपने अपने धाममें बैठ वह अद्भुत ध्वनि सुनते रहे।

अनन्तर भगवान् अपने भक्त प्रह्लादका वचन सत्य करनेके लिये दैत्यघातक घोररूप धारण कर उस स्तम्भमेंसे निकल पड़े। उनका वह रूप मृगाकार नहीं था और न सिंहाकार ही था, इसलिये बड़ा ही अद्भुत था। हिरण्यकशिपुने पहले उस नृसिंहमूर्त्तिको देखा, परन्तु उनका गर्जन सुन कर वह एकदम चमक उठा।

नृसिंहदेवने हिरण्यकशिपु पर आक्रमण कर दिया। दोनोंमें तुमुल संग्राम चलनेके बाद नृसिंहदेवने उसे चढ़ दबाया और नाखूनसे चीर फाड़ कर, हृत्पद्म निकाल कर मार डाला। अब चराचर जगत्में शान्ति विराजने लगी। (भाग० ७।२-१५ अ०)

विष्णुपुराण, अग्निपुराण और हरिवंश आदिमें भी हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपुका उपाख्यान विस्तृत भावमें लिखा है।

हिरण्यकामधेनु (सं० स्त्री०) दान देनेके निमित्त बनी हुई सोनेकी कामधेनु गाय। ऐसी गायका दान १६ महादानोंमें है।

हिरण्यकार (सं० पु०) स्वर्णनिष्पादक, सुनार।

हिरण्यकुक्षि (सं० त्रि०) स्वर्णकुक्षि।

हिरण्यकुल (सं० पु०) काश्मीरके एक राजा।

तोरमाण देखो।

हिरण्यकृत् (सं० पु०) १ सुवर्णकार, सुनार। २ अग्नि, आग।

हिरण्यकृत चूड़ (सं० पु०) शिव।

हिरण्यकेश (सं० त्रि०) १ सुवर्णकी तरह रोचमान ज्वालाविशिष्ट। (ऋक् १।७९।१) २ हिरण्यकी तरह कपिशवर्ण केशविशिष्ट। (भागवत ३।१८।७) (पु०) ३ विष्णु।

हिरण्यकेशिन् (सं० पु०) गृह्यसूत्रकार मुनिभेद।

हिरण्यकेशी (सं० स्त्री०) हिरण्यकेशिप्रवर्त्तित शाखा।

हिरण्यकेश्य (सं० त्रि०) हिरण्यवर्णकेशविशिष्ट।

हिरण्यकोष (सं० पु०) कृताकृत स्वर्णरूप्य।

हिरण्यगर्भ (सं० पु०) १ वह ज्योतिर्मय अंड जिससे ब्रह्मा और सारी सृष्टिकी उत्पत्ति हुई। २ ब्रह्मा। ३ सोलह महादानके अन्तर्गत दूसरा महादान। पुण्यतिथिमें तुलापुरुषके विधानानुसार यह दान करना होता है। मत्स्यपुराणमें इस दानका विधान विशेषरूपसे लिखा है। ४ विष्णु। ५ सूक्ष्म शरीरसे युक्त-आत्मा। ६ एक मन्त्रकार ऋषि। ७ लिङ्गभेद।

हिरण्यगुप्त (सं० पु०) योगनन्दके एक पुत्रका नाम।

हिरण्यचक्र (सं० पु०) जिस रथके चक्के सोनेके बने हों। (ऋक् १।८८।५)

हिरण्यज (सं० त्रि०) सुवर्णनिर्मित, सोनेका।

हिरण्यजा (सं० त्रि०) स्वर्णोद्भवा, सोनेसे उत्पन्न।

हिरण्यजित् (सं० त्रि०) हिरण्यजेता।

हिरण्यजिह्व (सं० त्रि०) हित और रमणीय वाक्ययुक्त।

हिरण्यज्योतिस् (सं० त्रि०) स्वर्ण जैसा दीप्तिमान्।

हिरण्यतेजस् (सं० क्ली०) स्वर्ण जैसा तेज या दीप्ति।

हिरण्यत्वच् (सं० त्रि०) हिरण्याच्छादितरूप, सोनेका मढ़ा हुआ। (ऋक् ५।७७।३)

हिरण्यत्वचस् (सं० त्रि०) सुवर्णावरणयुक्त।

हिरण्यद (सं० पु०) सुवर्णद, सुवर्णदाता। सुवर्ण दान करनेवाले दीर्घायु होते हैं। (मनु ४।२३०)

हिरण्यदंष्ट्र (सं० त्रि०) स्वर्णदंष्ट्राविशिष्ट।

हिरण्यदा (सं० त्रि०) पृथ्वी।

हिरण्यद्यु (सं० त्रि०) स्वर्ण जैसा द्युतिविशिष्ट।

हिरण्यद्रापि (सं० पु०) सुवर्णनिर्मित कवच।

हिरण्यधनुस् (सं० त्रि०) १ स्वर्णधनुर्युक्त। (पु०) २ एक निषादपति। (भारत)

हिरण्यनाभ (सं० पु०) १ मैनाकपर्वत। २ मुनिविशेष। श्रीमद्भागवतमें लिखा है, कि हिरण्यनाभ आदि मुनिगण सिद्ध थे और वे हमेशा ज्ञानकी खोजमें इधर उधर घूमा करते थे। ३ वह मकान जिसमें तीन बड़ी शालाएं पूर्व, पश्चिम और उत्तरकी ओर हों और दक्षिणकी ओर कोई शाला न हो। (वृहत्संहिता)

हिरण्यनिर्णिज (सं० त्रि०) हित और रमणीय रूपविशिष्ट।

हिरण्यनेमि (सं० त्रि०) सुवर्णसदृश रमणीय प्रान्त।

हिरण्यपक्ष (सं० त्रि०) सुवर्ण पक्षविशिष्ट।

हिरण्यपति (सं० पु०) शिव। (भारत १२ पर्व)

हिरण्यपर्ण (सं० त्रि०) हितरमणीय पर्णविशिष्ट।

हिरण्यपर्वत (सं० पु०) चीनपरिव्राजकने नालन्दासे चम्पा आते समय जिस इ-लन्-न-पो-फ-तो नामक जनपदका उल्लेख किया है, फरासी-पण्डित जूले ने उसीको हिरण्यपर्वत माना है। परन्तु उसका असल नाम ईरण या उपरगिरि है। कनिंहमने इन दोनों स्थानोंको मुङ्गेर समझा है। परन्तु वाडेल साहबने मुङ्गेर जिलेके 'उरैन' नामक शैलको ही चीनपरिव्राजक-वर्णित स्थान प्रमाणित किया है।

हिरण्यपाणि (सं० त्रि०) सुवर्णधारी।

हिरण्यपाव (सं० पु०) सुवर्णद्वारा पवित्रकारी।

हिरण्यपुर (सं० क्ली०) असुरोंका एक नगर। श्रीमद्भागवतमें लिखा है, कि निवातकवच और कालकेय आदि दानवगण इस हिरण्यपुरमें रहते थे। रसातलके नीचे यह हिरण्यपुर अवस्थित है।

हिरण्यपुष्प (सं० पु०) गोत्रप्रवरोक्त ऋषिभेद।

हिरण्यपुष्पी (सं० स्त्री०) लाङ्गलिका, कलियारी नामका जहरीला पौधा।

हिरण्यपेशस् (सं० त्रि०) हिरणमय अलङ्कार द्वारा अलङ्कृत रूप। (ऋक् ८।१२।६)

हिरण्यप्रउग (सं० त्रि०) हिरण्यमय युगबंधन स्थानयुक्त रथ। (ऋक् १।३५।५)

हिरण्यबाहु (सं० पु०) हिरण्यवत् बाहुविशिष्ट। १ शोण नद। २ शिव, महादेव। ३ एक नागका नाम।

हिरण्यबिन्दु (सं० पु०) १ पर्वतभेद। २ अग्नि, आग। ३ एक तीर्थ।

हिरण्यमूर्द्धन् (सं० त्रि०) स्वर्णशिरस्त्राणयुक्त।

हिरण्मय (सं० त्रि०) १ हिरण्यात्मक। २ हिरण्यविकार।

हिरण्ययु (सं० त्रि०) जो सोनेकी कामना करता है।

हिरण्यरशन (सं० त्रि०) हिरण्यवत् रशनायुक्त।

हिरण्यरूप (सं० त्रि०) १ सोने जैसा रूपवाला। (पु०) २ अग्नि।

हिरण्यरेतस् (सं० पु०) १ अग्नि, आग। वामनपुराणके ५३वें अध्यायमें लिखा है, कि महादेवके वीर्यत्याग करने पर पहले अग्निने उस वीर्यको धारण किया। इससे अग्निका तेज मन्द हो गया। इस पर अग्नि सभी देवताओंके साथ ब्रह्मलोक गये। राहमें कुटिला देवीसे उनकी भेंट हुई। अग्निने उन्हें देख कर कहा, 'हे देवि! बड़ी कृपा हो, यदि आप महादेवका तेज धारण करें'। इतना कहने पर देवीने महादेवका तेज धारण कर लिया। यह तेज धारण करनेसे अग्निके मांस, अस्थि, रक्त, मेद,

मज्जा, त्वक, रोम और अक्षिकेशादि सभी हिरण्यवर्ण हो गये थे, तभीसे पावक हिरण्य रेता कहलाये।

२ चित्रकवृक्ष, चीता। ३ सूर्य। ४ शिव। ५ प्रियव्रतके एक पुत्रका नाम। ६ बारह आदित्योंमेंसे एक।

हिरण्यलोमन् (सं॰ पु॰) १ पञ्चम मन्वन्तरके एक ऋषि। २ भीष्मकका एक नाम। ३ पर्जन्यके एक पुत्रका नाम

हिरण्यव (सं॰ पु॰) देवस्व, देवोत्तर सम्पत्ति।

हिरण्यवक्षस् (सं॰ त्रि॰) स्वर्ण जैसा कठिन वक्षोयुक्त।

हिरण्यवन्धुर (सं॰ त्रि॰) हिरण्य-निवासाधार काष्ठोपेत।

हिरण्यवर्त्तनि (सं॰ त्रि॰) सुवर्णमय रथविशिष्ट।

हिरण्यवर्म (सं॰ पु॰) १ सुवर्णनिर्मित वर्म, सोनेका कवच। २ दशार्णके राजभेद।

हिरण्यवान् (सं॰ त्रि॰) १ सोनेवाला, जिनमें या जिसके पास सोना हो। (पु॰) २ अग्नि, आग।

हिरण्यवाशी (सं॰ त्रि॰) हितरमणीय वाक्यविशिष्ट।

हिरण्यवाह (सं॰ पु॰) १ शोणनद। (शब्दरत्ना॰) २ शिव।

हिरण्यविद् (सं॰ त्रि॰) हिरण्यलम्भक।

हिरण्यवीर्य (सं॰ त्रि॰) अग्निरूप ब्रह्म।

हिरण्यवेगा—रेवाखण्डवर्णित नदीभेद।

हिरण्यशिप्र (सं॰ त्रि॰) सुवर्णमय शिरस्त्राणयुक्त।

हिरण्यशृङ्ग (सं॰ त्रि॰) हितरमणीय शृङ्ग, ऊंची चोटी वाला। (पु॰) २ सुवर्णमय शृङ्ग, सोनेके सींग।

हिरण्यश्मश्रु (सं॰ त्रि॰) सुवर्ण जैसा श्मश्रुविशिष्ट, जिसके दाढ़ी मूंछ सुनहली हों।

हिरण्यष्ठीव (सं॰ पु॰) सेतुशैलविशेष। भागवत (५।२०।३)में लिखा है, कि जम्बूद्वीपमें वज्रकूट और हिरण्यष्ठीव आदि सात सेतु-शैल हैं, इनमेंसे हिरण्यष्ठीव पर्वतसे ऋतम्भरा नामक महानदी निकली है।

हिरण्यसन्दृश (सं॰ त्रि॰) हिरण्यवत् रोचमान तेजोविशिष्ट। (ऋक् ६।१६।३८)

हिरण्यसरस (सं॰ पु॰) एक तीर्थ।

हिरण्यस्तुति (सं॰ स्त्री॰) स्तुतिभेद।

हिरण्य स्तूप (सं॰ पु॰) अङ्गिराके पुत्र ऋषिभेद।

हिरण्यस्रज् (सं॰ त्रि॰) जिसे सोनेकी माला या हार हो।

हिरण्यहस्त (सं॰ त्रि॰) १ प्राणदाता। (ऋक् १।३५।१०) (पु॰) २ सुवर्णमय पाणि, सोनेका हाथ।

हिरण्याक्ष (सं॰ पु॰) १ एक प्रसिद्ध दैत्य जो हिरण्यकशिपुका भाई था। यह कश्यप और दितिसे उत्पन्न हुआ था। इसने पृथ्वीको ले कर पातालमें रख छोड़ा था। ब्रह्मा आदि देवताओंकी प्रार्थना पर विष्णुने वराह अवतार धारण करके इसे मारा और पृथ्वीका उद्धार किया। २ वसुदेवके छोटे भाई श्यामकके एक पुत्रका नाम। ३ पीठस्थानविशेष। इस पीठस्थानमें देवीका नाम महोत्पला है। (देवीभा॰ ७।३०।६४)

हिरण्याङ्ग (सं॰ पु॰) ऋषिभेद।

हिरण्याभीशु (सं॰ त्रि॰) हिरण्यमय प्रग्रहविशिष्ट।

हिरण्याश्व (सं॰ पु॰) तुलापुरुषादि सोलह महादानोंके अन्तर्गत एक दान। मत्स्यपुराण और हेमाद्रिके दानखण्डमें इस दानका विधान विस्तृत भावमें लिखा है। सोनेका घोड़ा बना कर तुलापुरुषके विधानानुसार उसे दान करना होता है। (मत्स्यपु॰ २८ अ॰)

हिरण्याश्वरथ (सं॰ पु॰) सोलह महादानोंमेंसे एक दान। मत्स्यपुराण और हेमाद्रिके दानखण्डमें लिखा है, कि सोनेका घोड़ा बना कर सोनेके बने हुए रथमें लगावे और तुलापुरुष-दानके विधानानुसार दान करे।

हिरण्यिन् (सं॰ त्रि॰) सुवर्णविशिष्ट, सोनेका।

हिरण्येशय (सं॰ पु॰) महापुरुष, विष्णु।

हिरण्येष्टका (सं॰ स्त्री॰) स्वर्ण द्वारा इष्टकाविशेष

हिरण्वत् (सं॰ पु॰) आग्नीध्रके पुत्र।

हिरदावल (हिं॰ पु॰) घोड़ेकी छातीकी भौंरी जो बड़ा भारी दोष मानी जाती है।

हिरन (हिं॰ पु॰) हरिन, मृग। हरिण देखो।

हिरनखुरी (हिं॰ स्त्री॰) बरसातमें उगनेवाली एक प्रकारकी लता या बेल। इसके पत्ते हिरनके खुरसे मिलते जुलते होते हैं।

हिरनौटा (हिं॰ पु॰) मृगशावक, हिरनका बच्चा।

हिरफत (अ॰ स्त्री॰) १ व्यवसाय, पेशा। २ दस्तकारी, हाथकी कारीगरी। ३ कलाकौशल, हुनर। ४ चालाकी, चतुराई। ५ धूर्त्तता, चालबाजी।

हिरफतबाज (फा॰ त्रि॰) धूर्त्त, चालबाज।

हिरमजी (अ० स्त्री०) लाल रंगकी एक प्रकारकी मिट्टी जिससे कपड़े, दीवार आदि रंगते हैं।

हिरमिजी (फा० स्त्री०) हिरमजी देखो।

हिरवा घास (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी सुगंधित घास। इसकी जड़मेंसे नीबूकी-सी सुगंध आती है और इससे सुगंधित तेल बनता है।

हिरहल—मन्द्राज विभागके बेल्लरी जिलेका एक शहर। यह अक्षा० १५° ०' ३०" उ० तथा देशा० ७६° ५४' पू०के मध्य अवस्थित है। बेल्लरीसे १२ मील दूर बङ्गलूर जानेके रास्ते पर यह बसा हुआ है। यहां एक पुराने दुर्गका खण्डहर दिखाई देता है। यह शहर कांसेके व्यवसायके लिये प्रसिद्ध है।

हिरा (सं० स्त्री०) रक्तनाड़ी या शिरा।

हिरात—१ अफगानिस्तानके पश्चिम सीमान्तवर्त्ती एक प्रदेश। यह अमीर द्वारा नियुक्त किये गये एक ऊंचे कर्मचारीके शासनाधीन है। इस प्रदेशमें ६ जिला हैं, यथा—घोरियान, सब्जवार, तढा, वकवा, कुरक और ओबे। पहले हिरात और कन्धारके मध्यस्थित फरा जिला भी इसी प्रदेशके अन्तर्गत था।

हिरातके उत्तरमें थार-विलायत् तथा फिरोजकोही, पूर्वमें ताइमुनीस और कंधार, दक्षिणमें लशजवैन तथा सिस्तान और पश्चिममें पारस्य और हरिरूद है। यहां जौकी अच्छी उपज होती है।

हिरातके अन्तर्गत हिरात उपत्यका नामक जो उपत्यका है वह बहुत उर्वरा तथा शस्यशाली है। हरिरूदनदी इस स्थानमें बह गई है। इस प्रदेशमें जमीनका उपसत्व दो प्रकारका हैं, खसोला और अरबाबी। खसोला सरकारी जमीन है और अरबाबी प्रजाकी।

२ हिरात प्रदेशका शासनकेन्द्र। यह हरिरूद नदीके बाएं किनारे एक उर्वर और अत्यन्त रमणीय स्थान पर अक्षा० ३४° २२' उ० तथा देशा० ६२° ८' पू०के मध्य अवस्थित है। समुद्रपृष्ठसे इस स्थानकी ऊंचाई २६५० फुट है। कन्धारसे हिरात ३६९ मील दूर पड़ता है। यह शहर समकोण समबाहु चतुर्भुजाकार हैं। उत्तर और दक्षिणकी ओर इसकी लंबाई १५०० गज तथा पश्चिम और पूर्वकी ओर १६०० गज है। शहर २५से २० फुट ऊंचे एक प्राचीन और गहरी खाईसे घिरा है। हिरातमें पांच सिंहद्वार हैं। प्रत्येकके सामने चार चार राजपथ शहरके भीतरसे जा कर उसके केन्द्रमें मिल गये हैं।

शहरमें जलका अच्छा प्रबंध है। अधिवासी बड़े मैले कुचेले रहते हैं, इस कारण शहर भी मैला कुचेला है। १५वीं सदीके शेष भागमें जुमा मसजिद बनाई गई है। यही यहांकी सबसे बड़ी और सुन्दर इमारत है। हिरातके अधिवासी अधिकांश सिया-सम्प्रदायभुक्त मुसलमान हैं। पारसिक, यहूदी, तातार आदि अन्यान्य जातिके लोग भी यहां कम नहीं हैं।

हिराती (हिं० पु०) १ हिरात नामक स्थान जो अफगानिस्तानके उत्तरमें है। हिरात देखो। २ एक जातिका घोड़ा। इसका डील-डौल औसत दर्जेका और हाथ पैर दोहरे होते हैं। यह गरमीमें नहीं थकता। ३ हिरातवासी।

हिराना (हिं० क्रि०) १ खो जाना, गायब होना। २ न रह जाना। ३ मिटना, दूर होना। ४ आश्चर्यसे अपनेको भूल जाना, हक्काबक्का होना। ५ भूल जाना, ध्यानमें न रहना। ६ खेतोंमें भेंड़ बकरी गाय आदि चौपाए रखना जिसमें उनकी लेंडी या गोबरसे खेतमें खाद हो जाय।

हिरावल (हिं० पु०) हरावल देखो।

हिरास (फा० स्त्री०) १ भय, त्रास। २ नैराश्य, नाउम्मेदी। ३ खिन्नता, रंज। (वि०) ४ निराश, हताश। ५ खिन्न, उदासीन।

हिरासत (अ० स्त्री०) १ पहरा, चौकी। २ कैद, नजरबंदी।

हिरासां (फा० वि०) १ निराश, नाउम्मेद। २ हिम्मत हारा हुआ, पस्त। ३ खिन्न, उदासीन।

हिरिशिप्र (सं० त्रि०) हरणशील हनु या दीप्तोष्णोषविशिष्ट।

हिरिश्मश्रु (सं० त्रि०) हिरण्यवर्ण श्मश्रुविशिष्ट, सुनहरी दाढ़ीवाला।

हिरिमत् (सं० पु०) हरिताश्व या पीला घोड़ा।

हिरिमश (सं० त्रि०) हरिद्वर्ण श्मश्रुविशिष्ट, भूरे रंगकी दाढ़ीवाला। (ऋक् १०।१०५।७)

हिरुक (सं० अव्य०) १ बिना। २ मध्य। ३ सामीप्य। ४ अधम।

हिरोदोतस—प्रसिद्ध पाश्चात्य ऐतिहासिक। हेलिकार्णेसस में लगभग ४८४ ई०सन्‌के पहले इनका जन्म हुआ। उस समय इनकी जन्मभूमि पारस्य-सम्राट्‌के अधीन थी। पनियासिस नामक इनके एक बहुत नजदीकी रिश्तेदार हेलिकार्णेससके राजा लिगदामिस द्वारा राजविद्रोहके संदेह पर पकड़े गये। पनियासिस उस समयके एक प्रसिद्ध महाकाव्य-रचयिता थे। उनके प्रभावका हिरोदोतस पर अच्छा असर पड़ा था। बचपनमें अन्यान्य ग्रीक लोगोंकी तरह हिरोदोतसने व्याकरण, शारीरिक व्यायाम और सङ्गीत सीखा था। अन्तमें उच्च भावमें जीवन यापन करनेका कोई सुयोग न पा कर इन्होंने साहित्यचर्चा आरम्भ कर दी। उस समय ग्रीसका साहित्य बहुत विस्तृत था। थोड़ी ही उमरमें हिरोदोतसने कुल पढ़ लिया था। इन्होंने एशिया-माइनर और ग्रीसके विभिन्न स्थानोंमें परिभ्रमण कर ऐतिहासिक तथ्य आविष्कार किया था। जब इनकी उमर २० वर्षकी हुई, तबसे वे घूमने लगे थे। वे सुसा और बाबिलन भी गये थे। शायद ४६० ई०के बाद वे मिश्रदेश आये। जब अत्याचारसे प्रपीड़ित हो हेलिकार्णेससीय लोगोंने बालेनडामिसको राज्यसे भगा दिया था; उसी समय हिरोदोतस अपने देश लौटे। परन्तु वहां अपनी पुस्तकका सम्यक् आदर न होनेके कारण इन्होंने ग्रीसमें रहनेका पक्का इरादा किया। ज्ञान और उन्नत साहित्य-चर्चामें उस समय एथेन्स पाश्चात्यजगत्‌में सर्वश्रेष्ठ था। वहां पर इस लेखकने अपने परिश्रम और प्रतिभाका उचित सम्मान पाया। परंतु एथेन्समें इनकी ऊंची आकांक्षा तृप्त न हुई। हिरोदोतस एथेन्सके विदेशी थे। साहित्यिक हैसियतसे सम्मान मिलने पर भी वे उस देशके नागरिकोंमें श्रेष्ठ सम्मान नहीं पा सकते थे। इस कारण जब पेरिक्लिसने इटलीमें 'थुरि' उपनिवेश बसानेका प्रस्ताव उठाया, तब हिरोदोतस नागरिक अधिकार पानेकी इच्छासे वहां जानेको तैयार हो गये।

थुरीमें हिरोदोतसने अपना शेष जीवन बिताया। वे आधुनिक इतिहासके जनक माने जाते हैं। ऐसा बड़ा इतिहास इनके पहले और कहीं भी नहीं लिखे गये हैं। इनकी भाषा मनोहारी, स्वाभाविक और गंभीर है।

हिर्स (अ० स्त्री०) १ लालच, लोभ। २ इच्छाका वेग, कामनाकी उमंग। ३ स्पर्द्धा, टीस।

हिलंदा (हिं० पु०) मोटा ताजा आदमी; तगड़ा आदमी।

हिलकोर (हिं० पु०) लहर, तरंग।

हिलकोरा (हिं० पु०) हिलकोर देखो।

हिलकोरना (हिं० क्रि०) जलको क्षुब्ध करना, पानीको हिला कर तरंगें उठाना।

हिलग (हिं० स्त्री०) १ संबंध, लगाव। २ प्रेम, लगन। ३ परिचय, हेलमेल।

हिलगत (हिं० स्त्री०) १ परचनेका भाव। २ आदत, टेव।

हिलगना (हिं० क्रि०) १ अटकना, टंगना। २ हिलमिल जाना। ३ परचना। ४ पास होना, सटना।

हिलगाना (हिं० क्रि०) १ अटकाना, टांगना। २ फंसाना, बझाना। ३ घनिष्ठता स्थापित करना, मेलजोलमें करना। ४ परिचित और अनुरक्त करना, परचाना।

हिलना (हिं० क्रि०) १ चलायमान होना, डोलना। २ अपने स्थानसे टलना, सरकना। ३ खूब जम कर बैठा न रहना, ढीला होना। ४ कम्पित होना, थरथराना। ५ प्रवेश करना, घुसना। ६ झूमना, लहराना।

हिलमुची (सं० स्त्री०) हिलमोचिका नामक शाक।

हिलमोचि (सं० स्त्री०) हिलमोचिका।

हिलमोचिका (सं० स्त्री०) शाकविशेष। इसका गुण शोथ, कुष्ठ, कफ और पित्तनाशक होता है। जिसका धातु पित्तप्रधान है, वह यदि इस शाकका सेवन करे, तो उसका पित्त-विकार दूर होता है।

हिलमोची (सं० स्त्री०) हिलमोचिका।

हिलसा (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी मछली जो चिपटी और कांटेदार होती है।

हिलाना (हिं० क्रि०) १ चलायमान करना, डुलाना। २ स्थानसे उठाना, टालना। ३ नीचे ऊपर या इधर उधर डुलाना, झुलाना। ४ कंपित करना, कपाना। ५ परिचित और अनुरक्त करना, परचाना। ६ प्रवेश कराना, घुसाना।

हिलोर (हिं० पु०) हवाके झोंके आदिसे जलका उठना और गिरना, तरंग, लहर।

हिलोरा (हिं० पु०) हिलोर देखो।

हिलोरना (हिं० क्रि०) १ जलको क्षुब्ध और तरंगित करना, पानीको इस प्रकार हिलाना कि लहरें उठें। २ लहराना, इधर उधर हिलाना डुलाना।

हिलोल (हिं० पु०) हिल्लोल देखो।

हिल्ल (सं० पु०) शरारि पक्षी।

हिल्लाज (सं० पु०) प्रसिद्ध ज्योतिर्विद्। इन्होंने पारसिक-फलित ज्योतिषके अनेक विषय संस्कृत भाषामें प्रकाशित किये हैं।

हिल्लोल (सं० पु०) १ तरङ्ग, लहर। २ आनन्दकी तरङ्ग, मौज। ३ सोलह प्रकारके रतिबंधोंमेंसे आठवां रतिबन्ध।

"हृदि कृत्वा स्त्रियाः पादौ कराभ्यां धारयेत् करौ।
यथेष्टं ताड़येद्योनिं बन्धो हिल्लोलसंज्ञकः॥" (रतिमञ्जरी)

४ एक रागका नाम, हिंडोल।

हिल्लोलन (सं० पु०) १ तरंग उठना, लहराना। २ दोलन, झूलना।

हिवं (हिं० पु०) वर्फ, पाला।

हिवाँर (हिं० पु०) वर्फ, पाला।

हिबुक (सं० क्ली०) ज्योतिषके मतसे लग्न या राशिसे चौथा स्थान।

हिस (अ० पु०) १ अनुभव, ज्ञान। २ संज्ञा, होश।

हिसका (हिं० पु०) १ ईर्ष्या, डाह। २ स्पर्द्धा, देखादेखी किसी बातकी इच्छा। ३ किसीकी बराबरी करनेकी हवस।

हिसाब (अ० पु०) १ गणित, लेखा। २ लेन देन या आमदनी खर्च आदिका लिखा हुआ ब्योरा, लेखा। ३ गणितविद्या, वह विद्या जिसके द्वारा संख्या मान आदि निर्धारित हो। ४ गणितविद्याका प्रश्न, गणितकी समस्या। ५ प्रत्येक वस्तु या निर्दिष्ट संख्या या परिमाणका मूल्य जिसके अनुसार कोई वस्तु बेची जाय, भाव, दर। ६ निर्णय, निश्चय। ७ नियम, कायदा। ८ दशा, अवस्था। ९ व्यवहार, चाल। १० ढंग, रीति। ११ मितव्यय, किफायत। १२ हृदय या प्रकृतिकी परस्पर अनुकूलता, मेल।

हिसाबकिताब (अ० पु०) १ वस्तु या धनकी संख्या, आय, व्यय आदिका लेखबद्ध विवरण, लेखा। २ ढंग, रीति।

हिसाबचोर (हिं० पु०) वह जो व्यवहार या लेखेमें कुल रकम दबा लेता हो।

हिसाब-बही (हिं० स्त्री०) वह पुस्तक जिसमें आय-व्यय या लेनदेन आदिका ब्यौरा लिखा जाता हो।

हिसार (हिस्सार)—पञ्जाबके दिल्ली विभागका एक जिला। यह अक्षा० २८° ३६′ से ७६° ३०′ उ० तथा देशा० ७४° २६′ से ७६° २०′ पू० के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ५२१७ वर्गमील है। इसके उत्तरमें फिरोजपुर जिला और पतियाला राज्य, पूरबमें झिन्द निज़ामत और रोहतक जिला, दक्षिणमें दादरी निज़ामत और दक्षिण-पश्चिममें बीकानेर मरुभूमि है। हिसार शहर इस जिलेका सदर है।

यह जिला बीकानेर राज्यकी विशाल मरुभूमिका पूर्वी प्रान्त है। अधिकांश स्थान बलुई समतल क्षेत्र है, बीच बीचमें छोटा टीला और बालूका पहाड़ दिखाई देता है जिसकी चोटी ८०० फुट होगी। यहांकी नदियोंमें घागर नदी प्रधान है। ग्रीष्मके समय जब वह सूख जाती है, तब स्थानवासी नदीकी नीची भूमिमें जौ, मक्का आदि अनाज उपजाते हैं। सम्राट् फिरोजशाह तुगलकने इस जिलेके पूर्वसे ले कर पश्चिम तक एक बड़ी खाई खोदवाई थी। यह खाई २४ ग्राम हो कर चली गई थी, परन्तु पश्चिममें बीकानेर मरुभूमिमें जा कर इसका जल सूख गया था, इस कारण वृटिश सरकारने इसका पुनः संस्कार कराया है। आजकल यह पश्चिम-यमुना-खाल (Western-Jumna Canal) नामसे मशहूर है। वृष्टि होने पर यहां काफी अनाज उत्पन्न होता है।

मुसलमानी अमलके पहले होसे यह जिला चौहान राजपूतोंके रहनेका निरापद स्थान था। हांसी उस समय जिलेकी राजधानी थी। फिरोज शाह तुगलकने हिस्सारको बसाया। नादिरशाह और सिखोंके आक्रमणसे इस जिलेमें अराजकता फैल गई। मराठोंका वेतनभोगी एक आइरिश सेनानायक यहांका शासन करना चाहता था, पर फरासीसेनापति पिरोंने उसे परास्त कर यह स्थान दखल कर लिया।

१८०३ ई०में हिस्सार वृटिश गवर्मेण्टके दखलमें आया। सिपाही-विद्रोहके समय यहांके अधिवासी विद्रोहीदलमें मिल गये थे। पीछे हिस्सार जिला पञ्जाबके छोटे लाटके शासनाधीन हुआ।

इस जिलेमें ८ शहर और ९६४ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ८ लाखके करीब है। हिन्दूकी संख्या सैकड़े पीछे ७० है। विद्याशिक्षामें इस प्रदेशके अट्ठाईस जिलोंमेंसे इस जिलेका स्थान चौबीसवां पड़ता है। अभी ८ सिकेण्ड्री, ८० प्राइमरी और ५० एलिमेण्ट्री स्कूल हैं। स्कूलके अलावा ८ चिकित्सालय और एक बड़ा जेल है। विशेष विवरण हरियाना शब्दमें देखो।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २८° ५४′से २९° ३२′ उ० तथा देशा० ८५° २२′से ७६° २′ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या डेढ़ लाखके लगभग है।

३ उक्त जिलेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २९° १०′ उ० तथा देशा० ७५° ४४′ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या २० हजारके करीब है। १३५६ ई०में फिरोजशाह तुगलकने इस शहरको बसाया। उसने जलका अभाव दूर करनेके लिये नहर कटवाई थी। उसके समय यह शहर बहुत उन्नत था। पूर्व समृद्धिके चिह्नस्वरूप बहुतसे पुराने मन्दिरों और मसजिदोंका खंडहर दिखाई देता है। १८वीं सदीमें बार बार सिखोंके आक्रमण और दुर्भिक्षसे शहर उजाड़-सा हो गया। १७९९ ई०में आइरिश-कर्मचारी जार्ज टामसने इसका पुनः संस्कार किया। १८६७ ई०में यहां म्युनिस्पलिटी स्थापित हुई है। शहरमें एक ऐङ्गलो-वर्नाक्युलर हाई-स्कूल और सिविल अस्पताल है।

हिसार (फा० पु०) पारसी-संगीतको २४ शोभाओंमेंसे एक।

हिस्टीरिया (अं० पु०) मूर्च्छा रोग जो प्रधानतः स्त्रियोंको होता है।

हिस्सा (अ० पु०) १ भाग, अंश। २ टुकड़ा, खंड। ३ उतना अंश जितना प्रत्येकको विभाग करने पर मिले, बखरा। ४ विभाग, तकसीम। ५ किसी बड़ी या विस्तृत वस्तुके अन्तर्गत कुछ वस्तु या अंश, अधिकके भीतरका कोई खंड या टुकड़ा। ६ विभाग, खंड। ७ किसी व्यवसायके हानि-लाभमें योग, साझा।

हिस्सेदार (फा० पु०) १ किसी वस्तुके किसी भाग पर अधिकार रखनेवाला, वह जिसे कुछ हिस्सा मिला हो। २ रोजगारमें शरीक, साझेदार।

हिहि (सं० अव्य०) १ आह्लादसूचक शब्द, हास्य शब्द। २ एक गंधर्वका नाम।

हिहिनाना (हिं० क्रि०) घोड़ोंका बोलना, हिनहिनाना।

हींग (हिं० स्त्री०) एक छोटे पौधेका जमाया हुआ दूध या गोंद जिसमें बड़ी तीक्ष्ण गंध होती है और नित्यके मसालेमें बघारके लिये होता है। विशेष विवरण हिङ्गु शब्दमें देखो।

हींगड़ा (हिं० पु०) एक प्रकारकी घटिया हींग।

हींठी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी जोंक।

हींस (हिं० स्त्री०) घोड़े या गधेके बोलनेका शब्द, रेंक या हिनहिनाहट।

हींसना (हिं० क्रि०) १ घोड़ेका बोलना, हिनहिनाना। २ गदहेका बोलना, रेंकना।

हींहीं (हिं० स्त्री०) हंसनेका शब्द।

ही (सं० अव्य०) १ एक अव्यय जिसका व्यवहार जोर देनेके लिये या निश्चय, अनन्यता, अल्पता, परिमिति तथा स्वीकृति आदि सूचित करनेके लिये होता है। २ विस्मय। ३ दुःख। ४ हेतु। ५ विषाद, शोक।

हीक (हिं० स्त्री०) १ हिचकी। २ हलकी अरुचिकर गंध।

हीज (हिं० वि०) आलसी, मट्ठर।

हीठना (हिं० स्त्री०) १ समीप होना, पास जाना। २ जाना, पहुंचाना।

हीन (सं० त्रि०) १ परित्यक्त, छोड़ा हुआ। २ शून्य, वंचित। ३ निकृष्ट, घटिया। ४ नीच, बुरा ५ तुच्छ, नाचीज। ६ सुख समृद्धि रहित, दीन। ७ अल्प, कम। (पु०) ८ प्रमाणके अयोग्य साक्षी। व्यवहारतत्वमें लिखा है, कि अन्यवादी, क्रियाद्वेषी, नोपस्थायी, निरुत्तर और आहूतप्रपलायी, इन पांच प्रतिवादीको हीन कहते हैं। ९ अधम नायक।

हीनक (सं० त्रि०) हीन देखो।

हीनकर्ण (सं० पु०) कर्णबन्धनाकृति। (सुश्रुतसूत्र १६)

हीनकर्मा (सं० त्रि०) १ यज्ञादि विधेय कर्मसे रहित, अपना निर्दिष्ट कर्म या आचार न करनेवाला। २ निकृष्ट कर्म करनेवाले, बुरा काम करनेवाला।

हीनकुल (सं० त्रि०) बुरे या नीच कुलका, नीचे खानदानका।

हीनक्रम (सं० पु०) काव्यमें एक दोष। यह दोष उस स्थान पर माना जाता है जहां जिस क्रमसे गुण गिनाये गये हों, उसी क्रमसे गुणी न गिनाये जाय।

हीनकुष्ठ (सं० क्ली०) क्षुद्र कुष्ठ, खराब कोढ।

हीनचरित (सं० त्रि०) जिसका आचरण बुरा हो।

हीनज (सं० त्रि०) जो नीच जातिसे उत्पन्न हुआ हो।

हीनजाति (सं० त्रि०) नीच वर्ण, नीचजाति।

हीनतस् (सं० अव्य०) हीनसे या हीन द्वारा।

हीनता (सं० स्त्री०) १ अभाव, कमी। २ क्षुद्रता, तुच्छता। ३ ओछापन। ४ निकृष्टता, बुराई।

हीनत्व (सं० पु०) हीनता।

हीनदग्ध (सं० त्रि०) अल्प दग्ध, थोड़ा जला हुआ।

हीनपक्ष (सं० पु०) १ गिरा हुआ पक्ष, ऐसी बात जो दलीलोंसे साबित न हो सके। २ कमजोर मुकदमा।

हीनबल (सं० त्रि०) शक्तिरहित, कमजोर।

हीनबाहु (सं० पु०) शिवके एक गणका नाम।

हीनबुद्धि (सं० त्रि०) बुद्धिशून्य, जड़, मूर्ख।

हीनमति (सं० त्रि०) जड़, मूर्ख।

हीनमूल्य (सं० पु०) कम दाम।

हीनयान (सं० क्ली०) बौद्ध सम्प्रदायभेद। भगवान बुद्ध-प्रवर्त्तित आदि धर्ममतावलम्बीगण पहले श्रावकयान और प्रत्येकबुद्धयान नामसे प्रसिद्ध थे। उन लोगोंके मतसे केवल वे ही लोग निर्वाणलाभके अधिकारी हैं जिन्होंने भगवान् बुद्ध तथा उनके शिष्यानुशिष्योंके मुखसे धर्मोपदेश सुना है। आगे चल कर कुछ बौद्धाचार्योंने यह घोषणा कर दी, कि सारा संसार निर्वाणलाभके अधिकारी हैं, सभी इस निर्वाणधर्ममें दीक्षित हो सकते हैं। इस महोद्देश्यके कारण वे लोग 'महायान' तथा हीन या सङ्कीर्ण गण्डीके मध्य निर्वाण तत्त्वको सीमाबद्ध रखनेके कारण पूर्वोक्त आदि बौद्ध-सम्प्रदायगण 'हीनयान' कहलाये। सम्राट् कनिष्कके समय बौद्धसमाजमें हीनयान और महायान ये दो प्रधान विभाग हुए थे। बौद्ध देखो।

इस शाखाका प्रचार एशियाके दक्षिण भागोंमें अर्थात् सिंहल, बरमा और श्याम आदि देशोंमें है, इसीसे यह दक्षिण शाखाके नामसे भी प्रसिद्ध है। 'यान'का अर्थ है निर्वाण या मोक्षकी ओर ले जानेवाला रथ। हीनयानके सिद्धान्त उसी सीधे सादे रूपमें हैं, जिस रूपमें गौतम बुद्धने उनका उपदेश किया था। पीछे 'महायान' शाखामें न्याय, तंत्र आदि बहुतसे विषयोंके सम्मिलित होनेसे जटिलता आ गई। वैदिक धर्मानुयायी नैयायिकोंके साथ खंडन मंडनमें प्रवृत्त होनेवाले बौद्ध महायान शाखाके थे जो क्षणिकवाद आदि सिद्धान्तों पर बहुत जोर देते थे। आराधना और उपासनाका तत्त्व न रहनेसे जनसाधारणके लिये रूखा था; इससे 'महायान शाखा'के बहुत अनुयायी हुए। जो बुद्ध, बोधिसत्त्वों, बुद्धिकी शक्तियोंकी 'महाविद्याएं' हैं, आदिके अनुग्रहके लिये पूजा और उपासनामें प्रवृत्त रहने लगे। 'हीनयान' का यह अर्थ लिया गया, कि उसमें बहुत कम लोगोंके लिये जगह है।

हीनयोग (सं० त्रि०) १ योगभ्रष्ट। (पु०) २ उचित परिमाणसे कम ओषधि मिलाना।

हीनयोनि (सं० त्रि०) नीच जातिका, जिसकी उत्पत्ति अच्छे कुलमें न हो।

हीनरस (सं० पु०) काव्यमें एक दोष। यह किसी रसका वर्णन करते समय उस रसके विरुद्ध प्रसङ्ग लानेसे होता है।

हीनरात्र (सं० त्रि०) जो रात्रिमें नहीं रहती और यदि रहती भी है तो थोड़ी, ऐसी तिथि।

हीनरोमन् (सं० त्रि०) लोमहीन या अल्प लोमयुक्त।

हीनवर्ण (सं० पु०) नीच जाति या वर्ण।

हीनवाद (सं० पु०) १ मिथ्या तर्क, फजूलकी बहस। २ मिथ्या साक्ष्य, झूठी गवाही जिसमें पूर्वापर विरोध हो।

हीनवादी (सं० त्रि०) १ मूक, गूंगा। २ विरुद्धवादी, खिलाफ बयान करनेवाला। ३ जिसका लाया हुआ अभियोग गिर गया हो, जो मुकदमा हार जाय।

हीनवीर्य (सं० त्रि०) हीनबल, कमजोर।

हीनसख्य (सं० क्ली०) नोचके साथ मित्रता।

हीन-हयात (अ० पु०) १ जीवनकाल, वह समय जिसमें कोई जीता रहा हो।

हीनाङ्ग (सं० त्रि०) १ खण्डित अंगवाला, जिसके कोई अंग न हो। २ जो सर्वाङ्गपूर न हो, अधूरा।

हीनाङ्गी (सं० स्त्री०) क्षुद्र पिपीलिका, छोटी च्युंटी। अङ्गहीना स्त्री।

हीनार्थ (सं० त्रि०) १ अर्थहीन, जिसका कोई अर्थ न हो। २ विफल, जिसका कार्य्य सिद्ध न हुआ हो। ३ जिसे लाभ न हुआ हो।

हीनोपमा (सं० स्त्री०) काव्यमें वह उपमा जिसमें बड़े उपमेयके लिये छोटा उपमान लाया जाय, बड़ेको छोटे-से उपमा।

हीयमान (सं० त्रि०) ह्रास होना।

हीर (हिं० पु०) १ इन्द्रका वज्र। २ शिव। ३ वज्र। ४ मोतीकी माला। ५ सर्प, सांप। ६ सिंह। ७ श्रीहर्षके पिता। श्रीहर्षने नैषधकाव्यमें लिखा है, कि श्रीहीर उनके पिता और मामल्लदेवी माता थी। ८ छप्पयके ६२वें भेदका नाम। ९ एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें भगण, सगण, नगण, जगण, नगण और रगण होते हैं। १० एक मात्रिक छन्द। इसमें ६, ६ और ११ के विरामसे २३ मात्राएं होती हैं।

हीर (सं० पु०) १ सार, गूदा। २ शक्ति, बल। ३ वीर्य्य, धातु। ४ लकड़ीके भीतरका सार भाग जो छालके नीचे होता है।

हीरक (सं० पु० क्ली०) हीर स्वार्थे कन्। रत्नविशेष, हीरा। पर्याय—वज्र, हीर, दधीच्यस्थि, वज्रक, सूचीमुख, वराटक, रत्नमुख, वज्रपर्याय। विराट देशीय हीरकके पर्याय—विराटज, राजपट्ट, राजावर्त्त। गुण—सारक, शीतल, कषाय, स्वादु, कान्तिकारक, चक्षुका हितकर, पहननेसे पाप और अलक्ष्मीनाशक।

यह एक प्रकारका खनिज पदार्थ है। आर्य्यशास्त्रमें हीरेको वज्रमणि और सभी रत्नोंमें श्रेष्ठ कहा है। हिमालय प्रदेशके मातङ्ग (पम्पा नदीके तटवर्त्ती प्रदेश) जनपदमें, पौण्ड्रराज्यके रङ्गपुर, दिनाजपुर, राजशाही, वीरभूम, मुर्शिदाबाद, वर्द्धमान, मेदिनीपुर आदि स्थानोंमें ; कलिङ्गदेशमें अर्थात् उड़ीसा और द्राविड़देशके मध्यगत स्थानोंमें, अयोध्याके निकटवर्त्ती भूभागमें, महाराष्ट्रके अन्तर्गत वेण्वा नदीके किनारे, सौवीर अर्थात् सिन्धु और शतद्रु नदके मध्यवर्त्ती प्रदेशमें हीरा पाया जाता है। स्थलविशेषमें जलवायुकी विशेषताके कारण हीरककी भी वर्णपृथक्ता होती है। हिमालय पर्वतका हीरक कुछ ताम्रवर्ण, वेण्वानदीके किनारेका चन्द्रमाके समान निर्मल शुक्लवर्ण, सौवीरका श्वेतपद्म या शुभ्र मेघसदृश, सौराष्ट्रका ताम्रवर्ण, कलिङ्गराज्यका सुवर्णवर्ण, कोशलका पीतवर्ण, पौण्ड्रराज्यका श्यामवर्ण और मातङ्गप्रदेशका हीरक पीतवर्ण होता है।

साधारणतः हरित्, शुक्ल, पीत, पिङ्गल, ताम्रवत् कुछ लोहित् और श्यामवर्णका हीरक देखनेमें आता है। उनके अधिष्ठात्री देवता यथाक्रम नारायण, वरुण, इन्द्र, अग्नि, यम और वायु हैं। ऊपर कहे गये छः प्रकारके हीरोंमें जवाकुसुम अथवा मूंगेकी तरह लाल और हल्दी-रसकी तरह पीला हीरा ही राजाओंका शुभजनक है। वज्रपरीक्षकोंने मनुष्यकी तरह हीरकके भी ब्राह्मणादि जातिभेद स्थिर किये हैं। शङ्ख, कुमुदपुष्प या स्फटिकके समान सफेद हीरा विप्रजाति ; खरहेकी आंख जैसा लाल हीरा क्षत्रियजाति ; चिकने, केलेकी तरहकी फीका वैश्यजाति और परिष्कृत तलवार जैसा सांवला हीरा शूद्रजातिका माना जाता है। पूर्वोक्त चार वर्णोंको हीरक जाति भिन्न भिन्न गुणवाली होती है अर्थात् उसे धारण करनेसे विशेष विशेष फल होता है।

षट्कोण, अष्टपार्श्व, द्वादशधार, उत्तुङ्ग, समान और तीक्ष्णाग्र आदि गुण हीरकके स्वभावसिद्ध हैं। रत्नविदोंने हीरकके षट्कोणत्व, लघुत्व, समान अष्टदलत्व, तीक्ष्णाग्रत्व और निर्मलत्व ये पांच गुण ; मल, विन्दु, रेखा, त्रास और काकपद आदि पांच दोष तथा वर्णके हिसाबसे श्वेत, रक्त, पोत और कृष्णवर्णकी छायाको स्थिर किया है। दोषयुक्त हीरक निन्दित है। उसके धारण करनेसे पुत्रनाश, बंधुनाश, वित्तनाश आदि अनेक प्रकारके अमङ्गल होते हैं। छायाहीन हीरक विपदका हेतु, मलिनहीरक शोकजनक, कर्कश हीरक दुःखदायक, रेखा

काकपद और विन्दुयुक्त हीरक मृत्युका निदान, इत्यादि माना गया है।

अग्निपुराणके मतसे दो दलवाला हीरक कलहका कारण, तीन दलवाला सुखनाशक, चार दलवाला सुखदायक, पांच दलवाला शोकजनक, छः दलवाला राजभयका निदान, मृत्युका कारण और आठ दलवाला अत्यन्त विशुद्ध है। दूसरेके मतसे त्रिकोण हीरक कलहवर्द्धक, चतुष्कोण मृत्युजनक और षट्कोण मङ्गलमय है। इस कारण षट्कोण, अष्टदल, अभेद्य, निर्मल, निर्दोष, सुपार्श्व, उत्तमवर्ण, लघु, जलमें तैरनेवाला, सूर्यकी किरण पड़नेसे इन्द्रधनुषके समान प्रकाश देनेवाला और तेज नोकवाला हीरक सबसे उमदा कहा गया है। जो हीरा गरम जल, दूध, तेल या घृतमें डालनेसे उसी समय उन वस्तुओंकी गरमी दूर हो जाती है वह देवदुर्लभ है। जो कोटि सूर्यके समान प्रकाशवान्, पर चन्द्रमाके समान शीतल होता है वह सर्वश्रेष्ठ है। उसके पहनते ही रोग भाग जाते हैं। जो हीरा जलसे उत्पन्न हुआ हो, जिसका वर्ण दूबके ऊपर गिरे हुए जलविन्दु जैसा स्वच्छ हो और जिसका वजन एक तोला हो, उस हीरेका मूल्य एक करोड़ रुपया होगा। भग्नकोण तथा विन्दुरेखा और वैवर्णयुक्त दूषित हीरकसे यदि इन्द्रधनुषकी प्रभा निकलती हो, तो उसके पहननेसे सुखसम्पत्ति, धनधान्य और सन्तानसंतति प्राप्त होती है।

पृथिवी पर जितने प्रकारके रत्न और लौहादि कठिन पदार्थ हैं उन सबों पर हीरेसे दाग दिया जा सकता है, पर ऐसी एक भी धातु नहीं जो हीरेके ऊपर घिसनेसे दाग देवे। अकृत्रिम हीरेसे कृत्रिम हीरा अंकित होता है। असल हीरा कुरुविन्द अथवा हीरेसे ही अंकित होता है, दूसरी किसी भी वस्तुसे नहीं। लौह, पद्मराग, गोमेद, वैदुर्य, स्फटिक और विभिन्न वर्णके कांचसे सुनिपुण शिल्पी कृत्रिम हीरक बनाते हैं। क्षार लगाने, शाण अथवा घिसनेसे हीरेकी परीक्षा सहजमें की जा सकती है। जो हीरा क्षार लगानेसे चूर्ण और घिसनेसे क्षयको प्राप्त हो जाय वही कृत्रिम है। क्षारयुक्त अम्ल हीरकमें लेप कर धूपमें सुखावे, पीछे उसे धो डाले। यदि उसका रंग बदल जाय, तो उसे कृत्रिम हीरा जानना चाहिये। जो असल हीरा है, उसका रंग कदापि नहीं बदलता, वरन् पहलेसे और भी साफ हो उठता है।

इस रत्नका अधिष्ठात्री देवता शुक्र है। ज्योतिःशास्त्रमें लिखा है, कि शुक्रग्रह यदि अत्यन्त विगुण हो तो हीरक धारण करनेसे शुभ फल होता है। रत्न धारण करना सबोंके लिये नहीं कहा गया है। जो इसके योग्य हैं, वे ही धारण कर सकते हैं।

वैद्यकशास्त्रमें लिखा है, कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके भेदसे हीरककी चार जाति हैं। इनमेंसे शुभ्रवर्णका हीरक ब्राह्मण जातिका, रक्तवर्ण हीरक क्षत्रिय जाति, पीतवर्ण हीरक वैश्य जाति और कृष्णवर्ण हीरक शूद्र जातिका है। शुभ्रवर्ण हीरक रसायन कार्यमें उत्तम और सभी क्रियाओंका सिद्धिदायक है। रक्तवर्ण हीरक रोगनाशक, जरा और अकालमृत्युनाशक; पीतवर्ण हीरक सम्पत्तिप्रदायक और शरीरकी दृढ़ता सम्पादक, कृष्णवर्ण हीरक रोगनाशक और वयःस्थापक है। ये चारों जातिके हीरक पु०, स्त्री० और नपुंसकके भेदसे तीन प्रकारके हैं। उनमेंसे जो हीरक सुन्दर गोलाकार, ज्योतिर्मय, रेखा और विन्दुहीन होता है उसे पुंजाति, रेखा या विन्दुयुक्त और षट्कोण हीरकको स्त्री जाति तथा त्रिकोण और दीर्घ हीरकको नपुंसक जाति कहते हैं। औषधमें प्रयोग करते समय इसे शोध लेना होता है। शोधित या मारित हीरकका सेवन करनेसे परमायु वृद्धि, शरीरपुष्टि, बल, वीर्य, वर्ण और सुखवृद्धि तथा समस्त रोग विनष्ट होता है।

कण्टकारी या भटकटैयामें हीरा रख कर कोदों धानके काढ़े और कुलथी कलायके काढ़ेमें ७ दिन दोलायन्त्रमें पाक करे। पीछे उसे घोड़ेके मूत और थूहरके दूधसे सींचे। इसी नियमसे हीरा शोधित होता है।

हीराभस्म—तीन वर्षकी पुरानी कपासकी जड़को पुराने पानके रसमें पीस कर उसमें हीरा रख सात बार गजपुट देनेसे हीराभस्म होता है।

अशुद्ध हीरेका औषधमें व्यवहार करनेसे उससे कुष्ठ, पार्श्ववेदना, पाण्डुरोग और पङ्गुता होती है, इस कारण पहले हीरेको शोधन कर पीछे उसका व्यवहार करना ही कर्त्तव्य है। हीरकभस्मसे जो सब औषध

बनाई जाती है वह अमृतसदृश है। उस औषधका सेवन करनेसे शरीर रोगरहित हो कर वज्रके सदृश सबल हो जाता है। हीरकभस्मचूर्ण श्लेष्मानाशक है।

प्राच्य और प्रतीच्य-जगत्‌के प्राचीन लोग एक स्वरसे स्वीकार करते हैं, कि भारत ही हीरेका आदि आकर या खान है। इस भारतभूमिसे ही प्राचीन काल-में सुदूर यूरोपके पश्चिम प्रान्तमें हीरा लाया जाता था। ड्रोनीसियसपेरि एगेटिसके वर्णनसे हमें मालूम होता है, कि भारतवासी नदीके जलमेंसे हीरकमणि निकालते थे। महम्मद बिन-मनसुरने लिखा है, कि भारतके पूरबमें हीरककी खान है। भारतसे जो हीरक उत्पन्न हो कर यूरोप और पारस्यमें बेचनेको लाया जाता था, यह उन्हें अच्छी तरह मालूम था। कहते हैं, कि माकिदनबीर अलेकसन्दर लोगोंके मुखसे जुलमिया शैलशिखर परकी हीरकमण्डित उपत्यकाका हाल सुन कर वहां गये थे। शैलशृङ्ग पर चढ़ कर उन्होंने देखा, कि वहां मनुष्योंका जाना बिलकुल कठिन है। इसलिये उन्होंने अपने अनु-चरोंसे कहा, कि तुम लोग जिस उपायसे हो कुछ पशुओं-की हत्या कर यहां फौरन फेंक दो। अनुचरोंने वैसा ही किया। गिद्ध पक्षी मांसके साथ साथ उसमें लगे हुए हीरेके टूकड़ेको भी निगल गये थे। उन पक्षियोंने पीछे जहां जहां मल त्याग किया, वहां वहां हीरे पाये गये। १३वीं सदीमें भारत पर भ्रमण करनेवाले मार्को-पोलोने इसी प्रकार एक किंवदन्तीमें हीरकोत्पत्तिका विवरण प्रकाशित किया है। १७वीं सदीमें भारत-भ्रमण-कारी पाश्चात्य वणिक् जिनवाप्तिस्ते टावार्नियर स्वयं भारतमें हीरेकी खान देख गये हैं। उनके विव-रणमें लिखा है, कि गोलकुण्डासे ५ दिन और विशा-पुरसे ८-६ दिनके रास्ते पर अवस्थित रावलकोण्डा नामक स्थानमें तथा कोलुर और सम्बलपुरमें हीरेकी खान है। दुःखका विषय है, कि उन्होंने भारतके चिरप्रसिद्ध गोलकुण्डाकी हीरेकी खानको नहीं देखा। १६२२ ई०में मेथोल्ड नामक किसी यूरोपीयने सबसे पहले गोलकुंडे-में हीरेकी खान देखी थी।

कार्लेरीदर भारतमें हीरे मिलनेवाले प्रदेशोंकी खबर बलि देख कर उन्हें पांच विभिन्न श्रेणियोंमें विभक्त कर गये हैं। यथा—

१म—कड़ापा श्रेणी। यह पेन्नर नदीके किनारे अवस्थित है। यहांका हीरा बहुत उमदा होता है।

२य नन्दियाल श्रेणी—यह पेन्नर और कृष्णा नदीके मध्यवर्त्ती बङ्गपल्लीके निकट अवस्थित है। यह हीरक साधारणतः दो मुंहवाला है।

३य—इलोरा श्रेणी, यही निम्नकृष्णा या गोलकुण्डा क्षेत्र नामसे प्रसिद्ध है। सच पूछिये तो गोलकुंडामें कोई खान नहीं है। कृष्णा और पेन्नर नदीके पास गोलमूल नामक शैलशिखरके नीचे हीरेकी खान है। वहीं पहले अपरिष्कृत अवस्थामें गोलकुंडा ला कर परिष्कार किया और काटा जाता था। इस कारण उस समय गोलकुंडा राजधानीमें हीरेका कारबार खोला गया था। भ्रमणकारी टावर्नियरने जिस रावलकुंडा खानको देखा था, वह कृष्णा नदीकी मध्य प्रशाखाके पास अवस्थित थी। उस खानमें 'ग्रेट मुगल' नामक हीरेके खण्ड पाये गये थे।

४र्थ सम्बलपुरश्रेणी—गोदावरी नदीके उत्तर और महानदीकी मध्य शाखाके बहुत नजदीक यह विस्तीर्ण हीरकक्षेत्र अवस्थित है।

५म पन्नाश्रेणी—बुन्देलखण्डके मध्य सोनार और शोननदीके मध्यस्थलमें अवस्थित है। यहांका हीरा साधारणतः चार भागोंमें विभक्त है,—१ मोतीचूड़—यह उज्ज्वल और स्वच्छ होता है, माणिक—कुछ बादामी रंगका, ३ पन्ना—फीका कमला नीबू जैसा और ४ बांस-पात—गाढ़े आसमानी रंगका।

भारतवर्षके सिवा साइबेरिया, ब्रेजिल, दक्षिण अफ्रिका, अष्ट्रेलिया, बोर्णियो, सुमात्रा, यवद्वीप और सिलेबिस द्वीपोंमें जमीनके अंदर हीरेकी खान पाई जाती है।

१८४० ई०में मूसो हेरिकोर्ट डि-थुरिने फरासी राज्यके Academie des Sciences नामक विद्यालयमें एक हीरेका खण्ड देखा था जो दक्षिण अफ्रिकाके अलजेरियाके अन्त-र्गत कुस्तुनतुनिया प्रदेशमें गोमेल नदीके किनारे मिला था। दक्षिण अफ्रिकाका 'Cape diamond' नामक प्रसिद्ध

करी। शाहजादा कामरान बड़ा उच्चाभिलाषी था। उसने अफगानिस्तानमें अपना प्रभुत्व स्थापन किया। बाबरने मृत्युकालमें हुमायूंको बुला कर कहा, 'बेटा! यदि मेरे मरने पर ईश्वर तुम्हींको मेरा उत्तराधिकारी बनावें, तो मृत्युशय्या पर मेरा तुमसे अनुरोध है, कि तुम अपने भाइयोंके प्रति दया रखना।' दयालु हुमायूनने उस पितृ वाक्यका अक्षरशः पालन किया। भाईके बुरे व्यवहार पर वे जरा भी नहीं उकताये, वरन् यह कह कर उन्होंने झगड़ा निबटा लिया, कि वे उसीको अफगानिस्तानका शासनकर्त्ता बनायेंगे। परन्तु इसमें उन्हें बड़ी हानि उठानी पड़ी थी। कामरानके साथ जो बहुत दिनोंसे अनबन चली आ रही थी, उसे मिटा कर उन्होंने हिन्दालको सम्भूले प्रदेशका और असकरीको मेरठका शासनकर्त्ता बनाया। इतना करने पर भी हुमायून् घर झगड़ेकी आग बुझा न सके। भीतर ही भीतर इन्हें तख्त परसे उतारने अथवा इनकी जान लेनेका षड़यन्त्र चल रहा था। भाग्यवशतः यह बात हुमायूनको मालूम हो गई और उस धूर्तने भाग कर गुजरातके सुलतान बहादुर शाहका आश्रय लिया।

इस घटनाके कुछ दिन बाद दिल्लीके अफगानवंशीय अंतिम राजा इब्राहिमलोदीके चचा अलाउद्दीनने भी बहादुर शाहकी शरण ली।

हुमायून् बहादुरके इस व्यवहार पर बड़े बिगड़े और उसका दमन करनेके लिये इन्होंने गुजरातकी यात्रा कर दी। इस यात्रामें जब बादशाही सेना चित्तौरदुर्गके पास पहुंची, उस समय बहादुर शाहसे हुमायूनको एक पत्र मिला। उस पत्रमें बहादुर शाहने हुमायूनको इस प्रकार लिखा था, 'थोड़े ही दिनोंसे मैंने चित्तोर दुर्गमें घेरा डाला है, और आशा है, कि मैं शीघ्र ही काफिरोंको परास्त कर मुसलमानोंका धर्मगौरव बढ़ायेंगे। अतः आप इस समय मेरे काममें बाधा डाल कर मुझे अपमानित न करें।' हुमायून् मुसलमान धर्मके कट्टर पक्षपाती थे और साथ साथ वीरपुरुष भी थे। उन्होंने उसी समय बहादुरकी बात मान ली। इसके बाद चित्तोर जीत कर जब बहादुर शाह अपने राज्यमें लौटा तब हुमायूंने फिरसे उसके विरुद्ध युद्धयात्रा कर दी। गुजरात पहुंच कर हुमायून् प्रायः छः मास तक बहादुरके शिविरमें घेरा डाले थे। रसद घट जानेके कारण बहादुर शाह आत्मरक्षा न कर सका। एक दिन दो पहर रातको वह खेमेसे भाग निकला। उसके भागनेकी खबर पाते ही सारी सेना तितर बितर हो गई। हुमायूनने भी बहादुर शाहका पीछा किया। रूमी खाँ नामक बहादुरके मंत्रीने आ कर बादशाहकी अधीनता स्वीकार कर ली। हुमायूनने उसके मुंहसे सुना, कि बहादुर शाहने मालवा प्रदेशके मन्दू नामक दुर्गमें आश्रय लिया है। यह सुनते ही बादशाहने वहांकी यात्रा कर दी और दुर्गको चारों ओरसे घेर लिया। बहादुर शाह वहांसे भाग कर चम्पारण नामक दुर्गमें चला गया। गुजरात राज्यके मध्य वही प्रधान दुर्ग था। हुमायूनने उस दुर्भेद्य दुर्गको आसानीसे दखल कर लिया। इस विजयसे हुमायूंकी बड़ी प्रसिद्धि हो गई। उन्होंने गुजरात जीत कर भाई अस्करीके हाथ गुजरातका शासनभार सौंपा और आप राजधानीको लौट आये। परन्तु उनके गुजरात छोड़नेके बाद ही मुगल कर्मचारी आपसके कलहसे इतने कमजोर हो रहे थे, कि बहादुर शाहने इसी समय लौट कर अपना राज्य सहजमें दखल कर लिया। इधर अफगान सरदार शेर खांने विहार प्रदेशका चारकुण्ड और रोहतास दुर्ग जीत कर बङ्गालकी प्रधान राजधानी गौड़ नगरमें घेरा डाला। यह संवाद पाते ही हुमायूनने १५३८ ई०में शेरखांके विरुद्धयात्रा कर दी। चुनार दुर्ग जीते जाने पर उस रूमी खांने ३०० गोलन्दाज सेना चुन कर उन दुर्गवासियोंके हाथ काट डालनेका हुकुम दिया। परन्तु बादशाहने क्रोध प्रकट करते हुए कहा, कि ऐसा नीच व्यवहार निन्दाजनक है। इसलिये मैं ऐसा काम नहीं होने दूंगा। सम्राट् हुमायूंकी ऐसी सहृदयता हम कई जगह देख पाते हैं, इसलिये वे ऐतिहासिकोंके निकट दयालु हुमायून् नामसे परिचित हैं।

विख्यात चुनार दुर्ग दखल कर हुमायून बङ्गदेशकी ओर अग्रसर हुए। कुछ दिन बाद इन्हें खबर मिली कि इनका भाई शाहजादा हिन्दाल मंत्रियोंके उसकानेसे बागी हो गया है और विश्वस्त राजकर्मचारियोंको मार

कर अपने नाम पर खुतवा प्रचार किया है। इधर उनका मंझला भाई कामरान् भी बड़ी भारी सेना ले कर आगे बढ़ रहा था। अब हुमायून् भाइयोंके हठात् बागी हो जाने पर बड़े चिन्तित हुए और राजधानी लौट आनेका विचार करने लगे। शेर खाँने भी अच्छा मौका देख कर बादशाही सेना रोकने आया। बक्सर नामक स्थानमें मुठभेड़ हो गई। तीन मास बादशाही सेनाको वहां अपेक्षा करनी पड़ी थी। आखिर शेर खाँने बड़ी चालाकीसे संधिका प्रस्ताव उठाया। कुरान छू कर उसने शपथ खाई, 'मैं बादशाहके खुतवा और सिक्का प्रचारमें दस्तन्दाजी करना नहीं चाहता हूं, चाहता हूं केवल बङ्गाल और बिहारका शासनकर्तृत्व।' बादशाह इस पर सहमत हो गये। परन्तु पीछे चतुर शेर मुगल-सेनाओंको जहां असावधान पाता वहीं उन पर हमला कर तहस नहस कर डालता था। मुगल-सेनाको युद्धके लिये समय भी नहीं मिलने पाता था। गंगानदी पार करनेके लिये हुमायूंने पहले जो सब नावें संग्रह कर रखी थीं, शेरशाहकी सेनाने उनमेंसे अधिकांशको हस्तगत कर लिया। उस समय बादशाह कैसी दुरवस्थामें पड़ गये थे, वह वर्णन नहीं किया जा सकता। प्रायः बीस हजार सेनाको नदीमें डूबनेसे जान चली गई थी। स्वयं बादशाह भी डूबने पर थे, पर भाग्य वशतः किसी भिस्तीवालेने आ कर उन्हें बचा लिया। किनारे लगने पर बादशाहने जब भिस्तीवालेसे उसका नाम पूछा, तब उसने निजाम बताया। बादशाहने प्रसन्न हो कर कहा, 'मैं उस साधु निजामउद्दीन अलीके नामकी तरह तुम्हारा नाम भी मशहूर करूंगा और तुम निश्चय ही मेरे सिंहासन पर बैठ सकते हो।' कहते हैं, कि बादशाहके राजधानी चले जाने पर वह भिस्तीवाला पुरस्कार पानेकी आशासे दिल्ली पहुंचा। तब बादशाहने दो घटेके लिये उसे सिंहासन पर बैठा कर अपना वचन पूरा किया। भिस्तीवालेने उस थोड़े समयमें ही सर्वेसर्वा हो कर अपने परिवारके भरणपोषणका अच्छा प्रबंध कर लिया था।

इस युद्धमें हुमायूनकी बुरी तरह हार हुई तथा अपमान भी पूरा हुआ था। इस अपमानसे उस समय भारतवासी समस्त मुगल जातियोंमें एक विशेष जातीय सहानुभूति देखी गई थी। शाहजादा कामरानने जब मुगल-सेनाकी पराजयका हाल सुना, तब वह फौरन अलवरसे आग्राको चल दिया। उसने समझा था, कि अफगान लोग क्रमशः दलबद्ध हो कर मुगलराज्यको तहस नहस करना चाहते हैं। इसलिये अब आत्म-विरोधका समय नहीं है। हुमायूनके साथ उसने जो पहले दुर्व्यवहार किया था, उस पर वह लजाया और पछताने लगा। अफगानशक्तिके उच्छेदके लिये उसने कमर कस ली। केवल वही नहीं, मुगल सम्राट्की सम्मानरक्षाके लिये सभी मुगल तैयार हो गये।

इस प्रकार कुछ समय तक हुमायूनके सभी भाइयोंमें मेल बना रहा। शेर अफगानको सजा देनेके लिये अब सभी तैयार हो गये। शाहजादा कामरान्ने कहा, 'बादशाह राजधानीमें ही रहें और मुझे हुकुम दें, मैं ही सेना ले कर युद्धयात्रा करूं; शेर अफगानको उपयुक्त सजाका हाल बादशाह मुझसे ही सुनेंगे।' इस पर बादशाह बोले, 'शेरने मुझको ही परास्त किया है। इस लिये मैं ही उसका प्रतिशोध लूंगा, तुम यहीं पर रहो।'

बक्सर युद्धके एक वर्ष बाद बादशाहने शेर खांके विरुद्ध फिरसे युद्धयात्रा कर दी। बादशाही सेनाने कन्नौज पहुंचने पर मालूम हुआ, कि शेर खां गङ्गाके दूसरे किनारे छावनी डाले हुए हैं। बादशाहने गङ्गा पार होनेके लिये अपनी सेनाओंको आज्ञा दे दी। तदनुसार बादशाही सेना गंगा नदी पार कर गई। वहां उन लोगोंने सामनेमें ही शेरखाँकी सेनाका खेमा पड़ा हुआ देखा दो पक्षमेंसे किसीको भी पहले धावा बोल देनेका साहस नहीं हुआ। इस प्रकार एक मास बीत गया। एक दिन बादशाहने सुना, कि सुलतान मिर्जा महम्मद नामक उनका एक सेनापति शत्रुके साथ मिल गया है और कुछ सेनानायक भी उसका पदानुसरण कर रहे हैं। ऐसे संकट समयमें बादशाहने ऐसा कभी भी नहीं सोचा था, कि उनकी कुछ मुगल सेना ऐसी कृतघ्न विश्वासघातक हो जायेगी। वर्षाऋतुका आगमन हुआ। बादशाहने धावा बोल देनेकी आज्ञा दे दी, परन्तु मुगलोंके प्रति भाग्यलक्ष्मी अप्रसन्न थी। इस बार भी उनकी हार

हुई। मुगलसेना हार खा कर नदीमें कूद पड़ी। बादशाहका घोड़ा घायल हो कर मतवाला-सा हो गया। पीछे कोई मुगल सैनिक लगाम पकड़ कर उसे गंगातट तक ले गया। बादशाह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये, क्या करना चाहिये, कुछ भी स्थिर नहीं कर सके। इसी समय एक हाथीको देख कर उन्होंने माहुतसे गंगा पार कर देने कहा, पर वह यह कह कर राजी नहीं हुआ, कि अभी हाथीकी जैसी अवस्था हो रही है, कि सबोंको प्राणसे हाथ धोना पड़ेगा। बादशाहके पास उस समय एक खोजा रहता था। उसने बादशाहके कानमें फुसफुसा कर कहा, 'इस माहुतका अभिप्राय खराब मालूम होता है, शत्रुके हाथ हम लोगोंको पकड़वा देनेकी ही उसकी एकान्त इच्छा है, इसलिये उसका शिर अभी काट लेना चाहिये।' बादशाहने कहा, कि ऐसा होनेसे हम लोगोंको नदी पार कौन करेगा? खोजा बोला, 'इसकी चिन्ता आप न करें, मैं हाथी चलाना अच्छी तरह जानता हूं।' अनन्तर बादशाहने इसी समय तलवारसे उस पर वार किया। माहुत घायल हो कर गंगामें धड़ामसे गिर पड़ा। पीछे खोजा हाथी पर चढ़ किसी तरह उसको किनारे लाया।

इधर शेरशाहका बल दिन-पर दिन बढ़ता जा रहा था। उसने मौका देख कर बड़े साहससे दिल्लीकी यात्रा कर दी। हुमायून् बचावका कोई उपाय न देख आगरा छोड़ देनेके लिये बाध्य हुए। आगरा छोड़ कर वे अपने भाई कामरानके पास लाहोर गये। परन्तु शाहजादा कामरान उस समय अपने स्वार्थके प्रति लक्ष्य करके बड़ा चिन्तित हो रहा था। उसे शेरशाहके विरुद्ध खड़े होनेका साहस नहीं हुआ। केवल यही नहीं उसने शेरशाहसे मेल कर लिया और अपना पंजाब राज्य जिससे अक्षुण्ण रहे उसका उपाय कर वह स्वयं काबुल चल दिया। हुमायून् बचावका कोई रास्ता न देख सिन्धुप्रदेशको चल दिये। शेरशाहने इसी समय दिल्ली अधिकार कर पठान-साम्राज्यको पुनः स्थापन किया।

प्रायः डेढ़ वर्ष हुमायूं इधर उधर भटकते रहे। आखिर वे मारवाड़ चले गये। राजा मालदेवने उन्हें आश्रय दिया सही, पर वे भीतर ही भीतर उन्हें पकड़वा देनेकी साजिश कर रहे थे। हुमायूंको यह बात मालूम हो गई और वे दो पहर रातको चुपके अमरकोटकी ओर भाग चले। अमरकोट जाते समय राहमें उन्हें भारी कठिनाइयां झेलनी पड़ी थीं। अनुचरके साथ मरुभूमि पार करते समय ये सबके सब प्यासके मारे छटपटा रहे थे। कोई तो पागल हो गया और कोई उसी समय कराल कालका शिकार बना। उसी दुःसह अवस्थामें फिर हुमायून्को मालूम हुआ, कि शत्रु-सेना उनका पीछा कर रही है और शीघ्र ही उन्हें शत्रुके हाथ गिरना पड़ेगा। अभागे हुमायून्का होश हवास जाता रहा, परन्तु सौभाग्यवशतः शत्रुसेनाके उस स्थानसे बहुत दूर हट जाने पर इस बार उन्होंने रक्षा पाई। अब वे भागते भागते एक जलपूर्ण कूपके पास पहुंचे। उस समय उनकी अवस्था वर्णनातीत थी। वे उसी कूपके पास बैठ भक्तिपूर्ण हृदयसे भगवान्को धन्यवाद देने लगे। अनन्तर जो सब अनुचर उनके साथ आये थे, उनके लिये चमड़ेके थैलेमें जल भर कर उसी समय भेजवा दिये। इसके बादकी यात्रामें फिरसे जलका भारी कष्ट हुआ था। कुछ दिनों तक कहीं भी एक बिन्दु जल नहीं मिला। चौथे दिन एक जगह फिरसे कुछ जलपूर्ण कूप देखनेमें आये। परन्तु कूप गहरे थे और जल निकालनेके उतने बरतन भी नहीं थे। इस कारण जल निकालनेमें कुछ विलम्ब होने लगा। ज्यों ही जल निकलता, त्यों ही सभी टूट पड़ते और झगड़ने लगते थे। इस खींचा पानीमें कितने बरतन डूब गये और कितने प्यासके मारे डूब मरे।

ऐसी शोचनीय अवस्था देख कर बादशाह एक दम अधीर हो उठे। उसी समय अमरकोटके राजाने अपने पुत्रको दूत बना कर बड़े आदरसे उन्हें ले आने कहा। हुमायून् उनके आश्रयमें एक वर्ष तक रहे। अमरकोटके राजाने उन्हें सेनासे भी मदद पहुंचाई थी। वे उस सेनाको ले कर सिन्धु प्रदेश जीतनेके लिये गये। जब हुमायून् उस युद्धयात्रामें निकले, उस समय उनकी प्रियतमा महिषी हामिदा गर्भवती थी। युद्धयात्रा करनेके दो

दिन बाद जब हुमायूं पुष्करिणीके किनारे खेमा डाले पड़े थे, उस समय उन्हें पुत्रका जन्मसंवाद मिला। यही पुत्र जगद्विख्यात अकबर था। यह आनन्द संवाद सुन कर सभी अमीर उमरा इकट्ठे हुए। हुमायूनने एक खण्ड कस्तूरी तोड़ कर उसके दाने सबोंको बांट दिये और उन लोगोंसे कहा, "मेरे पुत्रके जन्मोपलक्षमें आप लोगोंको उपहार देने योग्य वस्तु मेरे पास सिर्फ एक कस्तूरी रह गई है। इस कस्तूरीकी सुगंधने जिस प्रकार चारों ओर आमोदित कर दिया है, आशा करता हूं, कि मेरे पुत्रके यशःसौरभसे भी एक दिन सारी पृथिवी इसी प्रकार पुलकित हो जायेगी।"

परन्तु इस युद्धयात्रामें हुमायून् कृतकार्य न हो सके। अवस्थाके पलटनेसे उनके नितान्त आत्मीयगण भी पराये हो गये और नाना प्रकारके अन्तर्विद्रोहसे तंग आ कर हुमायून् कंधारको भाग गये। उस समय कंधार उनके छोटे भाई अस्करीके अधीन था। वह मझले भाई कामरानके प्रतिनिधिरूपमें राज्यशासन करता था। आज उसीके दरवाजे पर उसके बड़े भाई भूतपूर्व भारतसम्राट् आश्रयकी आशासे बड़े दीन भावमें खड़े हैं। परन्तु एक तो आश्चर्य मनुष्यका हृदय है और उससे भी बढ़ कर आश्चर्य है मनुष्यका भाग्य-परिवर्त्तन। अस्करी उन्हें आश्रय देनेसे बिलकुल इनकार चला गया। हुमायून्-ने जब देखा, कि अफगानिस्तान भी उनके पक्षमें नहीं है, तब वे पारस्यको भाग गये। परन्तु जाते समय उन्होंने अपने प्रियतम पुत्र अकबरको चचाके आश्रयमें रख छोड़ा।

इस प्रकार हुमायून् जब राहकी धूल छान रहे थे, उस समय भारत-साम्राज्यमें बहुत हेरफेर हुआ। शेरशाह दिल्ली जीत कर भारतसम्राट् हुआ था, यह बात पहले ही लिख चुके हैं। परन्तु उसकी मृत्युके बाद शीघ्र ही उस विस्तृत साम्राज्यका पतन हुआ। शेरशाहके पुत्र सलीम शाहकी मृत्युके बाद अफगान सामन्तोंमें विरोध खड़ा हो गया। यह सुयोग पा कर हुमायूनने फिर भारतवर्षमें प्रवेश किया। उन्होंने पहले ही पारस्यराज-की सहायतासे सैन्य संग्रह कर काबुल और कंधार अपने अधिकारमें कर लिया था। अभी सरहिन्दकी लड़ाईमें उन्होंने सिकन्दर सूरको परास्त कर १५५५ ई०में दिल्ली और आगरा फिरसे दखल किया। इन सब युद्धों-में इन्होंने वीर बैराम खांसे खासी मदद पाई थी। यह कहना पड़ेगा, कि उसीकी सहायतासे हुमायून् फिरसे भारत-साम्राज्य पानेमें समर्थ हुए थे। परन्तु सिकन्दर तब भी अपने विच्छिन्न सैन्यदलका फिरसे संग्रह कर युद्धकी तैयारी कर रहा था। हुमायूनने यह संवाद पा कर बैराम खांके अधीन शाहजादा अकबरको उसके दमनमें भेजा।

इसके कुछ दिन बाद ही एक दिन तिसरे पहरको बादशाह हुमायून् पाठागारकी छत पर हवा खाने गये। वहांसे सीढ़ी हो कर उतरते समय उन्हें आजानकी आवाज सुनाई दी। मुसलमान धर्मके नियमानुसार उसी समय वे सीढ़ी पर खड़े हो कर कलमा पढ़ने लगे। पीछे आजानकी आवाज बंद होने पर ज्यों ही वे खड़े होनेको हुए त्यों ही हाथमें की लाठी पिछल गई और वे लुढ़क कर नीचे गिर पड़े। उन्हें इतनी गहरी चोट लगी, कि उनके प्राण-पखेरू उड़ गये। (१५५६ ई०) अकबर शब्दमें विशेष विवरण देखो।

हुमेल (अ० स्त्री०) अशर्फियों या रुपयोंको गूंथ कर बनी हुई एक प्रकारकी माला। इसे स्त्रियां पहनती हैं।

हुम्मा—सामभेद। (पञ्चविं० ब्रा०)

हुम्मा (हिं० पु०) लहरोंका उठना, बान।

हुरङ्ग—आसामके कछाड़ जिलेकी पूर्वी शैलमाला। यह शिलचरसे मणिपुर तक बराक नदीके उत्तरमें फैली हुई है।

हुरदंग (हिं० पु०) हुड़दंग देखो।

हुरमत (अ० स्त्री०) मर्यादा, इज्जत।

हुरहुर (हिं० पु०) हुलहुल देखो।

हुरहुरिया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी चिड़िया।

हुरुक्क (सं० पु०) निषाद और कबरी स्त्रीसे उत्पन्न एक संकर जाति।

हुरुट्टक (सं० पु०) हाथीका अंकुश।

हुरुमयी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका नृत्य।

हुर्रा (अं० पु०) एक प्रकारकी हर्षध्वनि।

हुल (सं० पु०) एक प्रकारका दो धारा छुरा।

हुलकना (हिं० क्रि०) उलटी करना, कै करना।

हुलकी (हिं० स्त्री०) १ उलटी, वमन। २ हैजेकी बीमारी।

हुलना (हिं० क्रि०) लाठी आदिको ठेलना, रेलना।

हुलसना (हिं० क्रि०) १ आनन्दसे फूलना, खुशीसे भरना। २ उभरना, उठना। ३ उमड़ना, बढ़ना।

हुलसाना (हिं० क्रि०) उल्लासित करना, हर्षकी उमंग उत्पन्न करना।

हुलसी (हिं० स्त्री०) १ आनन्द, उल्लास। २ किसी किसीके मतसे तुलसीदासजीकी माताका नाम।

हुलहुल (हिं० पु०) एक छोटा बरसाती पौधा। इसके कई भेद हैं। साधारण जातिके पौधेमें श्वेत पुष्प और मूंगकी तरह लंबी कलियां लगती हैं। कोई कोई ऐसा भी हुलहुल है जिसमें पीले, लाल और बैंगनी फूल लगते हैं। पत्ते गोल और फांकदार होते हैं जो दर्द दूर करनेकी औषध माने जाते हैं। कानके दर्दमें प्रायः इन पत्तोंका रस डाला जाता है। लोग पत्तोंका साग भी खाते हैं।

हुलहुला (हिं० पु०) १ अद्भुत बात। २ उपद्रव। ३ शोक। ४ मिथ्या अभियोग।

हुलहुली (सं० स्त्री०) स्त्रियोंके मङ्गलजनक मुखशब्द।

हुला (हिं० पु०) लाठीका छोर या नोक।

हुलाना (हिं० क्रि०) लाठी, भाले आदिको जोरसे ठेलना, पेलना।

हुलाल (हिं० स्त्री०) तरङ्ग, लहर।

हुलास (हिं० पु०) उल्लास, आनन्दकी उमंग। २ उत्साह, हौसला। ३ बढ़ना, उमगना। (स्त्री०) ४ सुंघनी।

हुलासदानी (हिं० स्त्री०) सुंघनीदानी, नसदानी।

हुलासी (हिं० वि०) १ आनन्दी। २ उत्साही, हौसलेवाला।

हुलिङ्ग (सं० पु०) मध्यदेशके अन्तर्गत एक प्रदेशका नाम।

हुलिया (अ० पु०) १ आकृति, शकल। २ किसी मनुष्यके रूपरंग आदिका विवरण, शकल सूरत और बदन परके निशान वगैरहका ब्योरा।

हुलु (सं० पु०) मेष, मेढा।

हुलूक (हिं० पु०) एक जातिका बंदर। यह बीस इक्कीस इञ्च लम्बा और रंग प्रायः सफेद होता है। यह आसामके जंगलोंमें झुंडमें रहता है और जल्दी पालतू हो जाता है।

हुलैया (हिं० स्त्री०) डूबनेके पहले नावका डगमगाना।

हुल्ल (सं० पु०) एक प्रकारका नृत्य।

हुल्लड़ (हिं० पु०) १ शोरगुल, हल्ला। २ उपद्रव, ऊधम। ३ आन्दोलन, हलचल। ४ दंगा, बलवा।

हुल्लास (हिं० पु०) चौपाई और त्रिभंगीके मेलसे बना हुआ एक छंद।

हुश् (हिं० अव्य०) एक निषेधवाचक शब्द।

हुशियारपुर—पंजाबके छोटे लाटके शासनाधीन एक जिला और उसका प्रधान शहर। होशियारपुर देखो।

हुश्कारना (हिं० क्रि०) हुश हुश शब्द करके कुत्तेको किसीकी ओर काटने आदिके लिये बढ़ाना।

हुष्क (सं० स्त्री०) सम्राट् कनिष्कके पुत्र, हुविष्कका अपभ्रंश। इनके नाम पर काश्मीरमें हुष्कपुर बसाया गया जो अभी उस्कार कहलाता है।

हुसेन—रियाज-उस-सलिकीमके प्रणेता एक मुसलमान कवि। इनका असल नाम मुजफ्फर हुसेन था। पर लोग इन्हें हुसेन या साहिद ही कहा करते थे।

हुसेनअली खाँ - एक मुसलमान उमरा। ये मुगल-सम्राट् आलमगीर बादशाहके अधीन सेनानायक थे। इनके पिताका नाम अलाहवर्दी खां था। दाक्षिणात्यमें विजापुर दुर्ग जीतनेके ठीक दूसरे ही दिन अर्थात् १६८६ ई०की ३री अक्टूबरको इनकी मृत्यु हुई।

हुसेन अली खाँ—एक अमीर-उल्-उमरा। ये तथा इनके भाई अबदुल्ला खाँ पैगम्बर महम्मदके वंशधर थे, इस कारण मुसलमान-समाजमें इनका बड़ा आदर था।

मुगल-सम्राट् बहादुरशाहके अधीन अबदुल्ला खाँ इलाहाबादके और हुसेन अली विहारके शासनकर्त्ता थे। दोनों भाइयोंके उद्योग, कौशल और बलसे १७१३ ई०के जनवरी मासमें सम्राट् फरुंखसियर दिल्लीके सिंहासन पर बैठे। मसनद पर बैठते ही उन्होंने अबदुल्लाको प्रधान मन्त्री और हुसेन अलीको अमीर-उल-उमराका पद प्रदान किया। परन्तु सम्राट् कुछ समय बाद ही दोनों भाइयोंका कुचक्र जान कर स्वाधीन होनेकी चेष्टा करने लगे। यह ले कर सम्राट्के साथ कुतुब-उल-मुल्क-

का मनमुटाव हो गया। उसीके फलसे फरुखशियर मारे गये।

सम्राट् महम्मदशाह दिल्लीके सिंहासन पर बैठते ही दोनों सैयद भाईके पंजेसे छुटकारा पाने और उनका काम तमाम करनेकी साजिश करने लगे। नये सम्राट्‌के हुकुमसे १७२० ई०की १८वीं सितम्बरको मीर हैदर खांने छिपके हुसेन अली खांको मार डाला। हुसेन अलीकी लाश अजमीरमें लाई और वहीं दफनाई गई।

हुसेन इमाम—पैगम्बर महम्मदके जमाई अलीके दूसरे लड़के। ६२३ ई०के जनवरी मासमें मेदिना नगरमें इनका जन्म हुआ। अलीके वंशमें ये ३य इमाम कह कर मुसलमान-समाजमें परिचित थे। मुयावियाके लड़के याजिद असल खलीफा न माने जानेके कारण इन्हें बाध्य हो कर मेदिना नगर छोड़ मक्का राजधानी भाग आना पड़ा। इस प्रकार छिपके भाग आने पर भी ये राजरोषसे न बच सके। याजिदके भेजे हुए सेनापति उबैदुल्ला-इब्न जयादके हुकुमसे वे राहमें हो पकड़े और मारे गये। (६८० ई०)

जब क्युफा नगरमें उबैदुल्लाके शिविरमें इमाम हुसेनका मुंड लाया गया था, तब उन्होंने उस मुंड को देख बड़ी घृणाके साथ उस पर लाठी जमाई थी। इसके बाद उनके हुकुमसे हुसेनके मुंडके साथ हुसेन परिवारको कैद कर दामास्कस नगरकी याजिद्‌-राज-सभामें भेजा गया था।

जिस दिन इमाम हुसेनकी मृत्यु हुई वह दिन मुसलमानोंका एक पर्व दिन और जहां हुसेनकी शवदेह दफनाई गई, वह स्थान इस्लाम-जगत्‌का एक पवित्र तीर्थ माना जाता है। इसी दिन मुसलमानमात्र ही मुहर्रम पर्वोपलक्षमें सुशोभित ताजिये ले कर करवला-में दफनाने जाते हैं।

क्युफाके निकटवर्त्ती करबला नामक स्थानमें हुसेन की लाश दफनाई गई थी। किसी किसीका कहना है, कि हुसेनका मुंड करबला नदीके किनारे ले जा कर याजिद-सेनादलने दफनाया था, परन्तु इसका आज तक कोई प्रमाण नहीं मिला है। पर हां, बयाइदवंशके प्रतिष्ठाता और प्रथम सुलतान हुसेन जहां मारे गये थे, वहां बहुत रुपये खर्च कर एक बड़ा मीनार बनाया गया। मुसलमान लोग उसे 'गुणवाज फइज' कहते हैं। आज भी मुसलमान लोग वहां जा कर शोक प्रकट करते और बड़ी भक्तिसे शिरनी आदि चढ़ाते हैं।

हुसेन-इब्न-मुइन-उद्दीन-मैबदी—एक इस्लाम धर्मग्रन्थ-के रचयिता। ये "फशाताह" उपाधिसे भूषित थे।

हुसेन उद्दीन हुसेन बिन-अली—एक मुसलमान पण्डित। सुप्रसिद्ध बुर्हानउद्दीन अली इनके शिक्षा-गुरु थे। इन्होंने सबसे पहले निहाय नामक अरबी 'हिदाय-शाप'की टीका रच कर मुसलमान समाजमें ख्याति लाभ की।

हुसेन काशी—एक मुसलमान कवि। १५४४ ई०में ये विद्यमान थे।

हुसेन काश्मीरी—काश्मीरवासी एक मुसलमान ग्रन्थ-कर्त्ता। इन्होंने सुफीमतपोषक कुछ धर्मविषय ले कर 'हिदायत उल अमी' नामक ग्रन्थकी रचना की। ग्रन्थ पारसी भाषामें लिखा हुआ है।

हुसेन कुली खां—ढाकाके नवाब नौआजिस महम्मदके दीवान। ये बङ्गालके नवाब सिराज उद्दौलाके क्रोधमें पड़ कर मारे गये थे। सिराज उद्दौला देखो।

हुसेन खोनसारी—पारस्यवासी एक मुसलमान दार्शनिक। ये १७वीं सदीके शेष भागमें विद्यमान थे। तिहारणके निकटवर्त्ती खोनसार नगर इनका जन्मस्थान था।

हुसेन गजनवी—'किस्से पदुमावत्' नामक काव्यके प्रणेता। इन्होंने पदुमावतीका उपाख्यान पारसी भाषामें अनुवाद कर अच्छा नाम कमाया है।

हुसेन जलायर (सुलतान) बोगदाद नगरीके एक मुसल-मान-राजा। ये १३८२ ई०में अपने भाई सुलतान अहादके साथ युद्धमें मारे गये।

हुसेन दोस्त सम्भली (मीर)—एक मुसलमान कवि, सम्भलवासी आबुतालिबके पुत्र। इन्होंने 'तजकीरा हुसेनी' नामक कविजीवनी संग्रह कर प्रकाशित की। मुगल सम्राट् महम्मदके शासनकालमें (१७४८ ई०) ये मौजूद थे।

हुसेन नक्काशी (मुल्ला)—एक मुसलमान पण्डित। मुगल-सम्राट् अकबर बादशाहके अमलमें ये दिल्ली राजधानीमें रहते थे। इनकी रचित कविताएं सुन्दर और सरल

हैं। इसके सिवा चित्रविद्या और खुदाई-काममें ये बड़े निपुण थे। १५८१ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

हुसेन निज़ाम शाह १म—दाक्षिणात्यके निज़ामशाही वंशके एक मुसलमान राजा। निज़ामशाही वंश देखो।

हुसेन निज़ामशाह—निज़ाम शाहीवंशके एक राजा।

हुसेनपुर बहादुरपुर—युक्तप्रदेशके मुजफ्फरपुर जिलेकी जनसाथ तहसीलके दो छोटे ग्राम। यहांके अधिवासी प्रधानतः चौहानवंशीय राजपूत हैं और उनकी अधीनस्थ प्रजा चमार जातिकी हैं।

विख्यात सिपाहीविद्रोहके समय गूजरजातिके सेनादलने हुसेनपुर लूट कर ग्रामवासीका सर्वस्व हरण कर लिया। ग्रामवासी अब भी अपनी अवस्थाको सुधार नहीं सके हैं।

हुसेन मार्वी (ख्वाजा)—पारस्यके मार्व प्रदेशवासी एक सुकवि। ये सम्राट् अकबरके समसामयिक थे। उक्त सम्राट्के द्वितीय पुत्र सुलतान शाह मुरादके जन्मोपलक्षमें इन्होंने १५१० ई०को खण्डकाव्यकी रचना की थी। उनके लिखे एक दीवान और पारसी भाषामें रचित 'सिंहासन-बत्तीसी' नामक कहानी ग्रंथ मिलते हैं।

हुसेन मिर्ज़ा (सुलतान)—अमीर तैमुरके वंशधर और मिर्ज़ा मनसुरके पुत्र। परन्तु लोग इन्हें अबुल गाज़ी बहादुर ही कहा करते थे। सुलतान आबू सैयद मिर्ज़ाके मरने पर खुरासन राज्य अपनानेकी इच्छासे ये अपने आत्मीयवर्गके साथ षड़यन्त्र रचने लगे। १४६६ ई०में हिरात नगरमें राजसिंहासन पर बैठ कर इन्होंने सिंहासनके प्रतियोगियोंके विरुद्ध अस्त्र धारण किया। इन सब युद्धोंमें बार बार विजय होने तथा उज्बेक जातिको कब्जेमें लानेके कारण इन्हें गाज़ीकी उपाधि मिली थी। इनकी सभा सुविज्ञ पंडितोंसे परिपूर्ण रहती थी। खोरासनमें ३८ चान्द्र वर्ष ४ मास राज्य करनेके बाद १५०६ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

तुर्कभाषामें इनके लिखे दीवान और मलाजी-उल-इसाफ नामक एक प्रेमरसात्मक उपन्यास मिलते हैं। उस कवितामें इनका हुसेनी नाम आया है।

हुसेन मैवाजी—साजनजल उल-आर्वा नामक काव्यसंग्रहके रचयिता। उक्त ग्रन्थमें इन्होंने पारसी और तुर्की कवियोंकी रचना उद्धृत की है।

हुसेन लङ्गा (१म)—मूलतानके ३य राजा। १४७६ ई०में पिता कुतबुद्दीन महमूद लङ्गाके मरने पर ये सिंहासन पर बैठे। इन्होंने दिल्लीश्वर सिकन्दर लोदीके साथ मेल कर अपने राज्यकी नींव मजबूत कर ली थी। १४९८ ई० (दूसरेके मतसे १५०२ ई०)में इनका देहान्त हुआ। पीछे इनके पोते महमूद खाँ लङ्गा सिंहासन पर बैठे।

हुसेन लङ्गा (२य)—मूलतानके ५म और अंतिम राजा महमूद खां लङ्गाके पुत्र। १५२४ ई०में पिताकी मृत्युके बाद ये पितृसिंहासन पर बैठे।

हुसेन वायज़ (मौलाना)—एक मुसलमान ग्रन्थकार। ये खोरासानपति सुलतान हुसेन मिर्ज़ाके अधीन हिरातमें कर्मचारी नियुक्त थे। १५०५ ई०में इस राजपद पर नियुक्त रह कर ही इनकी मृत्यु हुई।

ग्रन्थकार-रचित 'मवाहिब उलियात्' कुरान शास्त्रकी टीका है। यह ग्रंथ उन्हींके नामानुसार तफ़शीर हुसेनी नामसे मशहूर है। इसके सिवा इनके रचित और भी कितने ग्रन्थ मिलते हैं। जिनमेंसे रौज़त-उस सुहादा ग्रंथमें इसलामधर्मप्रवर्त्तक पैगम्बर महम्मदकी जीवन और चरित्र सम्बन्धी सभी घटनाओं तथा करबला-युद्धके आनुपूर्विक विवरणका उल्लेख है। १५०१ ई०में इनकी रचना सम्पूर्ण हुई। पीछे ग्रन्थकारने उसे राज्येश्वर सुलतान हुसेन मिर्ज़ाके हाथ समर्पण किया।

हुसेन बेग—बङ्गेश्वर साइस्ता खाँके अधीनस्थ एक नौसेनापति। इन्होंने १६६४ ई०में आराकानराजके विरुद्ध युद्धयात्रा कर मेघनाके मुहानास्थित बन्दरों और शणद्वीप पर अधिकार जमाया। इसके बाद ये चट्टग्रामके पुर्त्तगीजोंको भय दिखा कर अपने कब्जेमें लाये।

चट्टग्राम देखो।

हुसेन-बिन् अलीम—नजहत्-उल्-अर्वाह नामक ग्रन्थके रचयिता। ग्रंथकारने इस ग्रन्थमें सुफीमतावलम्बी सुप्रसिद्ध महात्माओंकी जीवनीसंक्रान्त अत्याश्चर्य घटनावलीको लिपिबद्ध किया है।

हुसेन-बिन महम्मद—खजानत-अल-मुकतिइन् नामक ग्रन्थके प्रणेता। १३३६ ई०में उक्त ग्रन्थ समाप्त हुआ। उसमें

इस्लामधर्ममतके अनेक विषयोंकी मोमांसा है। भारतीय मुसलमान-सम्प्रदायका यह एक प्रामाणिक ग्रन्थ है।

हुसेन-बिन्-हसन्-अल् हुसेनी—घोरराज्यवासी एक मुसलमान कवि। अरबी और पारसी भाषामें इनके रचित अनेक ग्रन्थ मिलते हैं। १३१७ ई०को हीराट नगरमें इनकी मृत्यु हुई। कहते हैं, कि कवि हुसेन अपने पिता नजमउद्दीन्के साथ भारतवर्षमें व्यापार करने आये। मूलतानमें सुप्रसिद्ध मुसलमानपीर शेख बहाउद्दीन् जकरियासे पितापुत्रने दीक्षा ग्रहण की।

हुसेन सब्जगड़ी—एक मुसलमान कवि। लतायफ बजायफ और राहत-उल-आर्वा नामक ग्रन्थ इन्हींके बनाये हुए हैं। उक्त दोनों ग्रन्थ सुफीमतपोषक हैं तथा मुक्तिके उपाय और नैतिक जीवन गठन आदि विषयके आधार पर रचे गये हैं। ग्रन्थकार सबजगढ़ नामक देशके अधिवासी थे।

हुसेन शाह—बङ्गालके सुविख्यात पठान-राजा। ये अलाउद्दीन हुसेन शाह नामसे परिचित थे। बङ्गदेश देखो।

हुसेन शाह-शर्की (सुलतान)—जौनपुरके एक मुसलमान राजा। ये १४५२ ई०में अपने भाई महम्मदशाहको मृत्युके बाद सिंहासन पर बैठे। राजसिंहासन पर बैठ कर इन्होंने दिल्लीश्वर बहलोल लोदीके विरुद्ध कई बार युद्ध किये थे। अन्तमें ये हार खा कर रणक्षेत्रसे पैदल भाग खड़े हुए। बहोललोदीने जौनपुर जीत कर अपने पुत्र बार्बक शाहको वहांका शासनकर्त्ता बनाया। इस समय उन्होंने पूर्व राजा हुसेन शाहके परिवारवर्गके भरण पोषणके लिये ५ लाख रुपये आयकी एक जागीर दी।

करीब १४८६ ई०में सुलतान बहलोल लोदीकी मृत्यु हुई। पीछे सिकन्दर लोदी सिंहासन पर बैठे। हुसेन शाहने उनके दूसरे भाई बार्बक शाहको दिल्ली-सिंहासन पर दखल जमानेके लिये उभाड़ा। तदनुसार बार्बक शाह दलबलके साथ दिल्लीकी यात्रा कर दी। युद्धमें हार खा कर वे जौनपुर भाग जानेको वाध्य हुए।

बार्बक शाह राजधानी लौट कर भी सुखकी नींद न ले सके। दिल्लीश्वरने ससैन्य उनका पीछा कर जौनपुर अधिकार किया। अब हुसेन शाह अपने प्रतिपालककी दुर्गति देख अपने भावी कनिष्ठका अनुभव करने लगे। उन्होंने कोई उपाय न देख बङ्गालके अधीश्वर अलाउद्दीन पुरबीकी शरण ली। पुरबीने बड़े सम्मानसे आश्रय दे कर अपने बड़प्पनका परिचय दिया था। यहां १४९९ ई०में इनकी मृत्यु हुई। हुसेनशाहके साथ जौनपुरके शर्की वंशका लोप हुआ।

हुसेन शाह (सैयद)—एक मुसलमान ग्रन्थकर्त्ता। इन्होंने १८०० ई०में अमीर खुसरोका रचित हस्त-बहिस्त नामक ग्रन्थ 'हस्तगुल गस्त' नामसे पद्यमें भाषान्तरित किया। उस ग्रन्थमें बहरामघोर नामक किसी व्यक्तिकी जीवनीका उल्लेख है।

हुसेनी ब्राह्मण—उत्तर-पश्चिम और विहारवासी वर्णब्राह्मण विशेष। प्रवाद है, कि हुसेन नामक किसी मुसलमान साधु फकीरके शिष्य बन कर अथवा उनके गौरवका प्रचार कर ये लोग उन्हींके अनुसार हुसेनी ब्राह्मण कहलाने लगे। पंजाबप्रदेशमें ये लोग मुसलमान ब्राह्मण कहलाते हैं। दिल्लीविभागमें ही प्रधानतः इनका वास है। वहां ये लोग हिन्दूसे हिन्दू देवदेवीके नाम पर और मुसलमानसे अल्लाके नाम पर दिये हुए उपहार ग्रहण करते हैं।

आजमगढ़ जिलेमें ये लोग निकृष्ट वर्णब्राह्मण समझे जाते हैं। वहां इनका दूसरा नाम भंडेरिया भी है। बम्बई विभागमें इस श्रेणीके ब्राह्मण भङ्गी जातिकी पुरोहिताई करते हैं। डाक्टर विलसनने दाक्षिणात्यके निजामशाही राजवंशकी राजधानी अह्मदनगरमें भी इनका चिरन्तन वास देख कर अनुमान किया है, कि बहुत दिनोंसे मुसलमानोंके पड़ोसी होनेके कारण ये लोग आधे मुसलमान हो गये हैं। विलसन साहबका यह अनुमान बिलकुल ठीक है।

हुसैन (अ० पु०) मुहम्मद साहबके दामाद अलीके लड़के। ये करबलाके मैदानमें मारे गये थे और शीया मुसलमानोंके पूज्य हैं। मुहर्रम इन्हींके शोकमें मनाया जाता है। मुहर्रम देखो।

हुसैनी (अ० पु०) १ अंगूरकी एक जाति। २ फारस सङ्गीतके बारह मुकामोंमेंसे एक।

हुसैनी कान्हड़ा (हिं० पु०) सम्पूर्ण जातिका एक राग। इसमें सब शुद्ध शब्द लगते हैं।

हुस्न (अ० पु०) १ सौन्दर्य, सुन्दरता, अनूठापन।

हुस्नदान (हिं० पु०) पानदान, खासदान।

हुस्नपरस्त (फा० पु०) सौन्दर्योपासक, रूपका लोभी।

हुस्नपरस्ती (फा० स्त्री०) सौन्दर्योपासना, रूपका लोभ।

हुहुध (सं० क्ली०) नरकभेद।

हुहु (सं० पु०) एक गन्धर्वका नाम।

हू (सं० अव्य०) १ आह्वान। २ अवज्ञा। ३ अहङ्कार। ४ शोक। ५ तन्त्रोक्त मन्त्रविशेष। पूजादि स्थलमें इस बीजमन्त्र द्वारा अवगुण्ठन करना होता है। (तन्त्रसार)

हूं (हिं० अव्य०) १ किसी प्रश्नके उत्तरमें स्वीकार-सूचक शब्द। २ समर्थनसूचक शब्द। ३ एक शब्द जिसके द्वारा सुननेवाला यह सूचित करता है, कि मैं कही जाती हुई बात या प्रसङ्ग ध्यानसे सुन रहा हूं। (सर्व०) ४ वर्त्तमान-कालिक क्रिया 'है'का उत्तम पुरुष एकवचनका रूप।

हूंकना (हिं० क्रि०) १ गाय या बछड़ेकी यादमें या और कोई दुःख सूचित करनेके लिये धीरे धीरे बोलना, हुंडकना। २ वीरोंका ललकारना या दपटना, हुंकार शब्द करना। ३ सिसक कर रोना, कोई बात याद कर-के रोना।

हूंठ (सं० त्रि०) साढ़े तीन।

हूंठा (हिं० पु०) साढ़े तीनका पहाड़ा।

हूंड़ा (हिं० स्त्री०) खेतोंकी सिंचाईमें किसानोंकी एक दूसरेको सहायता देनेकी रीति।

हूंस (हिं० स्त्री०) १ ईर्ष्या, डाह। २ नजर, टोक। ३ दूसरेकी कोई वस्तु देख कर उसे पानेके लिये दुःखी रहना। ४ फटकार, कोसना।

हूंसना (हिं० क्रि०) १ नजर लगाना। २ ईर्ष्यासे जलाना। ३ ललचाना। ४ फटकारना, कोसना। ५ रह रह कर चिढ़ना।

हूक (हिं० स्त्री०) १ हृदयकी पीड़ा, साल। २ पीड़ा, दर्द। ३ आशङ्का, खटका।

हूकना (हिं० क्रि०) १ दर्द करना, दुखना। २ पीड़ासे चौंक उठना।

हूङ्कार (सं० पु०) हुम् इस प्रकार भयानक शब्द, भीषण गर्जन।

हूचक (हिं० पु०) युद्ध।

हूठा (हिं० पु०) १ भद्दी या गंवारू चेष्टा। २ किसीको चिढ़ानेके लिये अंगूठा दिखानेकी अशिष्ट मुद्रा, ठेंगा।

हूड़ (हिं० वि०) १ अनगढ़, उजड्ड। २ असावधान, बेखबर। ३ गावदी, अनाड़ी। ४ हठी, जिद्दी।

हूड़ा (हिं० पु०) पश्चिमी घाटके पहाड़ोंसे ले कर कन्या-कुमारी तक होनेवाला एक प्रकारका बांस।

हूण (सं० पु०) १ देशभेद। वृहत्संहितामें लिखा है, कि यह देश उत्तर २४, २५ और २६ नक्षत्रमें अवस्थित है।

"माण्डहलहूणकोहलशीतकमाण्डव्यभूतपुराः।"

(वृहत्स० १४।२७)

२ एक प्राचीन जाति। बहुतोंका विश्वास है, कि ये लोग असभ्य हैं। ये ही लोग ४थी सदीमें एशियासे दो दलोंमें विभक्त हो गये। एक दलने दानियुवप्रवाहित यूरोपमें जा वहांके अधिवासियोंको डरा कर विस्तृत देश-में अपना आधिपत्य फैलाया और दूसरा दल (५वीं सदीमें) भारतके उत्तर-पश्चिमप्रदेशसे होता हुआ शस्य-श्यामल भारतके समतल क्षेत्रमें पहुंचा था। उन लोगोंके प्रबल पराक्रमसे भारत-सम्राट्का आसन भी डगमगाने लगा था। इस प्रसङ्गको लक्ष्य कर बहुतेरे पुराविद् कहते हैं, कि भारतीय इतिहासमें जहां जहां 'हूण' या 'हून' शब्दका उल्लेख देखा जायेगा वहीं ५वीं सदीका है या उसके पीछेका। परन्तु हम लोग इस जातिको उतनी आधुनिक नहीं मानते। रामायण, महाभारत और पुराणोंमें हूणजातिका प्रसङ्ग है। सभी जगह भारत-सीमान्तवासी दुर्द्धर्ष क्षत्रिय जाति कह कर इनका वर्णन आया है। आधुनिक जटाधरके कोषमें लिखा है—

"श्वपाकस्तु तुरुष्कस्तु हूणो यवन इत्यपि।
लोकवाह्यस्तु यो वाजिगवाश्याचारवर्जितः।
म्लेच्छकिरातशवरपुलिन्दाद्यास्तु तद्भिदा।"

इत्यादि वचनोंसे हूण तुरुष्क और यवनकी तरह म्लेच्छजाति गिनी जाने पर भी राजपूतानेके ३६ राजपूत

कुलोंमें हूण भी लिया गया है। यहां तक, कि ११वीं सदीमें बहुत-सी शिलालिपियोंमें हूण जातिको असल क्षत्रिय कहा है और कलचूरी या चेदिवंशके साथ उनका वैवाहिक सम्बन्ध देखा जाता है।* बाणभट्टके हर्षचरित से जाना जाता है, कि ७वीं सदीके प्रारम्भमें सम्राट् हर्षवर्द्धनके बड़े भाई राज्यवर्द्धनने हूणोंको परास्त करनेके लिये उत्तरापथ या हिमालयप्रदेशको यात्रा की थी। तिब्बतकी शतद्रु नदी प्रवाहित अववाहिकामें हूण-देश या नारीखोरसुम नामक देश अवस्थित है। यहां हूणिया नामक एक बलिष्ठ और परिश्रमी जाति रहती है। इधर नेपाल और सिकिममें लिम्बु नामक जो एक जाति देखी जाती है उस जातिके लोगोंमेंसे अधिकांश 'हूं' कहलाते हैं। प्रसिद्ध हूनगरि-पण्डित क्सोमादे-कोरसने लिखा है, कि उत्तरभारतमें उक्त हिमालयप्रदेश ही हूण-जातिका आदि वासस्थान है तथा यहींसे पूर्वकालमें यह जाति हूणगरि देशमें जा बस गई थी। उन लोगोंके रहनेके बाद वह जनपद 'हूणगरि' कहलाया।

आरियन, ष्ट्राबो और टलेमीके वर्णनसे जाना जाता है, कि १ली सदीमें हूण लोग अफगानिस्तान और पंजाबमें बस गये थे। अफगानिस्तानका एक बहुफलभूषित पार्वत्य-राज्य आज भी हूनजा कहलाता है। हिन्दूकुश पर्वतकी उपत्यकाओंमेंसे इस जनपदकी ऊंचाई समुद्रपृष्ठसे ८४०० फुट है।

उक्त प्रमाणसे हमें मालूम होता है, कि हिमालयका पार्वत्य प्रदेश ही इस जातिका आदिवासस्थान है।

हूणदेश देखो।

अब प्रश्न उठता है, कि पाश्चात्य ऐतिहासिक गिबन, स्मिथ आदिके मतानुवर्त्ती हो हम लोग इस जातिको असभ्य मान सकते हैं या नहीं? छठी सदीके आरम्भ-में उत्कीर्ण सागर जिलेके हूणपति तोरमाणके परण-स्तम्भ और लवणशैल-मध्यवर्त्ती कुराग्रामसे आविष्कृत उनकी शिलालिपि तथा ग्वालियरसे आविष्कृत तोरमाण-के पुत्र मिहिरकुलकी शिलालिपि पढ़नेसे जाना जाता है, कि वे लोग सौर और ब्राह्मणभक्त हिन्दू थे। शाक-द्वीपियोंके विशेषत्व 'मिहिर' नामसे हूणराजवंश भी सुप्राचीन शाकजातिकी ही एक शाखा प्रतीत होता है। सच पूछिये तो शाक जातिको पूर्वतन शाखा काबुलके कुषाणवंश हूण या Ephthalite लोगोंके हाथसे ही अपना राज्य खो बैठी थी। ४५५ ई०में गुप्तसम्राट् स्कन्दगुप्तसे यद्यपि हूण लोग अच्छी तरह परास्त हुए; भारतवर्ष पर अपनी गोटी जमा न सके, फिर भी ४८५ ई०में पारस्यपति फिरोजका विनाश करके समस्त पारस्य और अफगानिस्तानमें इन लोगोंने अपना आधि-पत्य फैला लिया था। पीछे दश वर्षके भीतर ही इन लोगोंने प्रथम गान्धार या पेशावर भूभाग दखल किया और अनुगाङ्गप्रदेशमें आ कर गुप्तसाम्राज्यको तहस नहस कर डाला। इस भारत अभियानके नेता ही उक्त हूणपति तोरमाण थे। पश्चिममें पारस्य, पूर्वमें चीन सीमा पर अवस्थित खोतान तथा दक्षिणमें गंगा और नर्मदा-प्रवाहित उत्तर और मध्यभारतको उनकी अथवा उनके पुत्र मिहिरकुलकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी थी। पंजाबके शाकल या वर्त्तमान सियालकोट नामक स्थानमें उनकी प्रधान राजधानी थी। इसके सिवा वामियान, हिराट और बाल्खमें उनकी विभिन्न राज-धानीका परिचय मिलता है। पचास वर्षसे ऊपर भारतवर्ष हूण लोगोंके शासनाधीन रहा। इस समय उत्तर भारतमें सभी जगह शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंकी तूती बोलती थी। यहां तक, कि बालादित्य और यशोधर्म-प्रमुख उत्तर-भारतीय राजाओंकी चेष्टासे हूण साम्राज्य विलुप्त होने पर भी बालादित्य और परवर्त्ती गुप्तराजे शाकद्वीपियोंकी शासनभूमि पर हाथ न बढ़ा सके थे। यह बात देवोवरणार्क आदि स्थानोंसे आविष्कृत शिला-लिपिसे जानी गई है। यूरोपमें गथ और भारतमें बौद्ध-लोगों पर हूणवंशने जो घोर अत्याचार किया था उसे देख कोई कोई इन्हें नरपिशाच समझते हैं। पर यदि सच पूछा जाय तो ये लोग असभ्य नरपिशाच नहीं थे। वैरिका बदला चुकानेकी इच्छासे रणक्षेत्रमें उन्मत्त हो ये लोग बुरा वर्ताव कर गये हैं सही, पर दुर्द्धर्ष प्राचीन जातियोंमें तो यह प्रथा बड़े जोरोंसे जारी थी। ईसाई साधु कोसमस ५४७ ई०में पंजाब आ कर लिख गये हैं, कि श्वेत हूणराजके दो हजार फौजी हाथी

* Epigraphia Indica, Vol. I, p. 225.

और उतने ही घुड़सवार थे। इस बड़ी सेनाकी सहायतासे वे भारतके सभी राजाओंसे कर वसूल कर भारतसम्राट् हुए थे। गुप्त सम्राटोंके इतिहास और चीनपरिव्राजकोंके भ्रमणवृत्तान्तसे जाना जाता है, कि मिहिरकुल बालादित्यके हाथसे पराजित और बन्दी हुए थे। बालादित्यकी माताने मिहिरकुलके अनुपम रूपलावण्य पर मुग्ध हो पुत्रसे उन्हें छोड़ देनेकी प्रार्थना की थी। इस पर बालादित्यने हूणपतिको कारागारसे मुक्त कर बड़े सम्मानके साथ उत्तरापथ भेज दिया। जिस समय वे गुप्तराजके हाथ बंदी थे, उस समय उनके छोटे भाईने शाकलका सिंहासन अधिकार कर लिया था। इसलिये मिहिरकुलको आत्मरक्षाके लिये काश्मीरमें आश्रय लेना पड़ा था। काश्मीरपतिने उनका बड़ा आदर किया, केवल यही नहीं, एक छोटे राज्य का उन्हें शासनकर्त्ता भी बना दिया। पर मिहिरकुल यह उपकार शीघ्र ही भूल गये। कुछ दिन बाद ही उन्होंने दलबल संग्रह कर आश्रयदाताको तख्त परसे उतार दिया और काश्मीर सिंहासन पर दखल जमाया। कुछ ही दिनोंके बाद इन्होंने गांधार जीता और वहांके हूणपति को सपरिवार विनष्ट कर पश्चनदमें कदम बढ़ाया। यहां इन शिवोपासकने रुद्रमूर्त्तिसे हजारों शान्तशिष्ट बौद्धों को यमपुर भेज कर और सैकड़ों बौद्धस्तूप तथा विहार को ढाह ढूह कर ब्राह्मणोंका हर्ष बढ़ाया। परन्तु इस अत्याचारका प्रतिफल इन्हें शीघ्र ही भोगना पड़ा। थोड़े ही समयके अन्दर इन्होंने बड़े कष्टसे प्राणत्याग किया।

मिहिरकुलप्रमुख जिन सब हूणोंने ब्राह्मणोंके प्रति अनुराग और बौद्धोंके प्रति विद्वेष दिखलाया था; ब्राह्मण समाजने उन्हें क्षत्रियश्रेणीभुक्त कर लिया था। उनके वंशधर आत्मीय स्वजनगण आज भी राजपूत समाजमें क्षत्रिय माने जाते हैं। राजपूतानेकी चम्बल नदीके किनारे अवस्थित प्राचीन बरोली शहरमें आज भी हूणराजप्रासादका खण्डहर देखनेमें आता है। इस स्थानके शिङ्गारचौरी नामक देवालयको बहुतेरे हूणराजपुत्रका विवाहस्थान बतलाते हैं। बहुतोंका विश्वास है, कि इसीके दूसरे किनारे मैंसरोर नामक शहरमें हूणपतिकी राजधानी थी। गुजरातके भाटग्रन्थमें लिखा है, कि १२वीं सदीमें हूण लोग गुजरातके किसी स्थानमें राज्य करते थे। यह वंश एकदम विलुप्त नहीं हुआ है। अभी वे दूसरी राजपूतशाखामें मिल गये हैं। महात्मा टाड साहबने माही नदीके किनारे बड़ी हीनावस्थामें कुछ हूणोंको देखा था। हूणजातिके उक्त परिचयसे हम इन्हें असभ्य जाति नहीं कह सकते। पहले ही लिखा जा चुका है, कि १ली सदीमें यह जाति पंजाबमें विद्यमान थी। १ली सदीको चीनभाषामें अनुवादित ललितविस्तरमें हूणलिपिका उल्लेख है। ललितविस्तरके मतसे बुद्धदेवने इस हूणलिपिको सीखा था। इस सुप्राचीन लिपि द्वारा भी हम हूणको असभ्य जाति कहनेको तैयार नहीं। अध्यापक लासेनका कहना है, कि ईसा जन्मके १५० वर्ष पहले मध्य एशियाके इलि नामक प्रदेशमें सुतातार लोग युए-चि या श्वेत हूणके हाथसे परास्त हुए थे। सु-तातार लोग शाकवंशीय और श्वेतहूण लोग तोचारिवंशीय थे। मुसलमानी अमलमें पूर्वोक्त हूणजा आदि स्थानवासी इस जातिके जिन लोगोंने मुसलमानी धर्म और मुसलमानी आचार व्यवहार ग्रहण किया था अथवा हिमालयप्रदेशमें असभ्य जातिके संश्रवसे जो लोग हीनाचारी हो गये हैं, जटाधरप्रमुख ब्राह्मणकोषकारोंने उन्हींको गोमांस खानेवाला म्लेच्छ कहा है। हूणसम्राट् तोरमाण और मिहिरकुलकी बहुत-सी मुद्राएं आविष्कृत हुई हैं। दाक्षिणात्यमें बहुत पहलेसे जो हूण या होनमुद्रा प्रचलित है, कोई कोई अनुमान करते हैं, कि उसे पहले हूणसम्राटोंने ही चलाया। परन्तु शाहकोट और चीनोवट आदि स्थानोंसे जो सब प्राचीन हूणमुद्रा आविष्कृत हुई है, उनके साथ दाक्षिणात्यमें प्रचलित हूणमुद्रा बहुत कम मिलती जुलती है। हून देखो।

हूणगरि (हंगेरी) Hungary—यूरोपका एक राज्य। दानियूब नदी द्वारा यह देश ऊद्धर्व और निम्न हूणगरि इन दो भागोंमें विभक्त है। इसमें भी फिर ४८ प्रदेश हैं। यहांके भाषातत्त्वविद् लोग अनुमान करते हैं, कि हिमालयसे रूसराज्यके ओकटस्क तथा लापलैण्ड तकके अधिवासी जो जो भाषा व्यवहार करते हैं, उसका मूल

तातार भाषा है। हूणगिरि भाषा भी उसीके अन्तर्गत है। यूरोपमें हूण जातिके प्रभाव विस्तार और हूणगरि-राज्यकी प्रतिष्ठाके सम्बन्धमें जो इतिहास मिला है वह इस प्रकार है—

हिउङ्गनु नामक चीन इतिहासमें जिस शक्तिशाली जातिका उल्लेख मिलता है, शायद हूण उसीकी एक शाखा है। ४थी सदीमें इन लोगोंने यूरोप पर आक्रमण किया था। ये लोग पहले चीन-प्राचीरके पाससे ले कर कास्पियनसागर तक एक प्रबल शक्तिसम्पन्न जातिरूपमें रहते थे। परन्तु अन्तमें अराजकतासे जब लोगोंकी एकता और जातीय दृढ़ता शिथिल हो गई, तब इनकी एक शाखाने भाग कर ओरल नदीके पास उपनिवेश बसाया। ४थी सदीमें इन लोगोंने बलमीरके अधीन यूरोप पर आक्रमण कर दिया था। जिन सब दुर्द्धर्ष जातियोंने रोमसाम्राज्यके पतनमें सहायता पहुंचाई थी, हूण लोग उन्हींमेंसे एक थे। अष्ट्रगथोंका राज्य आक्रमण कर हूण लोगोंने उनके राजाको बार बार युद्धमें परास्त किया और अन्तमें उन्हें मार डाला। इसके बाद इन लोगोंने भिसिगथोंको परास्त किया। सम्राट् भालेबसने भिसिगथ लोगोंको थ्रेसमें रहनेका अधिकार दिया। ५० वर्ष तक रोमसाम्राज्यके विरुद्ध लड़नेसे जब हूणोंका जी ऊब आया, तब वे दानियुबके उत्तरस्थित जातियोंको काबूमें लाने लगे। इस समय, यहां तक कि इन लोगोंने रोमकोंको अन्यान्य जातियोंके विरुद्ध मदद पहुंचाई थी। परन्तु अन्तमें रोमकोंके व्यवहारसे क्रुद्ध हो कर हूण लोग उनके विरुद्ध खड़े हो गये। इस समय प्रसिद्ध वीर आटिला हूणोंके राजा हुए। उन्होंने रोमकोंके साथ मेल कर लिया। इस समय उन्होंने अपना राज्य स्काइदिया और पारस्य तक फैला लिया था। एक रोमक विसपकी विश्वासघातकता पर क्रुद्ध हो आटिलाने पूर्वरोमकसाम्राज्यके विरुद्ध यात्रा कर दी। उन्होंने दक्षिणमें थर्मोपोली, शालिपली और कुस्तुनतुनिया तकके सभी स्थान जीत लिये और अन्तमें युद्धव्ययके क्षतिपूरणस्वरूप मोटी रकम पेंठ कर घर लौटे। ४५१ ई०में उन्होंने पश्चिमकी ओर युद्धयात्रा की और वहीं वे प्रसिद्ध शालोंसेंमें कोमिस द्वारा परास्त हुए। इटलीकी चढ़ाईमें वे आगिलिया और मिनिसियाको तहस नहस कर अन्तमें पोप ल्युसे मिले और बादमें वहांसे पानोनियाको लौट गये। ४८१ ई०में वहीं पर उनकी मृत्यु हुई। मृत्युके साथ ही साथ उनका बड़ा साम्राज्य अधःपतनको प्राप्त हुआ। उनके पुत्र आपसमें लड़ झगड़ कर यादवोंकी तरह ध्वंस होने लगे। नेटाद नदीके किनारे एक घमसान लड़ाई छिड़ी जिसमें ३० हजार हूण और आटिलाके बड़े लड़के मारे गये। इसके बाद हूण लोग विच्छिन्न हो कर पूर्व यूरोपके भिन्न भिन्न देशमें दल बांध रहने लगे। एक दलने छोटे स्काइदिया और दूसरेने सर्बिया तथा बुलगेरियाको अधिकार किया। प्रधान शाखा ओरल नदीके पार्श्ववर्त्ती स्थानोंमें अर्थात् अपने आदिम देशमें जा कर बस गई थी। परवर्त्ती कालमें यूरोपके इतिहासमें हूण लोग बुलगेरीय कहलाते थे। इन लोगोंने दो शाखामें विभक्त हो फिर पूर्व रोमसाम्राज्य पर आक्रमण करना शुरू कर दिया। परन्तु अन्तमें वे लोग अरबोंसे परास्त हुए। ६३० ई०में क्रोरतके अधीन इन लोगोंने फिर स्वाधीन हो कर सम्राट् हिराक्लियससे मेल कर लिया। लेकिन उनकी मृत्युके बाद यह राज्य उनके पांच पुत्रोंमें बंट गया।

इस हूणजातिकी वासभूमि ही हूणगरि कहलाती है। पहले इस साम्राज्यका भूपरिमाण १०६२१६ वर्गमील था, महासमरके बाद अभी केवल ३५१८३ वर्गमील रह गया है। १९२० ई०की भर्साई संधिके बाद इस विस्तीर्ण साम्राज्यका अधिकांश जेकोश्लोभकिया, रोमानिया, युजोश्लाभिया और अष्ट्रियाके अन्तर्गत हुआ। वर्त्तमान कालमें इसकी सीमा इस प्रकार है,—उत्तरमें दानियुब, पूर्व पोजोनी, पूर्व और दक्षिणमें आलफोल्ड है। १९१० ई० तक इसकी जनसंख्या करीब २१ लाख थी, पर महासमरके बाद सिर्फ १० लाख रह गई है। इस राज्यके अधिकांश लोग रोमन कैथलिक धर्मावलम्बी हैं।

पहले पाननीयने, पीछे हूण, गथ, लम्बार्ड और अरबियोंने हूणगरिको अधिकार किया था। आखिर एशियासे मागियर नामक एक प्रबल जातिने आ कर यह देश दखल किया। १०वीं सदीमें इन लोगोंने योशुका धर्म अवलम्बन किया था। मागियर दलपति आरपादने

पहले पहल हूणगरि जीता था। उनके पुत्र गेइसाने ईसाधर्म ग्रहण किया। सेण्टष्टिभेनने ही पहले हूणगरिके अधिवासियोंमें खृष्टीय धर्म फैलाया था। उन्होंने ड्यूकको उपाधि परित्याग कर राजाकी उपाधि ग्रहण की और समतलप्रदेशमें अपनी गोटी अच्छी तरह जमाई।

हूणगरिके सम्भ्रान्त लोग अपने राजाकी अप्रतिहत क्षमताके विरोधी थे। राजाकी सहायतासे वे ही लोग राज्यशासन करते थे। जनसाधारणकी कोई क्षमता न थी, वे इस अभिजात संप्रदायकी गुलाम-प्रजा स्वरूप थे।

नेपल्सके २य चार्ल्सके साथ हूणगरिकी राजकुमारीका विवाह हो जानेसे हूणगरिका इतिहास इटलीके साथ मिल गया। जब हूणगरिके राजकुमार आण्ड्रूने नेपल्सकी रानी जोआनासे विवाह किया, तब नेपल्सके सिंहासन पर आण्ड्रू ही बैठे। परन्तु जोआनाके साथ उनकी नहीं पटती थी, इस कारण रानीने उन्हें मार डाला। भ्रातृहत्याका प्रतिहिंसा लेनेके लिये हूणगरिके राजा लुई जोआनाके विरुद्ध दलबलके साथ इटली जा धमके। परन्तु हूणगरिमें गोलमाल देख उन्हें अपना देश लौट आना पड़ा। लुईकी कन्यासे सिजिसमण्डने विवाह किया था। जब लुई अपुत्रक अवस्थामें मरे, तब सिजिसमण्ड हूणगरिके राजा हुए। सिजिसमण्डने अन्तमें अधिकारशून्य गौरव-युक्त सम्राट्का पद पाया था। हूणगरिकी राजकुमारीके मरनेके पीछे जब सिजिसमण्डने दूसरा विवाह किया, तब उनका हूणगरिका अधिकार अक्षुण्ण रह गया। यहां तक कि उन्होंने अपनी दूसरी स्त्रीकी संतान और जमाई अलवर्टको हूणगरिका सिंहासन दे दिया था। जब अलवर्टकी मृत्यु हुई उस समय रानी गर्भवती थी। हूणगरिके अभिजात वर्ग अपने राज्यमें अष्ट्रीयाराज-परिवारकी प्रधानता पर जलते थे, इस कारण उन लोगोंने पोलण्डके राजा उलाडिसलसको अपने यहां बुलाया। अब उलाडिसलस हूणगरिके राजा हुए। इस समय २य अमुरथके अधीन हूणगरिके सीमान्त पर धावा शुरू हो गया था। उलाडिसलस राणाके युद्धमें पराजित और निहत हुए। पीछे अभिजातवर्गने अलवर्टके छोटे लड़केको राजा बनाया। राज्यशासनका भार उस देशके सुयोग्य हुनिग्राडिसके हाथ सौंपा गया।

जब द्वितीय महम्मद कुस्तुनतुनियानोपल जीतनेके तीन वर्ष बाद दानियुवके तटस्थित प्रसिद्ध दुर्ग बेलग्रेड जीतनेकी कोशिश कर रहे थे, उसी समय हुणियाडिसने उन्हें परास्त किया। इस युद्धजयके कारण समस्त यूरोपको इस वीरकी कृतज्ञता स्वीकार करनी पड़ी थी। क्योंकि, इस युद्धमें यदि २य महम्मदकी जीत होती, तो समूचा यूरोप मुसलमान राजाके हाथ आ जाता। हुनियाडिस इस युद्धके बाद ही इस लोकसे चल बसे। राजा लाडिसलस भी अधिक दिन जीवित न रहे। अब न्यायतः इस राज्यके अधिकारी अष्ट्रियाके राजा ३य फ्रेडरिक हुए, परन्तु हूणगिरिके लोगोंकी उन पर उतनी श्रद्धा न थी। इस कारण उन लोगोंने मिल कर हुणियाडिसकी कृतज्ञताका स्मरण करते हुए उनके सुयोग्य पुत्र माथियसको राजसिंहासन पर बैठाया। माथियसने ३० वर्ष तक राज्य किया था। मुसलमान लोग कई बार उनसे परास्त हुए थे। १४९१ ई०में प्रेसबुर्गकी सन्धिशर्त्तके अनुसार हूणगरिने राजवंशके अवसानके बाद हूणगरि अष्ट्रियाराज्यमें मिला दिया।

अष्ट्रिया देखो।

हूणदेश—हिमालय-शैलमालाके मध्य चीन-अधिकारभुक्त तिब्बतका एक अंश। इसका दूसरा नाम नारी-खोरसुम है। यह शतद्रु नदीके ऊपर अववाहिका और कमलानदीके शिरोभाग तक विस्तृत है। इस स्थानके नामकरणके सम्बंधमें भिन्न भिन्न पाश्चात्य पण्डितोंने भिन्न भिन्न मत प्रकट किया है। विलसन साहबके मतसे हूनका अर्थ तुषार है, अर्थात् बर्फसे ढका हुआ देश होनेके कारण हूणदेश नाम पड़ा है। कप्तान ग्राची साहबके मतसे महाभारत और पुराणोक्त हूण जातिका देश होनेके कारण इसका हूणदेश नाम हुआ है। हूणगरिके पण्डित कोरसने भी यही मत समर्थन किया है। उनका कहना है, कि यही स्थान उन लोगोंके पूर्वपुरुषोंकी आदि वासभूमि है। रायल साहबके मतसे हूणका अर्थ स्वर्ण है, स्वर्ण उत्पन्न करनेवाली भूमि होनेके कारण हूणदेश नाम हुआ है। यहांके अधिवासी अभी हुणिया कहलाते हैं।

हूणिया लोग साधारणतः भ्रमणशील हैं। बहुतेरे गाय, भेड़, बकरे आदि पालते हैं। इनका सरल और मृदु स्वभाव है। इन लोगोंमें एक स्त्री अनेक स्वामी ग्रहण कर सकती है। इनका आचार व्यवहार बहुत कुछ लादकवासी भोटोंसे मिलता जुलता है। ये लोग चाय और सत्तू खा कर जीवनधारण करते हैं। प्रत्येक आदमी प्रायः ३ वर्षका खाद्य संग्रह कर रखता है। इनका ग्राम तंबू खेमाके सिवा और कुछ भी नहीं है। वृटिशभारतसे हूणदेश जानेमें पांच गिरिसङ्कट पड़ते हैं, वे सब संकट प्रायः वर्फसे ढके रहते हैं। केवल ज्यैष्ठसे आश्विन तक यहां सौदागरी माल आ जा सकता है। इस समय भी लासावासीको चीन-राजपुरुषसे पास लेना पड़ता है, नहीं तो कोई भी आ जा नहीं सकता। गारतोकसे १०० मील उत्तरपूर्व हूणदेशके थोकजलङ्ग नामक भूभागके पास सोना मिलता है। सर्पण नामक एक स्वर्णाध्यक्षकी देखरेखमें यहां सोना धुलाईका काम चलता है। प्रत्येक खानसे उन्हें वर्षमें २५ औंस सोना मिलता है। यहांका बुकनी सोना डेढ़ भर १६ रु०में मिलता है। तिब्बतकी राजधानी लासा नगरोमें ही इसकी खपत अधिक है। हूणिया लोग मानससरोवरमें जा कर भी सोना संग्रह करते हैं।

हूणलिपि (सं० पु०) लिपिभेद। ललितविस्तरमें इस लिपिका उल्लेख है।

हूत (सं० त्रि०) ह्वे-क्त, सम्प्रसारण। आहूत, जिसे बुलाया गया हो।

हूति (सं० स्त्री०) आह्वान, बुलाना।

हूदा (हिं० पु०) हूल देखो।

हून (सं० पु०) १ साधु आचारवर्जित म्लेच्छ जातिविशेष। २ मान्द्राज प्रदेशमें प्रचलित एक प्रकारको प्राचीन स्वर्णमुद्रा। यह वजनमें ५० ग्रेन होती है। एक एकका मूल्य ३॥०) रु० होता है। अङ्गरेज लोग इसीको 'पागोडा' कहते थे।

हूनिया (हिं० स्त्री०) तिब्बतके पश्चिम भागमें मिलनेवाली एक प्रकारकी भेंड़।

हूब (हिं० स्त्री०) हुब्ब देखो।

हूबहू (अ० वि०) ज्योंका त्यों, ठीक वैसा ही।

हूम् (सं० अव्य०) १ प्रश्न। २ वितर्क। ३ सम्मति। ४ क्रोध। ५ भय। ६ निन्दा। ७ अवज्ञा।

हूय (सं० पु०) आह्वान, आवाहन।

हूर (अ० स्त्री०) मुसलमानोंके स्वर्गकी अप्सरा।

हूरव (सं० पु०) शृगाल, गीदड़।

हूरहूण (सं० पु०) १ देशविशेष। २ हूणोंकी एक शाखा जिसने यूरोपमें जा कर हलचल मचाई थी।

हूराहूरी (सं० स्त्री०) एक त्योहार या उत्सव जो दिवालीके तीसरे दिन होता है।

हूर्च्छन (सं० क्ली०) हूर्च्छ भावे ल्युट्। कौटिल्य, कुटिलता।

हूल (हिं० स्त्री०) १ लासा लगा कर चिड़िया फंसानेका बांस। २ हूक, शूल। ३ भाले, डंडे, छुरे आदिकी नोक या सिरेको जोरसे ठेलने अथवा भोंकनेकी क्रिया। (स्त्री०) ४ कोलाहल, हल्ला। ५ हर्षध्वनि, आनन्दका शब्द। ६ फटकार, ललकार। ७ आनन्द, खुशी।

हूलना (हिं० क्रि०) १ सिरे या फलको जोरसे ठेलना या धंसाना, गोदना। २ शूल उत्पन्न करना।

हूला (हिं० पु०) शस्त्र आदि हूलनेको क्रिया या भाव।

हूश (हिं० वि०) १ असभ्य, जङ्गली। २ अशिष्ट, बेहूदा।

हूह (हिं० स्त्री०) युद्धनाद, कोलाहल।

हूहू (सं० पु०) गन्धर्वविशेष।

हूहू (हिं० पु०) अग्निके जलनेका शब्द, धायं धायं।

हृच्छय (सं० पु०) १ कामदेव। (त्रि०) २ हृदयशायी।

हृच्छूल (सं० क्ली०) हृदयजात शूलरोग। हृदय, पार्श्व और वस्ति आदि स्थानोंमें शूलरोग होता है।

वायु, कफ और पित्त द्वारा अवरुद्ध तथा रस द्वारा वर्द्धित हो कर उच्छ्वासका अवरोधक हृदयदेशमें शूलरोग पैदा करता है। यही शूलरोग हृच्छूल कहलाता है। यह शूल अत्यन्त यन्त्रणादायक है। गरुड़पुराणके १८६वें अध्यायमें इसकी चिकित्साका विषय लिखा है।

हृच्छोक (सं० पु०) हृदयका शोक।

हृच्छोष (सं० पु०) हृदयके अन्तर्निहित शोष, हृदयके भीतरकी सूजन।

हृज्ज (सं० त्रि०) हृदयजात, जो हृदयसे उत्पन्न हो।

हृणिया (सं० स्त्री०) हृणीया, निन्दा, तिरस्कार।

हृणीया (सं० स्त्री०) निन्दा।

हृव (सं० स्त्री०) १ हृदय, वक्षःस्थल। (त्रि०) २ हरणकारी, लेने या चुरानेवाला।

हृत (सं० त्रि०) हृ-क्त। १ जिसे ले गये हों, पहुंचाया हुआ। २ हरण किया हुआ, लिया हुआ।

हृति (सं० स्त्री०) हृ-क्तिन्। १ हरण, ले जाना। २ नाश। ३ लूट।

हृत्कम्प (सं० पु०) १ हृदयकम्पन, दिलको धड़कन। २ अत्यन्त भय, जीका दहलना।

हृत्ताप (सं० पु०) हृदयस्थ तापः। हृदयका उत्ताप।

हृत्पङ्कज (सं० क्ली०) हृदयस्थित पद्म।

हृत्पिण्ड (सं० पु०) हृदयका कोश या थैली, कलेजा।

हृत्पीड़न (सं० क्ली०) हृदयदेशका पीड़न, छातीका दर्द।

हृत्पीड़ा (सं० स्त्री०) हृद्रोग, वक्षःस्थलकी पीड़ा।

हृत्पुण्डरीक (सं० क्ली०) हृत्पद्म, हृदयरूप पद्म।

हृत्पुष्कर (सं० क्ली०) हृदयरूप पद्म।

हृत्प्रतिष्ठ (सं० त्रि०) हृदयस्थित। (शुक्लयजु० ३४।६)

हृत्प्रिय (सं० पु०) हृदयका प्रिय, दिली दोस्त।

हृत्स्तम्भ (सं० पु०) हृदयस्तम्भन।

हृद् (सं० क्ली०) १ हृदय। २ मन।

हृदंसनि (सं० त्रि०) हृदयका संभक्ता।

हृदय (सं० क्ली०) १ वक्षःस्थल, चेतनास्थान। सुश्रुतमें लिखा है, कि हृदय अधोमुख पद्मकी तरह अवस्थित है। यह पद्म जब खिलता है, तब जीव जग उठता है और जब तक नहीं खिलता तब तक निद्राके वशीभूत रहता है; हृदय ही चेतनास्थान है। प्राणवहा धमनियां इसोको आश्रय किये हुए हैं।

भावप्रकाशमें लिखा है, कि हृदय अर्थात् वक्ष चतुर्थ अङ्ग है। इस अङ्गमें पुरुष और स्त्री दोनोंके हो दो दो स्तन रहते हैं। परन्तु नारियोंके स्तन जवानीमें मोटे होते हैं। गर्भवती और प्रसूता स्त्रियोंके स्तन दूधसे भरे होते हैं। इसी वक्षःस्थलमें हृदय अवस्थित है। अतएव यह वक्षका एक उपाङ्ग है। यह उपाङ्ग अधोमुख रह कर जाग्रत अवस्थामें पद्मकी तरह प्रकाशित और निद्रित अवस्थामें मुद्रित रहता है। यह जीवोंका उत्कृष्ट चेतनास्थान है, इस कारण यह तमोगुण द्वारा अभिव्याप्त होनेसे प्राणी निद्राभिभूत होते हैं। हृदयको उत्कृष्ट चेतनाका स्थान कहनेका तात्पर्य यह कि समूचा शरीर चेतनास्थान होने पर भी हृदय ही सर्व प्रधान है। क्योंकि, इसमें उपघातसे जीवोंकी मृत्यु होती है।

इस हृदयमें दश धमनियां हैं। सभी धमनियां महामूला और महाफला हैं। छः अङ्ग अर्थात् दो हाथ, दो पैर, मस्तक, मध्यदेह और ज्ञान; दर्शन, स्पर्शन, श्रवण, घ्राण और रसना ये पञ्चेन्द्रिय; रूप, स्पर्श, शब्द, गंध और रस ये पञ्च इन्द्रियार्थ; सहन, आत्मा और मनोविषय, ये सभी हृदय-संस्थित हैं। जिस प्रकार घरके बोम बगें छत, छौनी आदिके आश्रय हैं, उसी प्रकार हृदय भी षड़ङ्गादि पदार्थोंका अवलम्बन है। हृदय आहत होनेसे मूर्च्छा आती है, हृदय भिन्न होनेसे मृत्यु होती है, क्योंकि जीवात्मा स्पर्शज्ञान है, अर्थात् जो स्पर्शन द्वारा समस्त ज्ञेय वस्तु जानते हैं और शरीर धारण करनेके कारण धारिक कहलाते हैं वही जीवात्मा हृदयमें अवस्थित हैं।

जीवात्मा शरीरके अन्यान्य स्थानोंमें भी हैं। परन्तु वह शरीर धारणमें या ज्ञानोत्पत्ति विषयमें प्रधान नहीं है। क्योंकि, उन सब स्थानोंके उपघातसे भी शरीरधारण और ज्ञानोत्पत्ति देखी जाती है। परन्तु हृदयके उपघातसे शरीररक्षा और ज्ञानोत्पत्ति नहीं होती। अतएव इससे साबित हुआ, कि हृदय ही जीवात्माका प्रधान आश्रय है।

फिर श्रेष्ठ ओजः पदार्थ भी हृदयाश्रित है तथा चैतन्य भी हृदयमें अवस्थित है। इस प्रकार महत्गुणविशिष्ट होनेके कारण हृदयका महत् और अर्थ नाम पड़ा है। हृदय ही इन धमनियोंका मूल होनेके कारण महामूल है और हृदयकी धमनियां शरीरके सभी स्थानोंमें ओजको पहुंचाती हैं। ओजःपदार्थ द्वारा प्राणी जीवित रहते और उसके नहीं रहनेसे मृत्युमुखमें पतित होते हैं। इत्यादि रूपमें ओजोवहन करनेके कारण इसका महाफला नाम पड़ा है। (चरक, सूत्रस्था० ३ अ०)

तन्त्रसारमें षट्चक्रभेद-स्थलमें अनाहत नामक बारह दलका एक पद्म है और उस पद्मके बारह दलोंमें ब, भ म, य, र, ल, ड, फ, क, ट, ह, क्ष, ये बारह अक्षर हैं।

हृदयका शुभाशुभ लक्षण—समोन्नत, मांसल और पृथु अर्थात् विस्तृत हृदय शुभजनक तथा खड़े रोएंवाला और शिराल अर्थात् नसीला हृदय अशुभ माना गया है। (गरुड़पु० ६६ अ०)

२ अन्तःकरणका रागात्मक अंग; प्रेम, हर्ष, शोक, करुणा, क्रोध आदि मनोविकारोंका स्थान। ३ अन्तःकरण, मन। ४ विवेकबुद्धि, अन्तरात्मा।

५ किसी वस्तुका सारभाग। ६ तत्त्व, सारांश। ७ गुह्य बात, गूढ़ रहस्य। ८ अत्यन्त प्रिय व्यक्ति, प्राणाधार।

हृदयक्रम (सं० पु०) हृदयकी क्रान्ति।

हृदयग्रन्थि (सं० पु०) हृदयका बन्धन।

हृदयग्रह (सं० पु०) हृदयका शूल या ऐंठन, कलेजा फड़कनेका रोग।

हृदयग्राह (सं० पु०) मनोहर, सुन्दर।

हृदयग्राही (सं० त्रि०) १ मनको मोहित करनेवाला। २ रुचिकर, भानेवाला।

हृदयङ्गम (सं० क्ली०) १ युक्तियुक्त वाक्य। (त्रि०) २ हृदयगत, मनमें बैठा हुआ, जिसका सम्यक् बोध हो गया हो। ३ उपयुक्त, लायक। ४ मनोहर, सुन्दर।

हृदयचौर (सं० पु०) मनको मोहनेवाला।

हृदयच्छिद् (सं० त्रि०) हृदयच्छेदकारी, हृदयविदारक।

हृदयज (सं० त्रि०) हृदयसे उत्पन्न, जो अन्तःकरणसे पैदा हुआ हो।

हृदयज्ञ (सं० त्रि०) हृदयगत भावसे जो अवगत हों।

हृदयदाहिन् (सं० त्रि०) हृदयका दाहजनक, हृदयपीड़क।

हृदयनगर—मध्यप्रदेशके मण्डला जिलेका एक बड़ा गांव। प्रायः १६०४ ई०में राजा हृदय शाहने यह नगर बसाया। यहां बंजार नदीके किनारे प्रति वर्ष एक बड़ा मेला लगता है। इस मेलेमें नाना प्रकारकी वस्तु बिकनेको आती हैं।

हृदयनाथ शर्मन्—मिथिलावासी एक विख्यात स्मार्त।

हृदयनारायणदेव—जटादुर्गवासी एक सामन्तराज। इन्होंने 'हृदयप्रकाश' नामक एक संस्कृत ग्रन्थकी रचना की।

हृदयनिकेत (सं० पु०) कामदेव, मनसिज।

हृदयपीड़ा (सं० स्त्री०) हृदयकी पीड़ा, हृद्रोग।

हृदयपुण्डरीक (सं० क्ली०) हृत्पद्म।

हृदयपुरुष (सं० पु०) हृदयका स्पन्दन या धड़कन।

हृदयप्रमाथी (सं० त्रि०) १ मनको क्षुब्ध या चंचल करनेवाला। २ मन मोहनेवाला।

हृदयप्रिय (सं० त्रि०) अतिशय प्रिय, अत्यन्त प्यारा।

हृदयराम—ईशावास्योपनिषच्चन्द्रिका नामक ईशोपनिषद्-भाष्यके रचयिता।

हृदयराममिश्र—रसरत्नाकर-भाष्यके रचयिता।

हृदयरोग (सं० पु०) हृद्रोग, हृदयकी पीड़ा।

हृदयवत् (सं० त्रि०) हृदयालु, सहृदय।

हृदयवल्लभ (सं० पु०) प्रेमपात्र, प्रियतम।

हृदयवान् (हिं० वि०) १ जिसके मनमें प्रेम, करुणा आदि कोमल भाव उत्पन्न हों, सहृदय। २ भावुक, रसिक।

हृदय-विदारक (सं० त्रि०) १ अत्यन्त शोक उत्पन्न करनेवाला। २ अत्यन्त करुणा या दया उत्पन्न करनेवाला।

हृदयवृत्ति (सं० स्त्री०) हृदयकी वृत्ति, अन्तःकरणकी वृत्ति।

हृदयवेधी (सं० त्रि०) १ मनको अत्यन्त मोहित करनेवाला। २ अत्यन्त शोक उत्पन्न करनेवाला। ३ बहुत अप्रिय या बुरा लगनेवाला।

हृदयव्याधि (सं० पु०) हृदयपीड़ा, हृदयका रोग।

हृदयशाह—बुन्देला अधिपति छत्रशालके पुत्र। इन्होंने अपने नाम पर प्रायः १६५४ ई०को हृदयनगर बसाया। १७०३ ई०में इन्होंने गड़ाकोट अधिकार किया। गड़ाकोट और छत्रशाल देखो। आप अनेक हिन्दी कवियोंके प्रतिपालक थे।

हृदयशूल (सं० क्ली०) हृच्छूल। शूलरोग देखो।

हृदयशोक (सं० पु०) हृच्छोक, हृदयका शोक।

हृदयसंघट्ट (सं० पु०) हृदयकी गतिका रुक जाना, दिल एकबारगी बेकाम हो जाना।

हृदयसन्धि (सं० पु०) हृदयगत सन्धि।

हृदयस्थ (सं० त्रि०) हृदयस्थित, जो हृदयमें रहता हो।

हृदयस्थान (सं० क्ली०) वक्षःस्थल। पर्याय—कोड़, उरः, वक्षः, वत्स।

हृदयस्पर्शी (सं० त्रि०) १ हृदय पर प्रभाव डालनेवाला, दिल पर असर करनेवाला। २ चित्तको द्रवीभूत करनेवाला, जिससे मनमें दया या करुणा हो।

हृदयहारी (सं० त्रि०) मन मोहनेवाला, जीको लुभानेवाला।

हृदयानन्द विद्यालङ्कार—ज्योतिःसागरसंग्रहके रचयिता।

हृदयाभरण—एक संस्कृत पण्डित, कालिदासके पुत्र, देवदास और शङ्करके भाई। इन्होंने गीतगोविन्दतिलकोत्तम नामक गीतगोविन्दटीकाकी रचना की।

हृदयाराम—श्रौतसिद्धान्तके रचयिता।

हृदयालु (सं० त्रि०) हृदय (हृदयाच्चालुरन्य तरस्यां। पा ५।२।१२२) इति काशिकोक्तेरालुः। १ सहृदय, भावुक। २ सुशील।

हृदयिक (सं० त्रि०) हृदयालु, सहृदय।

हृदयेश (सं० पु०) १ भर्त्ता, स्वामी। २ प्रेमपात्र, प्यारा।

हृदयेश्वर (सं० पु०) हृदयस्य ईश्वरः। पति, स्वामी।

हृदयेशा (सं० स्त्री०) भार्या, पत्नी।

हृदयोन्मादिनी (सं० त्रि०) १ हृदयको उन्मत्त या पागल करनेवाली। २ मनको मोहनेवाली। (स्त्री०) ३ सङ्गीतमें एक श्रुति।

हृदयोपश (सं० पु०) हृदयस्थित मांस।

हृदय्य (सं० त्रि०) हृदयभव। जो हृदयमें हो।

हृदावर्त्त (सं० पु०) हृदयस्थित आवर्त्त, हृदयकी भौंरी।

हृदि (सं० क्ली०) हृद्, हृदय। (ऋक् ६।५३।६)

हृदिक (सं० पु०) कृतवर्माके पिता। (भारत)

हृदिका (सं० स्त्री०) कृपाचार्यकी माता।

हृदिकासुत (सं० पु०) हृदिकाके पुत्र कृपाचार्य।

हृदिनी (सं० स्त्री०) ह्रदिनी, नदी।

हृदिशय (सं० त्रि०) हृदयमें शयनकारी।

हृदिस्पृश (सं० त्रि०) मनोहर, मनोरम।

हृदिस्पृश (सं० त्रि०) हृद्य, मनोहर।

हृदीक (सं० पु०) कृतवर्माके पिता।

हृदुत्क्लेद (सं० पु०) हृदयका उत्क्लेद। (सुश्रुत)

हृद्ग (सं० त्रि०) हृद्गत, हृदयमें जानेवाला।

हृद्गत (सं० त्रि०) १ आन्तरिक, मनका। २ समझ या ध्यानमें आया हुआ, मनमें बैठा हुआ। ३ प्रिय, रुचिकर।

हृद्दर (सं० पु०) हृत्पीड़ा, हृद्रोग।

हृद्गोल (सं० पु०) पर्वतविशेष।

हृद्गोलीय (सं० पु०) त्रिगर्त्तादिक्रमसे हृद्गोलपर्वतनिवासी।

हृद्ग्रन्थ (सं० पु०) हृद्व्रण, विद्रधि रोग।

हृद्ग्रन्थि (सं० पु०) विद्रधिरोग।

हृद्ग्रह (सं० पु०) हृत्पीड़ा।

हृद्दाह (सं० पु०) हृदयका दाह, हृदयकी ज्वाला।

हृद्द्वार (सं० क्ली०) हृदयरूप द्वार।

हृद्धात्री (सं० स्त्री०) हितावली लता।

हृद्धित (सं० त्रि०) हृदयका हितकर।

हृद्भेद (सं० क्ली०) तन्त्रविशेष।

हृद्य (सं० पु०) १ गुड़त्वक्, दारचीनी। २ जीरक, जीरा। ३ वशकृद् वेदमन्त्र। ४ कपित्थ, कैथ। ५ दधि, दही। ६ मधुक, महुएकी शराब। (त्रि०) ७ हृदयका, भीतरी। ८ हृदयको रुचनेवाला, अच्छा लगनेवाला। ९ सुन्दर, सुहावना।

हृद्यगन्ध (सं० क्ली०) क्षुद्र जीरक, सफेद जीरा। २ सौवर्च्चल लवण, सोंचर नमक। ३ बिल्व वृक्ष, बेलका पेड़।

हृद्यगन्धा (सं० स्त्री०) १ जातीपुष्प लता। २ अजमोदा।

हृद्यगन्धि (सं० क्ली०) क्षुद्र जीरक, सफेद जीरा।

हृद्यवर्ग (सं० पु०) महाकषाय वर्गभेद। यह वर्ग, जैसे—आम, आमड़ा, अनार और खट्टा नीबू, ये सब कसैली वस्तु हृदयको हितकर मानी गई है।

हृद्यता (सं० स्त्री०) प्रणय, प्रेम, सद्भाव।

हृद्यांशु (सं० पु०) चन्द्रमा।

हृद्या (सं० स्त्री०) १ वृद्धि नामक ओषधि। २ सल्लकी वृक्ष, सलईका पेड़। ३ नागवल्ली, पान। ४ जीरक वृक्ष, जीरा। ५ शतपत्रीपुष्प, एक प्रकारका गुलाब। ६ जटामांसी। ७ छागी, बकरी।

हृद्रुज (सं० स्त्री०) हृदयकी पीड़ा, हृद्रोग।

हृद्रोग (सं० पु०) हृदयपीड़ा, हृदयका रोग।

अत्यन्त उष्ण द्रव्यसेवन, अति गुरुपाक तथा कषाय और अत्यन्त तिक्तरसभोजन, अत्यन्त परिश्रम, वक्षःस्थलमें आघात प्राप्ति, पहलेका खाया हुआ पदार्थ अच्छी तरह जीर्ण नहीं होने पर भी पुनर्वार भोजन, अध्यशन, मलमूत्रका वेगधारण तथा अत्यन्त चिन्ता, इन सब कारणोंसे हृद्रोग उत्पन्न होता है। सभी समय छातीमें दर्द होना और उसका धड़धड़ाना, इस रोगका साधारण लक्षण है। पूर्वोक्त कारणोंसे सभी दोष दूषित हो कर हृदयमें पहुंचते हैं जिससे रस दूषित हो जाता है। रसके दूषित होनेसे हृदयमें तरह तरहकी वेदना उत्पन्न होती है, इसीसे इसको हृद्रोग कहते हैं। यह रोग पांच प्रकारका है—वातज, पित्तज, श्लेष्मज, त्रिदोषज और क्रमिज।

इस रोगमें हृदयमें तीव्र वेदना, सूई चुभने-सी यातना, कण्डू, वमनवेग, मुखसे कफस्राव, शूल, हृदयस्थ रसका उद्गीरण, अंधकारदर्शन, अरुचि, दोनों चक्षुकी श्याववर्णता और सूजन, ये सब लक्षण दिखाई देते हैं। हृद्रोगमें क्लान्तिबोध, देहको अवसन्नता, भ्रम और शोष ये सब उपद्रव होते हैं। यह रोग होने पर बड़ी सावधानीसे चिकित्सा करनी होती है। नहीं तो इसमें मृत्यु होनेकी संभावना है। त्रिदोषज और क्रमिज हृद्रोग ही विशेष कष्टसाध्य है।

अर्जुनवृक्षके छिलकेका चूर्ण घी, दूध अथवा गुड़की चाशनीके साथ पान करनेसे हृद्रोग शीघ्र ही प्रशमित होता है। हर्रे, वच, रास्ना, पीपल, सोंठ, कचूर और पुष्करमूल इनका चूर्ण समान भागमें ले कर उपयुक्त मात्रामें सेवन करनेसे यह रोग दूर होता है।

जो वायुप्रधान हृद्रोगी है उसे तेल और सेंधा नमकके साथ दशमूलके काढ़ेमें फलका चूर्ण मिला कर उसीसे वमन करावे। अचिरजात हृद्रोगमें लङ्घन करना कर्त्तव्य है। परन्तु वायुकी अधिक प्रबलता रहनेसे लङ्घन न करे। इस रोगमें विरेचनको भी विधि है।

पैत्तिक हृद्रोगमें गंभारीके फल और मुलेटीको जलमें सिद्ध कर उसमें मधु, चीनी और गुड़ डाल दे। पीछे उसमें मैनफलका चूर्ण मिला कर रोगीको वमन करावे। इसके बाद मधुर द्रव्यके साथ सिद्धघृत कषाय और पित्तज्वरोक्त सभी औषधोंका इसमें प्रयोग करना उचित है। इस रोगमें शीतल प्रलेप और विरेचन दिया जाता है।

कफज हृद्रोगमें वच और नीमकी छालका काढ़ा पिला कर रोगीको वमन करावे। इसमें पिप्पल्यादि चूर्णका प्रयोग किया जा सकता है। सान्निपातिक हृद्रोगमें पहले लङ्घन बताया है। इसमें तीनों दोषोंके शान्तिकर अन्नपानादि प्रदान तथा दोषविशेषमें प्रबलता, हीनता या मध्यावस्थाका विचार कर यथाविहित चिकित्सा करनी होती है। कुटका चूर्ण मधुके साथ चाटनेसे हृद्रोग दूर होता है। गेहूंका चूर्ण एक भाग, अर्जुनकी छालका चूर्ण १ भाग, गुड़ २ भाग, इन्हें एक साथ मिलावे। पीछे उसमें थोड़ा तिलतेल और घी तथा थोड़ा जल मिला कर पिलानेसे हृद्रोग आदि नाना प्रकारके रोगोंकी शान्ति होती है।

क्रमिज हृद्रोगमें पहले तीन दिन दही और तिलपिष्टक मिला हुआ स्निग्ध मांसान्न भोजन करा कर चातुर्जातादि द्वारा सुगन्धित किया हुआ सेंधव, जीरा, चीनी और अधिक विड़ङ्गविशिष्ट विरेचक पान करावें। इसके बाद धान्याम्ल अनुपान करना कर्त्तव्य है। विड़ङ्ग कुट चूर्णके साथ गोमूत्र पीनेसे सभी क्रमि गिर पड़ते हैं। अनन्तर विड़ङ्गयुक्त यवान्न सेवन करना उचित है। हरीतकी ५०; सचललवण २ पल, इन दोनोंके साथ घृतपाक कर सेवन करनेसे यह रोग शीघ्र दूर होता है। इसके सिवा श्वदंष्ट्राद्यघृत, बलाद्यघृत, अर्जुनघृत, ककुभादि चूर्ण, कल्याणसुन्दररस, चिन्तामणिरस, हृदयार्णवरस, विश्वेश्वररस आदि औषध इस रोगमें हितकर है। (भैषज्यरत्ना० हृद्रोगाधि०)

बृहच्छागलाद्यघृत आदि भी इस रोगके लिये विशेष उपकारी है।

रूक्ष या अन्यान्य वायुवर्द्धक द्रव्यभोजन, उपवास, परिश्रम, रात्रिजागरण, अग्नि या आतपसेवन और मैथुन इस रोगमें विशेष अनिष्टजनक है।

हृद्रोगवैरी (सं० पु०) अर्जुन वृक्ष।

हृद्वटक (सं० पु०) हृदो वटकः। जठर, आमाशय।

हृद्बोध (सं० पु०) विशेषरूप अवगति, अच्छी तरह ज्ञान कार।

हृद्व्रण (सं० पु०) विद्रधिरोग, हृदयमें व्रण।

हृन्मन्त्र (सं० पु०) मन्त्रभेद।

हृन्मोह (सं० पु०) हृदयका मोह।

हृल्लक्ष्मी (सं० स्त्री०) क्षुद्रतुलसी।

हृल्लास (सं० पु०) १ उपस्थित वमनकी तरह उत्क्लेश। २ हिक्कारोग। हिक्का देखो।

हृल्लासक (सं० पु०) हृल्लास।

हृल्लेख (सं० पु०) १ ज्ञान। २ तर्क। ३ वाह्यसुख। ४ वासना।

हृल्लेखा (सं० स्त्री०) उत्सुकता, आकुल इच्छा।

हृषि (सं० स्त्री०) १ हर्ष, आनन्द। २ कांति, चमक। ३ झूठा आदमी।

हृषित (सं० लि०) १ विस्मृत। २ प्रोत। ३ प्रहत। ४ हृष्टरोम, पुलकित। ५ प्रणत। ६ वर्मित।

हृषी (सं० पु०) अग्नि और सोम।

हृषीक (सं० क्ली०) विषयग्राहक चक्षुरादि इन्द्रिय।

हृषीकनाथ (सं० पु०) विष्णु।

हृषीकेश (सं० पु०) १ विष्णु। शङ्कराचार्यका कहना है, कि क्षेत्रज्ञ या परमात्मरूपमें वे इन्द्रियके अधिपति हैं या सभी इन्द्रियां उनके वशमें हैं, इसीसे उनका हृषीकेश नाम पड़ा है। २ श्रीकृष्ण। ३ पूसका महीना। ४ हरिद्वारके पास एक तीर्थस्थान। यह हिमालयकी एक एक ऊंची चोटी पर अवस्थित है। यह वैष्णवों-का एक प्रधान पुण्यतीर्थ है।

हृषीकेश्वर (सं० पु०) कृष्ण, विष्णु।

हृषीवत् (सं० लि०) हर्षयुक्त, प्रसन्न।

हृषु (सं० लि०) १ हर्षित होनेवाला, प्रसन्न। २ झूठ बोलनेवाला। (पु०) ३ अग्नि। ४ सूर्य। ५ चन्द्रमा।

हृष्ट (सं० लि०) १ आनन्दयुक्त, हर्षित। २ रोमाञ्चित, पुलकित। ३ प्रहसित। ४ विस्मित। ५ प्रतिहत।

हृष्टपुष्ट (सं० लि०) मोटा ताजा, तगड़ा।

हृष्टमानस (सं० लि०) हृष्टचित्त, प्रसन्न।

हृष्टरोमन् (सं० लि०) रोमाञ्चित, पुलकित।

हृष्टवृक (सं० पु०) हिरण्याक्ष दैत्यके नौ पुत्रोंमेंसे एक।

हृष्टि (सं० स्त्री०) हृषि-क्तिन्। १ प्रसन्नता, हर्ष। २ मान, गर्वसे फूलना, इतराना।

हृष्टियोनि (सं० पु०) एक प्रकारका नपुंसक, ईर्ष्योक नपुंसक।

हृष्यका (सं० स्त्री०) सङ्गीतमें एक मूर्च्छना जिसका स्वर ग्राम इस प्रकार है—प ध नि स रे ग म। ध नि स रे ग।

हें (सं० अव्य०) सम्बोधनका शब्द, पुकारनेमें नाम लेने-के पहले कहा जानेवाला शब्द।

हेउंतो (हिं० स्त्री०) देशावरी रुई।

हें हें (हिं० पु०) १ धोरेसे हंसनेका शब्द। २ हीनता-सूचक शब्द, गिड़गिड़ानेकी आवाज।

हेंगा (हिं० पु०) जुते हुए खेतकी मिट्टी बराबर करनेका पाटा, मैड़ा।

हेकटैथस—सुप्राचोन ग्रीक ऐतिहासिक। इन्होंने ही अपने इतिहासमें सबसे पहले भारतवर्षका उल्लेख किया है।

हेकड़ (हिं० वि०) १ हृष्टपुष्ट, मजबूत। २ अक्खड़, उजड्ड। ३ तौलमें पूरा, जो वमनमें दबता न हो। ४ प्रचण्ड, प्रबल।

हेकड़ी (हिं० स्त्री०) १ उग्रता, अक्खड़पन। २ बला-त्कार, जबरदस्ती।

हेका (सं० स्त्री०) हिक्का, हिचकी।

हेठ (हिं० पु०) बाधा, पीड़ा।

हेड (अं० पु०) ऊंचा अफसर, प्रधान।

हेड क्वाटर (अं० पु०) १ वह स्थान या मुकाम जहां सेनाका प्रधान रहता हो। २ वह स्थान जहां कोई मुख्यतः रहता या कारोबार करता हो, सदर। ३ किसी सरकार या अधिकारका प्रधान स्थान।

हेडिंग (अं० स्त्री०) वह शब्द या वाक्य जो विषयके परिचयके लिये किसी समाचार, लेख या प्रबंधके ऊपर दिया जाय, शीर्षक।

हेड़ज (सं० पु०) क्रोध, गुस्सा।

हेड़म्ब—बङ्गालके पूर्वप्रान्तमें अवस्थित एक देश। अभी यह कछाड़ नामसे मशहूर है। भविष्यब्रह्मखण्ड और देशावलिविवृतिके मतानुसार यह स्थान श्रीहट्टके उत्तरमें

अवस्थित है। रणचण्डी देवीके मन्दिरके लिये यह स्थान प्रसिद्ध है।

हेड़स (सं० क्ली०) क्रोध, गुस्सा। (ऋक् १।२४।१४)

हेड़ा (हिं० पु०) मांस, गोश्त।

हेड़ावुक (सं० पु०) अश्वविक्रयकारी, घोड़ा बेचनेवाला।

हेड़ी (हिं० स्त्री०) चौपायोंका समूह जिसे बनजारे बिक्रीके लिये ले कर चलते हैं। (पु०) २ व्याध, शिकारी।

हेड़ शहरिहर—शिवाद्वैतसिद्धान्तप्रकाशिकाके रचयिता।

हेति (सं० स्त्री०) १ अस्त्र, हथियार। २ सूर्यकिरण। ३ अग्निशिखा, आगकी लपट। ४ शिखा, चोटी। ५ तेज। ६ साधन। ७ वज्र, भाला। ८ धनुषकी टंकोर। ९ यन्त्र, औजार। १० अंकुर, अंखुवा। (पु०) ११ प्रथम राक्षस राजा जो मधुमास या चैत्रमें सूर्यके रथ पर रहता है। यह प्रहेतिका भाई और विद्युत्केशका पिता कहा गया है। १२ एक असुरका नाम।

हेतिक (सं० पु०) हेति स्वार्थे कन्। हेति देखो।

हेतिमत् (सं० त्रि०) हेतियुक्त, अस्त्रविशिष्ट।

हेतु (सं० पु०) हि (कमिमनिजनिगाभायाहिभ्यश्च। उण् १।७३) इति तु। १ कारण, वीज, मूल। २ प्रयोजन। ३ न्यायके मतसे व्यापकज्ञापक, वह जिससे व्याप्य पदार्थका ज्ञान होता है। नव्य न्यायमें हेतु, साध्य और पक्षकी ही विशेष आलोचना है। किसी विषयका अनुमान करनेमें हेतुका प्रयोजन होता है, विना हेतुके कोई भी विषय प्रमाणित नहीं होता। 'पर्वतो वह्निमान् धूमात्' धूम-हेतु पर्वत वह्निमान् है, पर्वत पर धूम देख कर वह्निका अनुमान होता है, अतएव पर्वतको वह्निमान् प्रमाणित करनेमें धूम हेतु द्वारा ही वह प्रमाणित होता है। जिस किसी विषयका अनुमान करना होता है, उसमें हेतुकी आवश्यकता है। यह हेतु फिर सत् और असत्के भेदसे दो प्रकारका है। सत् हेतुके द्वारा ही अनुमान होता है, जिस हेतु द्वारा अनुमान साधित होता है, उसे असत् हेतु कहते हैं।

हेतुका दूसरा नाम लिङ्ग है। क्योंकि, उससे साध्य लिङ्गित अर्थात् ज्ञात होता है। पक्षमें हेतु रहता है। उस हेतु द्वारा साध्यका अनुमान होता है। जिससे साध्यका अनुमान होता है उसका नाम पक्ष है। पर्वत पर वह्निका अनुमान होनेके कारण पर्वत पक्ष है। सिद्धि अर्थात् साध्य निश्चयका अभाव पक्षता है। अनुमितिके पहले पर्वत पर वह्निका निश्चय नहीं होता। इस लिये पर्वत पर पक्षता है। सिद्धि अर्थात् साध्य निश्चय रहने पर भी साधनकी इच्छा या अनुमितिको इच्छा होनेसे अनुमिति हो सकती है।

कोई विषय प्रमाणित करनेमें उसका हेतु दिखलाना आवश्यक है। विना हेतु दिखलाये कोई भी विषय प्रमाणित नहीं होता। यथार्थमें जो हेतु होगा, वह निःसन्देह रूप साध्य प्रमाणसे कुज्झटिका धूमकी तरह दिखाई देता है। अतएव यह देखनेसे क्या समुद्रमें वह्निका अनुमान होगा? नहीं, कभी नहीं होगा। क्योंकि, कुज्झटिका हेतुकी तरह प्रतीयमान होने पर भी यथार्थमें वह हेतु नहीं है। दुष्ट हेतु या हेत्वाभास है, इसलिये ऐसे हेतुस्थलमें साध्यका प्रमाण नहीं होगा।

(वैशेषिक और न्यायद०) प्रमाण देखो।

चरकके विमानस्थानमें लिखा है, कि प्रतिज्ञाकी उपलब्धि कारण ही हेतु है अर्थात् जिसके द्वारा प्रतिज्ञाकी उपलब्धि होती है उसीको हेतु कहते हैं। साध्यनिर्देशका नाम प्रतिज्ञा है। यह हेतु चार प्रकारका है, प्रत्यक्ष, अनुमान, ऐतिह्य और उपमान। इन चारों हेतु द्वारा जो उपलब्ध होता है उसे तत्व कहते हैं।

४ व्याकरणशास्त्रमें लिखा है, 'षष्ठी हेतुप्रयोगः' हेतु शब्दके प्रयोगमें षष्ठी विभक्ति होती है। ५ तैजस धातुविशेष।

हेतुक (सं० पु०) १ कारण। (त्रि०) २ कारणसंबंधी।

हेतुभेद (सं० पु०) ज्योतिषमें ग्रहयुद्धका एक भेद।

हेतुमान् (हिं० वि०) १ जिसका कुछ हेतु या कारण हो। (पु०) २ वह जिसका कुछ कारण हो, कार्य।

हेतुरूपक (सं० क्ली०) रूपक अलङ्कारविशेष। जहां प्रकृत विषय अर्थात् वर्णनीय विषयमें गाम्भीर्यादि हेतु द्वारा आरोप होता है, वहां हेतु रूपक होगा।

हेतुवाद (सं० पु०) हेतोर्वादः। १ हेतुकथन, तर्कविद्या। २ कुतर्क, नास्तिकता।

हेतुवादिक (सं० त्रि०) हेतुवादी।

हेतुवादिन् (सं० त्रि०) हेतु' वदति वद-णिनि। १ तार्किक, दलील करनेवाला। २ कुतर्की, नास्तिक।

हेतुविद्या (सं० स्त्री०) तर्कविद्या, हेतुशास्त्र।

हेतुशास्त्र (सं० क्ली०) तर्कशास्त्र।

हेतुहिल (सं० पु०) एक बहुत बड़ी संख्या।

हेतुहेतुमद्भाव (सं० पु०) कार्यकारणभाव, कारण और कार्यका संबंध।

हेतुहेतुमद्भूतकाल (सं० पु०) व्याकरणमें क्रियाके भूतकालका एक भेद। इसमें ऐसी दो बातोंका न होना सूचित होता है जिनमें दूसरी पहली पर निर्भर होती है। जैसे,—यदि तुम ध्यान लगा कर पढ़ते, तो परीक्षामें अवश्य उत्तीर्ण होते।

हेतूत्प्रेक्षा (सं० स्त्री०) उत्प्रेक्षालङ्कार। जहां हेतु द्वारा उत्प्रेक्षा होती है, वहां यह अलङ्कार होता है।

उत्प्रेक्षा देखो।

हेतूपमा (सं० स्त्री०) उपमालङ्कारविशेष। जहां हेतु द्वारा उपमा होती है, वहां यह अलङ्कार हुआ करता है।

हेत्वन्तर (सं० क्ली०) प्रकृति हेतुमें वाच्यविकार, हेतुकथन। (चरक, वि० ८ अ०)

हेत्वपह्नुति (सं० स्त्री०) वह अपह्नुति अलंकार जिसमें प्रकृतके निषेधका कुछ कारण भी दिया जाय।

हेत्वाभास (सं० पु०) हेतुदोष। जो यथार्थमें हेतु नहीं है, फिर भी हेतुकी तरह प्रतीत होता है उसे हेत्वाभास कहते है। न्यायदर्शनमें हेत्वाभास पांच प्रकारका कहा है, अनैकान्त, विरुद्ध, असिद्ध, प्रतिपक्षित और कालात्ययोपदिष्ट। साधारण, असाधारण और अनुपसंहारीभेदसे अनैकान्तिक हेत्वाभास भी तीन प्रकारका है। जो कुछ कुछ हेतुकी तरह मालूम होता है अर्थात् पहले हेतुके जैसा प्रतीत होता है, पर यथार्थमें हेतु नहीं है उसीको हेत्वाभास कहते हैं। गौतमने न्यायदर्शनमें इस हेत्वाभासके पांच नाम बताये हैं, यथा—सव्यभिचार, विरुद्ध, प्रकरण, सम, साध्यसम, अतीतकाल या कालातीत। सव्यभिचारका दूसरा नाम अनैकान्तिक है। (भाषापरिच्छेद)

कणाद वैशेषिकदर्शनमें हेत्वाभासको तीन प्रकारका बताया है, अप्रसिद्ध, असन् और सन्दिग्ध। जिस हेतुकी प्रसिद्धि नहीं है, उसका नाम अप्रसिद्ध है। जो हेतु पक्षमें या साध्यके अधिकरणमें नहीं रहता, उसका नाम असन् है। इसका दूसरा नाम विरुद्ध भी है। साध्यके साथ जिस हेतुकी व्याप्ति नहीं है, साध्याभावके साथ व्याप्ति है, वही हेतु विरुद्ध है। अतएव यह अप्रसिद्धके अन्तर्गत है। जो हेतु पक्षमें विद्यमान नहीं रहता, वह असन् है। 'ह्रदो द्रव्यं धूमात्' यहां धूम रूप हेतु ह्रदरूप पक्षमें विद्यमान है, इसलिये वह असन् है।

विषाणित्व हेतु करके गोत्वसाधन करनेमें विषाणित्व हेतु सन्दिग्ध या अनैकान्तिक है। क्योंकि, गोत्वसाध्य, विषाणित्व हेतु है। गोपशुके जिस प्रकार विषाण है, महिषादिके भी उसी प्रकार शृङ्ग हैं, अतएव विषाणित्व हेतु गोत्वरूप साध्यके अधिकरण गो पशुमें है, इससे साध्यके साथ सम्बन्ध है। साध्यगोत्वके अभावका अधिकरण महिषादिमें है, इस कारण साध्यभावके साथ भी सम्बन्ध है। अतः विषाणित्व हेतु अनैकान्तिक है। विषाणित्व इस हेतु द्वारा गोत्वका निश्चय नहीं हो सकता, गोत्वमें सन्देह मात्र हो सकता है, इस कारण वह हेतु सन्दिग्ध है। ये सब हेत्वाभास वैशेषिक मत-सिद्ध हैं। इन सब हेतु द्वारा साध्यका निश्चय नहीं होता, इससे ये सब हेतु दुष्ट हेतु हैं।

चरक विमानस्थानके ८वें अध्यायमें भी हेत्वाभासका विशेष विवरण लिखा है।

हेनजादा—ब्रह्मदेशमें इरावती विभागके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० १७° २०' से १८° ३१' उ० तथा देशा० ९४° ४८' से ९५° ४७' पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण २८७० वर्गमील है। इसके उत्तरमें प्रोम जिला, पूर्वमें इरावती नदी, दक्षिणमें थरावदी और वेसिन जिला तथा पश्चिममें आराकन-योमा शैलमाला है। यह जिला पश्चिममें इरावतीसे ले कर एक विस्तृत समभूमि है। मध्य और दक्षिण पूर्वांशको छोड़ समूचा जिला एक बांधसे घिरा हुआ है। आराकान पर्वतमाला

ही इस जिलेका प्रधान शैल है। मायानङ्गके पास इस शैलमालाकी ऊंचाई समुद्रकी तहसे ४००३ फुट है। इसका ढालुवां भाग गहरा और घने जङ्गलसे ढका है। इरावती नदी उत्तरसे दक्षिणकी ओर जिलेके बीचसे हो कर बह गई है।

इस जिलेमें ५ शहर और २३४३ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ५ लाखके करीब है। बर्मीकी संख्या सैकड़े पीछे ८७ है। यहांकी प्रधान उपज धान है। जिले भरमें अभी ४ स्पेशल, २५ सिकेण्ड्री, ३०० प्राइमरी और ५०० एलिमेण्ट्री स्कूल हैं। स्कूलके अलावा ५ अस्पताल और १ चिकित्सालय है।

२ उक्त जिलेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० १७° ३६´से तथा देशा० ९५° ३०´पू०के मध्य इरावतीके दाहिने किनारे अवस्थित है। जनसंख्या २५ हज़ारके लगभग है। १८७४ ई०में म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। यहां एक एङ्गलो-वर्नाक्युलर स्कूल तथा अन्यान्य स्कूल है। स्कूलके अलावा एक म्युनिसिपल अस्पताल है जिसमें २० रोगी रखे जाते हैं।

हेम (सं० क्ली०) हि-मन्। १ सुवर्ण, सोना। २ माषक परिमाण, एक माशेकी तौल। ३ कृष्णवर्णाश्व, बादामी रंगका घोड़ा। ४ बुद्धका एक नाम। ५ स्वर्णपिण्ड, सोनेका टुकड़ा। ६ हिम, पाला। ७ ययातिवंशज रुषद्रथके पुत्रका नाम। (विष्णुपु० ४।१८।१) ८ बुधग्रह।

हेमक (सं० क्ली०) १ स्वर्ण, सोना। (त्रि०) २ सुवर्णयुक्त। ३ सुवर्णनिर्मित, सोनेका।

हेमकक्षा (सं० त्रि०) स्वर्णयुक्त कक्ष।

हेमकन्दल (सं० पु०) प्रवाल, मूंगा।

हेमकमल (सं० क्ली०) सुवर्णकमल, स्वर्णपद्म।

हेमकर (सं० पु०) १ शिव। २ सूर्य।

हेमकर्तृ (सं० पु०) सुवर्णकार, सुनार।

हेमकान्ति (सं० स्त्री०) १ दारुहरिद्रा, वन-हलदी। २ आंबा हलदी। ३ सुवर्णकी कान्ति। (त्रि०) ४ स्वर्णद्युति, सोनेके समान कान्तिवाला।

हेमकार (सं० पु०) हेमकर्त्ता, स्वर्णकार, सुनार।

हेमकिञ्जल्क (सं० क्ली०) नागकेशरपुष्प।

हेमकूट (सं० पु०) हिमालयके उत्तरका एक पर्वत। यह किंपुरुषवर्ष और भारतवर्षकी सीमा पर स्थित है। इसकी लम्बाई नब्बे हज़ार योजन और चौड़ाई दो हज़ार योजन है। (भागवत ५।१६ अ०)

हेमकूट्य (सं० पु०) जनपदविशेष। बृहत्संहिताके कूर्मविभागस्थलमें लिखा है, कि अग्निकोणमें कोशल, कलिङ्ग, श्मश्रुधर और हेमकूट्य आदि देश अश्लेषादि तीन नक्षत्रमें अवस्थित है। (बृहत्सं १४ अ०)

हेमकृष्ट (सं० स्त्री०) स्वर्णकर्णणयोग्य। (रस० चि० ३अ०)

हेमकेतकी (सं० स्त्री०) स्वर्णकेतकी।

हेमकेली (सं० पु०) अग्नि, आग।

हेमकेश (सं० पु०) शिव, महादेव।

हेमक्षीरी (सं० स्त्री०) स्वर्णक्षीरी, सोनाखिरनी। इसके मूलको ओक कहते हैं।

हेमगन्धिनी (सं० स्त्री०) रेणुका नामक गन्ध द्रव्य।

हेमगर्भ (सं० त्रि०) १ जिसके बीचमें सुवर्ण हो। आद्यश्राद्धमें तिलदानस्थलमें हेमगर्भ तिल दान करना होता है। (पु०) २ उत्तर दिशाका एक पर्वत।

हेमगर्भपोट्टली (सं० स्त्री०) यक्ष्मरोगकी एक औषध।

हेमगिरि (सं० पु०) १ सुमेरुपर्वत। २ नैऋतकोणस्थित देशभेद। (बृहत्सं० १४।१६)

हेमगुह (सं० पु०) असुरभेद। (भारत)

हेमगौर (सं० पु०) १ किङ्किरात वृक्ष। (त्रि०) २ स्वर्णवत् गौरवर्णयुक्त।

हेमगौराङ्ग (सं० त्रि०) स्वर्ण तुल्य गौरवर्णाङ्गविशिष्ट।

हेमघ्न (सं० पु०) सीसा धातु।

हेमघ्नी (सं० स्त्री०) हरिद्रा, हलदी।

हेमचन्द्र—१ दाक्षिणात्यवासी एक सुप्रसिद्ध जैन पण्डित। ये हेमचन्द्राचार्य और हेमाचार्य नामसे जनसाधारणमें परिचित थे। गुजरातके सुविख्यात चौलुक्यराज सिद्धराज और कुमारपालके मन्त्रित्व तथा राजनैतिक विषयमें भी इन्होंने विशेष पाण्डित्य दिखा कर यश उपार्जन किया था।

दाक्षिणात्यके अर्द्धाष्टम (अहमदाबाद) प्रदेशके अन्तर्गत धन्धुक नगरमें चाचिग नामक एक व्यवसायी रहते थे। उनकी स्त्रीका नाम पाहिनी था। पाहिनीने १०८९ ई०की कार्त्तिकी पूर्णिमाको एक पुत्र प्रसव किया। पुत्रका नाम चाङ्गदेव रखा गया।

जब बालक चाङ्गोदेवने आठवें वर्षमें कदम बढ़ाया तब चाचिगने कुलप्रथानुसार उसे दीक्षा दी। दीक्षित पुत्रका नाम सोमचन्द्र रखा गया। शास्त्रानुशीलन करते करते उनकी बुद्धि बहुत प्रखर हो गई और ज्ञानज्योति दिन पर दिन बढ़ने लगी। यह देख कर प्रसिद्ध जैनाचार्य देवचन्द्रने उनका नाम बदल कर हेमचन्द्र रखा। तभीसे चाङ्गोदेव हेमचन्द्र नामसे ही प्रसिद्ध हुए। ११११० ई०में हेमचन्द्रने इक्कीसवें वर्षमें पदार्पण किया। इस समय वे शास्त्रों और सिद्धान्तोंमें पारदर्शी हो गये। देवमूर्त्तिस्वरूप देवचन्द्रने उन्हें सूरिकी उपाधि दे कर उनके ज्ञानको मर्यादा रखी।

इस समय एक दिन हेमचन्द्रके साथ संयोगवशतः चौलुक्यराज सिद्धराजकी भेंट हुई। हेमचन्द्रके वाक्यालाप पर मुग्ध हो राजाने उन्हें एक सुपण्डित समझा और उनका अच्छा सम्मान भी किया। अपने ज्ञान और बुद्धिके बल वे जैनधर्मके कट्टर पक्षपाती हो गये। वे शास्त्रकी मर्यादा-रक्षा कर जैन धर्माचार्योंका बड़ी श्रद्धासे प्रतिपालन करते थे। इस विषयमें उनके साथ जैनमतविरोधी महाराज सिद्धराजका विरोध खड़ा हो गया। राजाको जब मालूम हुआ, कि हेमचन्द्र राजानुग्रहके भिखारी नहीं हैं, अपने धर्म पर एकदम अटल हैं तब उनके प्रति जो बुरा वर्त्ताव किया था, उस पर उन्हें बड़ा पछतावा हुआ। इस प्रकार आत्मग्लानि होनेसे राजाने हेमचन्द्रसे क्षमा मांगी।

अनन्तर एक दिन राजा सिद्धराज हेमचन्द्रको ले कर सोमनाथपाटनमें गये। यहां आ कर उन्होंने एक नये उपायसे लिङ्गपूजा की। सिद्धराजके राज्यकालमें हेमचन्द्रने राजाका नाम जोड़ कर 'सिद्ध हेमचन्द्र' नामक एक व्याकरण तथा उसके सूत्र और वृत्तिकी रचना की। उस व्याकरणमें राजाका कोई विशेष उल्लेख नहीं रहनेसे सभाके पण्डितोंने इसका प्रतिवाद किया। इस पर हेमचन्द्रने, प्रति परिच्छेदके अन्तमें राजाका गुणगरिमाज्ञापक एक एक श्लोक रच डाला। इसी समय वे 'हैमी नाममाला' या 'अभिधानचिन्तामणि अनेकार्थ नाममाला'की रचना कर जनसाधारणमें प्रसिद्ध हो गये। इसके बाद ही इन्होंने व्याकरणमें सोलाङ्किवंशके इतिहासकी शिक्षा देनेके लिये 'द्व्याश्रयकोष' नामक एक ग्रन्थकी रचना की थी।

राजा कुमारपालने सिंहासन पर बैठ कर प्रसिद्ध पण्डित हेमचन्द्रसूरिको बड़े सम्मानसे राजसभामें आसन प्रदान किया था। स्वयं राजा कुमारपालने उनसे दीक्षा ली थी। तभीसे राजधर्मके साथ उनका सम्बन्ध बढ़ गया और सभी विषयोंमें उन्होंने अधिक प्रधानता लाभ की।

जब हेमचन्द्रके पाण्डित्य पर राजा कुमारपाल आकृष्ट हो रहे थे, तब एक दिन राजाने पण्डितवरसे पूछा 'मैं एक महान् धर्मकीर्त्ति स्थापन करना चाहता हूं, कृपया बतावें, कि कौन काम करनेसे मेरी पुण्यकीर्त्ति अक्षय होगी?' हेमचन्द्रने बड़े उत्साहसे जवाब दिया 'महाराज! सोमनाथ-मन्दिरका जीर्णोद्धार करना एक बड़ा काम है, आप उसका सम्पादन करके पुण्य और यश लूटें।' इस प्रकार हेमचन्द्र राजाके चित्त पर धीरे धीरे दखल जमाने लगे। मन्दिरका संस्कारकार्य समाप्त होने पर उन्होंने राजाको 'अहिंसा' व्रतमें दीक्षित किया। अनन्तर सभाके अन्यान्य ब्राह्मण और राजपुरोहित हिंसाप्रणोदित हो हेमाचार्यके अधःपतनका उपाय सोचने लगे।

इस समय एक सुयोग उपस्थित हुआ। सोमनाथमन्दिरका पुनर्संस्कार होनेके बाद राजा उसे देखने और देवमूर्त्तिकी अभिषेकक्रिया पर्य्यवेक्षण करने स्वयं सोमनाथ जानेका विचार करने लगे। ब्राह्मणोंने राजाका क्रोध बढ़ानेके लिये झूठमूठ उनसे कहा, 'हेमाचार्य सोमनाथ जाना नहीं चाहते हैं।' यह सुन कर राजा अवाक् हो रहे। उन्होंने स्वयं हेमाचार्यको वहां जानेके लिये निमन्त्रण भेजा। हेमचन्द्रने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया, पर कहला भेजा, कि वे संन्यासी हैं, पैदल चलना ही उनका कर्त्तव्य है, राहमें गिर्नारका दर्शन करते हुए वे शीघ्र ही सोमनाथ-मन्दिरमें राजासे मिलेंगे। तदनुसार राजा सोमनाथ गये और कुछ दिन रहनेके बाद भी जब हेमाचार्य नहीं आये, तब वे उनका संवाद पानेके लिये बड़े उत्सुक होने लगे। इसी समय ब्राह्मणोंसे किसीने आ कर उनका मृत्यु-संवाद सुनाया। किसीने यह भी कहा, कि जैन लोग शिवपूजा नहीं करते, इसीलिये कोई

हीला लगा कर हेमाचार्य यहां नहीं आये, कहीं दूसरी जगह चले गये होंगे। इस प्रकार जब वे लोग हेमाचार्य-के विरुद्ध राजाके कान भर रहे थे, उसी समय हेमचन्द्र वहां पहुंच गये। उन्होंने देवमूर्त्तिके सामने खड़े हो कर निम्नोक्त श्लोकसे भगवान्‌को प्रणाम किया—

"भवबीजाङ्कुरजनना रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णु वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै॥
यत्र तत्र समये यथा तथा योऽसि सोऽस्यभिधया यया तया।
वीतदोषकलुषः स चेद्भवानेक एव भगवन्नमोऽस्तु ते॥"

राजा कुमारपाल हेमचन्द्रको इस प्रकार महेश्वरकी आराधना करते देख मुग्ध हो रहे। उनकी प्रार्थनाके अनुसार राजाने राजप्रासादमेंकी हिन्दू-देवमूर्त्तियोंके मध्य शान्तिनाथ तीर्थङ्करकी प्रतिमूर्त्ति प्रतिष्ठित की। राजा-का चित्त हेमचन्द्रके प्रति धीरे धीरे आकृष्ट हो रहा था। अन्तमें उन्होंके उपदेश और प्रार्थनानुसार राजाने सबों-के सामने प्रकाश्य भावमें जैनधर्मकी दीक्षा ग्रहण की।

अनन्तर राजाने फरमान निकाला, कि उनके राज्यमें कोई भी जीव-हिंसा नहीं कर सकता। जो इस प्रकार अवैधभावमें पशुहिंसा करेंगे उन्हें राजदण्ड मिलेगा। अनहिलवाड़के एक बनियेने एक यूक (चीलर)को मारा था, इस कारण उसकी अतुल धनसम्पत्ति ले कर राजाने युका-विहारकी प्रतिष्ठा की थी। यथार्थमें इसी समय गुर्जरप्रदेशमें ब्राह्मण्यधर्मका विलोप हुआ और जैनधर्मकी प्रधानता स्थापित हुई।

कुमारपालके राज्यकालमें हेमचन्द्रने संस्कृत और प्राकृतमें कुछ प्रसिद्ध ग्रंथ लिखे। उनमेंसे अध्यात्मोप-निषद् या योगसूत्र, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, परिशिष्ट-पर्व्व, प्राकृतशब्दानुशासन, द्व्याश्रय (द्वैयाशराय), छन्दोनुशासन, लिङ्गानुशासन, देशी नाममाला और अलङ्कारचूड़ामणि प्रधान हैं। ११७२ ई०को ८४ वर्षकी उमरमें हेमचन्द्रका तिरोभाव हुआ। उनका देह-संस्कार हो जाने पर कुमारपालने गुरुदेवके प्रति अत्यन्त भक्ति दिखला कर उस चिताभस्मको कपालमें लगाया। पीछे राजाके अनुचर और अन्यान्य लोग वहां आ कर चिता भस्म लेने लगे। देखते देखते उस जगह एक बड़ा-सा गड्ढा बन गया। उसका नाम 'हेम-खाद' रखा गया।

इन्होंने जो अभिधान प्रणयन किया है, वह भी हेम-चन्द्र नामसे प्रसिद्ध है।

हेमचन्द्र वन्द्योपाध्याय—एक प्रसिद्ध और श्रेष्ठ बंगाली कवि। १२४५ बङ्गाब्दकी ६ठी वैशाखको हुगली जिलेके गुलिटा ग्राममें इनका जन्म हुआ था। पिता कैलासचंद्रके पुत्रके पढ़ाने लिखानेकी ओर उतना ध्यान नहीं था।

९म वर्ष बीतने पर मामा इन्हें कलकत्तेके खिदिरपुरमें ले आये और हिन्दूकालेजमें भर्त्ती करा दिया। हेमचन्द्रने हिन्दूकालेजमें जुनियर परीक्षा दे कर वृत्ति पाई। १८५८ ई०में इन्होंने सिनियर और एफ० ए० तथा १८६२ ई०में बी० एल० परीक्षा पास की। इसके बाद वे हवड़ा और श्रीरामपुरमें मुन्शफके पद पर नियुक्त हुए। इसी समय इनके पिताका देहान्त हुआ। कुछ दिन पीछे वे कल-कत्ता भवानीपुरमें विवाह कर खिदिरपुरमें चिरस्थायी-भावसे रहने लगे।

मुन्शफका काम शुरू करनेके एक मास बाद गव-र्मेण्टने इन्हें दूर देशान्तर जानेका हुकुम दिया। परन्तु स्नेहमयी मातामहीने इन्हें दूर देश जानेसे रोका। अतः मुन्शफके कामसे इन्हें इस्तीफा देना पड़ा। तभीसे स्वाधीनचेता हेमचन्द्रने वकालती पकड़ी।

कुछ समय बाद ये 'गवर्मेण्ट सिनियर 'प्लीडर'के पद पर चुने गये। इसी समयसे इनके कवित्वका विकाश आरम्भ हुआ है।

१८६१ ई०को हिन्दू कालेजमें पढ़ते ही समय हेम-चन्द्रकी प्रवृत्ति कविता लिखनेकी ओर झुकी थी। वह प्रतिभा दिन पर दिन बढ़ती चली गई। इसके कुछ समय बाद ही उनकी 'चिन्तातरङ्गिणी' प्रकाशित हुई। इसकी भाषा सरल और प्राञ्जल तथा शान्तिरसपूर्ण थी। यह पुस्तक विश्वविद्यालयकी प्रथम परीक्षाकी पाठ्यरूपमें निर्वाचित हुई। १८७२ ई०में इनकी कवित्व-प्रतिभाकी ज्योति 'भारतसङ्गीत' में खूब चमक उठी थी। १२७२ बङ्गाब्दकी २१वीं वैशाख-को इनका द्वितीय ग्रन्थ 'वीर-बाहुकाव्य' प्रकाशित हुआ। इसके कुछ समय बाद ही कवितावलीका विकाश हुआ। इस कवितावलीमें इनके भारतसङ्गीत फिरसे छापे गये।

अनन्तर 'आशाकानन', 'छायामयी', 'दशमहाविद्या' आदिका प्रचार हुआ। इसके बाद ही इनको काव्य-कलाका कीर्त्तिस्तम्भ और बङ्गसाहित्यभण्डारको उज्ज्वलरत्न 'वृत्रसंहार' मुद्रित हुआ। कहीं कहीं वृत्रसंहारका कवित्वविकाश प्रसिद्ध कवि मधुसूदनके मेघनादवधकी उक्तिसे श्रेष्ठ है। 'चित्तविकाश' कविवरकी अन्तिम कीर्त्ति है। यह अन्धावस्थामें काशीधाममें रहते समय लिखा गया था।



हेमचन्द्र वन्द्योपाध्याय।

उपार्जित धनका यथेच्छव्यवहार करके बुढ़ापेमें इन्हें भारी अर्थकष्ट हुआ था। इस समय दैव विड़म्बनासे ये अंधे हो गये, इस कारण कविका अंतिम जीवन बड़ा ही कष्टमय हो उठा। जिन्होंने वकालतीके समय बहुत रुपये कमाये, उन्हीं'को आज गवर्मेण्टकी ओरसे सिर्फ २५)रु० मासिक वृत्ति मिलने लगी। १३१० बङ्गाब्दकी ११वीं जेठ (१९०३ ई० मईमास)में इनका देहान्त हुआ।

हेमचूर्ण (सं० क्ली०) सोनेकी बुकनी।

हेमज (सं० पु०) वङ्ग, रांगा।

हेमजीवन्ती (सं० स्त्री०) पीत जीवन्ती, स्वर्णजीवंती।

हेमज्वाल (सं० पु०) हेमवर्णा ज्वाला यस्य। अग्नि, आग। (शब्दमाला)

हेमज्वालालङ्कृत (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद।

हेमतरु (सं० पु०) धुस्तूर, धतूरा।

हेमतार (सं० क्ली०) तुत्थ, तूतिया।

हेमतारक (सं० त्रि०) तुच्छ, नीच।

हेमताल (सं० पु०) जनपदविशेष। वृहत्संहितामें लिखा है, कि यह जनपद उत्तरको ओर २४, २५ और २६ नक्षत्रमें अवस्थित है। (वृहत्सं० १४।२८)

हेमतुला (सं० स्त्री०) तौलमें किसीके बराबर सोनेका दान, सोनेका तुलादान।

हेमदत्ता (सं० स्त्री०) अप्सराभेद। (हरिवंश)

हेमदीनार (सं० पु०) स्वर्णमुद्रा, अशरफो।

हेमदुग्ध (सं०) उडुम्बर वृक्ष, यज्ञडुमर, गूलर।

हेमदुग्धक (सं० पु०) १ उडुम्बर वृक्ष, गुलरका पेड़। (त्रि०) २ पीतवर्ण क्षीरयुक्त, जिसमें पीला दूध हो।

हेमदुग्धा (सं० स्त्री०) स्वर्णक्षीरी।

हेमदुग्धिन् (सं० पु०) यज्ञोडुम्बर वृक्ष, गूलरका पेड़।

हेमदुग्धी (सं० स्त्री०) स्वर्णक्षीरी।

हेमधन्वा (सं० पु०) ग्यारहवें मनुके एक पुत्रका नाम।

हेमधान्यक (सं० पु०) १ तीन रत्तीकी तौल। २ तिलका पौधा।

हेमन् (सं० क्ली०) १ स्वर्ण, सोना। (रघु० ३।१०) २ धुस्तूर, धतूरा। ३ केशर। ४ हिम, पाला। (पु०) ५ बुधग्रह।

हेमनाथरस (सं० पु०) प्रमेह और बहुमूत्ररोगकी एक उत्कृष्ट औषध। (भैषज्यरत्ना० सोमरोगाधि०)

हेमनाभि (सं० पु०) स्वर्णनाभि, वह रथ जिसका धूरा सोनेका हो।

हेमनेत्र (सं० पु०) यक्ष। (भारत सभाप०)

हेमन्त (सं० पु० क्ली०) ऋतुविशेष, अगहन और पूसके महीने। पर्याय—हैमन, उष्मासह, शरदन्त, हिमागम।

हेमन्त ऋतु स्निग्ध और शीतल है। इस समय प्रायः सभी द्रव्य मधुरभावापन्न तथा प्राणियोंका जठरानल प्रदीप्त रहता है। इस ऋतुमें पित्तका उपशम

तथा वायु और कफ कुपित होता है। अतएव इस ऋतुमें ऐसी वस्तुका खाना उचित है जो वायु और कफको रोक सके।

इस ऋतुमें एक पहरके भीतर भोजन, अम्ल द्रव्य, मधुर द्रव्य, लवण रसयुक्त द्रव्यभोजन, तैलादि अभ्यङ्ग, रौद्र-सेवन, व्यायाम, गोधूम, इक्षु विकृति, शालितण्डुल, माषकलाय, मांस, पिष्टान्न, नये चावलका भात, तिल, मृगनाभि, गुग्गुल, कुंकुम, अगुरु, शौचादि क्रियामें उष्ण जल, स्निग्ध द्रव्य, स्त्रीसंसर्ग तथा गुरु और उष्ण अर्थात् पशमादि निर्मित वस्त्र, ये सब द्रव्य हितकर हैं। (भावप्र०) हेमन्त कालमें जो जाड़ेसे वचनेके लिये अग्निदान करते हैं उन्हें श्रेष्ठ गति प्राप्त होती है।

हेमन्तनाथ (सं० पु०) कपित्थ, कैथ।

हेमपर्वत (सं० पु०) १ सुमेरु पर्वत। (हलायुध) २ दानके लिये सोनेकी राशि।

हेमपिङ्गल (सं० त्रि०) स्वर्णाभ पिङ्गलवर्णयुक्त।

हेमपुष्कर (सं० क्ली०) हेमपद्म, हेमकमल।

हेमपुष्प (सं० क्ली०) १ अशोकपुष्प। २ जवापुष्प। ३ अशोक। ४ नागकेशर। ५ अमलतास, गिरमाला। ६ चम्पक, चंपा।

हेमपुष्पक (सं० पु०) १ चम्पक वृक्ष, चंपेका पेड़। २ लोध्र, लोध।

हेमपुष्पिका (सं० स्त्री०) १ स्वर्णयूथिका, सोनजुही। २ गुड़हर।

हेमपुष्पी (सं० स्त्री०) १ मञ्जिष्ठा, मजीठ। २ स्वर्णजीवनी। ३ इन्द्रवारुणी, ग्वाल ककड़ी। ४ स्वर्णुली, अमलतास। ५ मुषली, मूसली कंद। ६ कण्टकारी, भटकटैया।

हेमप्रभ (सं० त्रि०) सुवर्ण सदृश प्रभाविशिष्ट।

हेमप्रभ सूरि—एक विख्यात जैन ज्योतिर्विद्, देवेन्द्रसूरिके शिष्य। इन्होंने त्रैलोक्यप्रकाश और लग्नशास्त्र प्रणयन किये।

हेमप्रभा (सं० स्त्री०) विद्याधरी।

हेमफला (सं० स्त्री०) स्वर्णकदली, एक प्रकारका केला।

हेममय (सं० त्रि०) १ हेमस्वरूप। २ सुवर्णमय। ३ सुवर्णनिर्मित।

हेममाला (सं० स्त्री०) १ यमपत्नी। २ सोनेकी माला। ३ स्वर्णस्रज्, सोनेका हार।

हेममालिन् (सं० पु०) १ सूर्य। २ एक राक्षस जो खरका सेनापति था। (रामायण ३।४०।२०) (त्रि०) ३ सुवर्णमालाविशिष्ट, सुवर्णहारयुक्त।

हेममित्र (सं० क्ली०) स्फटिकारी, फिटकरी।

हेमयूथिका (सं० स्त्री०) स्वर्णयूथिका, सोनजुही।

हेमरागिणी (सं० स्त्री०) हरिद्रा, हलदी।

हेमरेणु (सं० पु० स्त्री०) स्वर्णरेणु, सोनेकी धूल।

हेमल (सं० पु०) १ स्वर्णकार, सोनार। २ कृकलास, गिरगिट। ३ प्रस्तरभेद, कसौटी। ४ मधूरनिष्पाव।

हेमलता (सं० स्त्री०) १ स्वर्णजीवन्ती। २ सोमलता। ३ ब्राह्मीशाक।

हेमलम्ब (सं० पु०) षष्टिसंवत्सरविशेष। बृहस्पतिकी गतिके अनुसार सप्तम पितृयुगके प्रथमवर्षका नाम हेमलम्ब है। यह वर्ष अशुभ है। इस वर्षमें ईतिभय और अत्यन्त वारिवर्षण होता है। (वृहत्सं० ८।३९-४०)

हेमवत् (सं० त्रि०) हेमविशिष्ट, सुवर्णयुक्त।

हेमवती (सं० स्त्री०) १ स्वर्णजीवन्ती। २ वचा। स्वर्णक्षीरिणी।

हेमवर्ण (सं० पु०) १ गरुड़के पुत्र। २ बुद्धभेद। (त्रि०) ३ सुवर्ण सदृश वर्णविशिष्ट, सुनहरा।

हेमवर्णवती (सं० स्त्री०) दारुहरिद्रा।

हेमवल (सं० क्ली०) मौक्तिक, मोती।

हेमवल्ली (सं० स्त्री०) स्वर्णजीवन्ती, पीली जीवन्ती।

हेमव्याकरण (सं० क्ली०) जैनाचार्य हेमचंद्ररचित एक व्याकरण। हेमचन्द्र देखो।

हेमशङ्ख (सं० पु०) विष्णु।

हेमशिखा (सं० स्त्री०) स्वर्णक्षीरी, भरभाँड़।

हेमशीत (सं० क्ली०) स्वर्णक्षीरी, भरभाँड़।

हेमशृङ्ग (सं० पु०) विष्णु।

हेमसागर (सं० पु०) पञ्जावके पहाड़ोंमें आपे आप उगनेवाला एक पौधा। यह बगीचोंमें लगाया जाता है। इसे 'जखम हयात' भी कहते हैं।

हेमसार (सं० क्ली०) तुत्थ, तूतिया।

हेमसावर्णि (सं० पु०) मनुभेद ।

हेमसिंह (सं० पु०) स्वर्णसिंहासन, सोनेका तख्त ।

हेमसिंह—भविष्यब्रह्मखण्डवर्णित वर्द्धमानके एक राजा ।

हेमसुता (सं० स्त्री०) पार्वती, दुर्गा ।

हेमसूत्रक (सं० क्ली०) हारविशेष ।

हेमसूरि (सं० पु०) हेमचन्द्र, अभिधानचिंतामणिके प्रणेता ।

हेमहंसगणि—एक जैन पण्डित, रत्नशेखरके शिष्य । इन्होंने १४५८ ई०में उदयप्रभरचित आरम्भसिद्धिके ऊपर सुधी श्रृङ्गारवार्त्तिक नामक टोका लिखो है।

हेमहस्तिरथ (सं० पु०) महादानविशेष । इसमें सोनेका हाथी और रथ बना कर दान करना होता है । यह दान महापुण्यजनक है । हेमाद्रिके दानखण्ड और मत्स्यपुराणके २८२वें अध्यायमें इसका विशेष विवरण लिखा है ।

हेमा (सं० स्त्री०) १ अप्सराभेद । रामायणके किष्किन्ध्याकाण्ड ५१वें अध्यायमें इस अप्सराका विवरण लिखा है । २ मञ्जिष्ठा, मजीठ । ३ स्वर्णजोवंती ।

हेमाङ्ग (सं० पु०) १ गरुड़ । २ सिंह । ३ सुमेरु । ४ ब्रह्मा । ५ चम्पक वृक्ष । ६ विष्णु । ७ सुवर्णमय शरीर । (त्रि०) ८ सुवर्णमय शरीरयुक्त ।

हेमाङ्गद (सं० पु०) १ वसुदेवके एक पुत्रका नाम । (भागवत ६।४।४८) २ कलिङ्ग देशके एक राजाका नाम । ३ वह जो सोनेका बिजायठ पहने हो ।

हेमाचल (सं० पु०) सुमेरु पर्वत ।

हेमाड़पन्त—दाक्षिणात्यके एक प्रसिद्ध महापुरुष । कब किस समय ये विद्यमान थे, उसका कोई ठीक प्रमाण नहीं मिलता, परन्तु आज भी उनका कीर्त्तिकलाप दाक्षिणात्यमें कई जगह टूटी फूटी हालतमें पड़ा देख पड़ता है । उनके यत्न और बहु व्ययसे जो सब पत्थरके मन्दिर और सीढी लगे हुए तालाब बनाये गये थे, वे दाक्षिणात्यमें मुसलमान-अभ्युदयके पहलेके हैं । उन सब मन्दिरोंकी शिलालिपिमें करीब १२५० ई०के समकालवर्त्ती अङ्क अंकित रहनेसे मालूम होता है, कि उक्त महापुरुष उस समय विद्यमान थे ।

दाक्षिणात्यमें इस बातकी प्रसिद्धि है, कि द्वापरयुगमें हेमाड़पन्त नामक एक प्रसिद्ध आयुर्वेदवित् रहते थे । उन्होंने लंकापति रावणके भाई विभीषणको रोगमुक्त कर बड़ा नाम कमाया था । उन्होंने ही उक्त राक्षसराजसे कुछ मयशिल्प जाननेवाले स्थपतिके लिये प्रार्थना की थी । राक्षसराज विभीषणने उनकी प्रार्थना पूरी की । पीछे हेमाड़पन्तने उन शिल्पियोंके द्वारा दक्षिण भारतमें बहुतसे मन्दिर और सोपान लगे हुए कूप बनवाये । उन मन्दिरों या कूपोंकी गंथाईमें किसी प्रकारका मसाला नहीं लगाया गया है । इतिहास और किंवदन्तीमें वे सब ध्वस्त निदर्शन हेमाड़पन्तकी कीर्त्ति कह कर प्रसिद्ध है ।

ऐतिहासिकयुगमें एक दूसरे हेमाड़पन्तका अभ्युदय हुआ । यह एक विख्यात लेखक, मन्दिरनिर्माता और देवगिरिके यादववंशीय राजा रामचन्द्र देवके (१२७१-१३०८ ई०) प्रधान मन्त्री थे । बहुतेरे इस हेमाड़पन्तको राजमन्त्री हेमाद्रिका नामान्तर बतलाते हैं । हेमाद्रि सर्वशास्त्रवित् महापण्डित और धर्मशील थे । उनके लिये जनसाधारणकी भलाईके लिये तालाब खुदवाना और धर्मके लिये मन्दिर बनवाना कुछ भी असम्भव नहीं है । जो हो, हेमाड़पन्तकी कीर्त्तियोंमें उत्कीर्ण शिलालिपिमें जो सब अङ्क खोदित देखे जाते हैं उनसे अनुमान किया जाता है, कि वे सभी महामनस्वी और प्रभूत शक्तिशाली महामन्त्री हेमाद्रिके ही समयसे आरम्भ हुए हैं । वे रामचन्द्रके परवर्त्ती यादवराजके शासनकालमें भी (१२६०-१३१८ ई०) राजामात्यपद पर प्रतिष्ठित थे । अतएव शिलालिपिके प्रमाणसे यदि हेमाद्रि और हेमाड़पन्तको एक व्यक्ति माना जाय, तो कोई आपत्ति नहीं । दाक्षिणात्यभूमके उत्तर बिना मसाले आदिके मेलसे पत्थरके जो सब मकान और मन्दिरादि प्राचीन हिन्दूप्रधानताके समय बनाये गये थे, वे सभी हेमाड़पन्तकी कीर्त्ति माने जाते हैं । कनाड़ी भाषाप्रचलित देशभागमें हेमाड़पन्त जखनाचार्य्य नामसे परिचित थे । उस देशमें मुसलमानोंके पहले जिन सब हिन्दूस्थापत्यके निदर्शन विद्यमान हैं, वही जखनाचार्य्यकी कीर्त्ति समझे जाते हैं । हेमाद्रि देखो ।

हेमाण्ड (सं० क्ली०) सुवर्णाण्ड, सुनहरा अंडा ।

हेमाद्रि (सं० पु०) १ सुमेरुपर्वत । २ एक असाधारण

पण्डित। ये देवगिरिके यादववंशीय राजा जैत्रपालके पुत्र महादेव (१२६०-१२७१ ई०) के आश्रयमें प्रतिपालित हुए थे। पीछे इन्होंने अपने शिक्षागुणसे तथा राज्येश्वर महादेवकी अनुकम्पासे श्रीकरणाधिपका (Chief Secretary) पद पाया था। धीरे धीरे वे उक्त राजाके प्रधान मन्त्री हो गये। ये वत्सगोत्रीय ब्राह्मण कामदेवके पुत्र थे। इनके पितामहका नाम वासुदेव और प्रपितामहका नाम वामन था।

१२७१ ई०में महादेवके स्वर्गवासी होने पर उनके लड़के आमनको राज्यच्युत कर राजा कृष्णके पुत्र रामचन्द्रने देवगिरिका सिंहासन अपनाया। रामचन्द्रके राज्यकालमें भी (१२७१-१३०९ ई०) हेमाद्रिने पूर्ववत् पद-मर्यादाको अक्षुण्ण रख राज-कार्य्य चलाया था।

राजनैतिक नाना विषयोंमें उलझे रहने पर भी ये देश और समाजकी भलाईके लिये कुछ ग्रंथ लिख कर प्रत्येक हिन्दूके निकट धन्यवादार्ह हो गये हैं। उनके रचित ग्रंथोंमें चतुर्वर्गचिंतामणि सर्वश्रेष्ठ है और उसे स्मृतिसागरका सारोद्धार कहने भी कोई अत्युक्ति नहीं। ऐसा विराट स्मृतिसार संस्कृत साहित्यमें बहुत कम है। उक्त ग्रंथका परिशेषखण्ड ही व्यवस्थाशास्त्रका सार-सङ्कलन है। इस अंशसे कालनिर्णय, कालनिर्णय-संक्षेप, तिथिनिर्णय, दानवाक्यावली, पर्जन्यप्रयोग, प्रतिष्ठा और लक्षणसमुच्चय नामक कुछ खंड पुस्तिका भी मिलती है। उनके व्रतखण्डके अन्तर्गत शान्ति, पौष्टिक और हेमाद्रि-निबंध (हेमाद्रीय) नामक दीधिति भी जनसाधारणमें विशेष परिचित है। दाक्षिणात्यके हिन्दूमात्र ही उन सब ग्रंथोंके निर्दिष्ट तत्त्ववाक्यानुसार जीवनयात्रा निर्वाह करते हैं।

हेमाद्रि रचित 'आयुर्वेद-रसायन' वाग्भट महात्मा कृत अष्टाङ्गहृदयकी एक टीका तथा उनकी कैवल्यदीपिका वोपदेव-विरचित मुक्ताफलकी टीका है। शेषोक्त ग्रंथमें इन्होंने वैष्णवधर्मके सारसत्यकी व्याख्या की है। मुक्ताफलकार वोपदेव ही सुप्रसिद्ध मुग्धबोधव्याकरणके रचयिता थे। हेमाद्रि इन वोपदेवके भी प्रतिपालक माने जाते हैं।

ऊपर कहे गये ग्रंथोंको छोड़ हेमाद्रि-विरचित हेराज प्रशस्ति भी मिलती है। इनमें उन्होंने अपनी कविता और ऐतिहासिकताका यथेष्ट परिचय दिया है। हम उन प्रशस्तियोंसे देवगिरिके यादवराजवंशके और भी कितने राजाओंके नाम पाते हैं।

हेमाद्रिका (सं० स्त्री०) स्वर्णक्षीरी, भरभाँड़।

हेमाद्रिजरण (सं० पु०) स्वर्णक्षीरी। स्वर्णक्षीरी देखो।

हेमाभ (सं० त्रि०) सुवर्णके सदृश आभाविशिष्ट।

हेमाम्बुज (सं० क्ली०) हेमपद्म, सुवर्णपद्म।

हेमाम्भोज (सं० क्ली०) सुवर्णपद्म।

हेमाल (सं० पु०) एक राग जो दीपकका पुत्र कहा जाता है।

हेमावती—कावेरी नदीकी एक उपनदी। यह कदूर जिलेमें जावलीसे निकल कर हस्सन जिलेमें बह गई है और प्रायः १२० मीलका रास्ता तै करनेके बाद तिप्पुरके पास कावेरीसे मिली है। सकलेशपुरमें हेमावतीके ऊपर एक लोहेका पुल है।

हेमाह्व (सं० पु०) १ वनचम्पक, वनचंपा। २ धुस्तूर, धतूरा।

हेमाह्वा (सं० स्त्री०) १ स्वर्णजीवन्ती, पीली जीवन्ती। २ स्वर्णक्षीरी। ३ स्वर्णचम्पक।

हेमियानी (फा० स्त्री०) रुपया पैसा रखनेकी जालीदार लम्बी थैली जो कमरमें बांधी जाती है।

हेम्नन् (सं० पु०) बुधग्रह।

हेम्ना (सं० स्त्री०) संकीर्ण रागका एक भेद।

हेम्यावत् (सं० त्रि०) सुवर्णनिर्मित कक्ष्यायुक्त।

हेय (सं० त्रि०) हा (अचो यत्। पा ३।१।९७) इति यत्। (ईद्यति। पा ६।४।६५) इति आत ईत्। १ त्याज्य, छोड़ने योग्य। सांख्यदर्शनमें हेय, हान, हेयहेतु और हानोपाय ये चार विषय प्रतिपादित हुए हैं। आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक ये तीन प्रकारके दुःख हेय अर्थात् छोड़ने लायक हैं। प्रकृति-पुरुषके संयोग द्वारा अविवेक ही हेयहेतु है। जब तक अविवेक रहता है, तब तक दुःख रहेगा। सांख्यदर्शन शब्द देखो।

हेयर (डेभिड)—एक उदार-हृदय अङ्गरेज। इन्होंने बङ्गालमें आ कर अशिक्षित बङ्गवासीको अङ्गरेजी शिक्षा

देनेमें बड़ा प्रयत्न किया था। इन्हींके अथक परिश्रम-से कलकत्ता महानगरीमें हिन्दूकालेज स्थापित हुआ जिससे बङ्गालमें अङ्गरेजी शिक्षा फैल गई। आज भी प्रेसिडेन्सी कालेजके मैदानमें डेभिड हेयरको प्रति-मूर्त्ति विद्यमान है। उक्त कालेजसे सटा हुआ हेयर स्कूल उन्हींके सम्मानार्थ स्थापित हुआ है।

वङ्गदेश देखो।

हेर (सं० त्रि०) हि-रन्। १ मुकुटभेद, किरीट। २ हरिद्रा, हल्दी। ३ आसुरीमाया।

हेरक (सं० पु०) १ चर, दूत। २ शिवानुचरभेद।

हेरना-फेरना (हिं० क्रि०) १ इधरका उधर करना। २ परिवर्त्तन करना, अदल बदल करना।

हेरफेर (हिं० पु०) १ चक्कर, घुमाव। २ वचनकी वक्रता, बातका आडंबर। ३ अदल-बदल, उलट-पलट। ४ कुटिलयुक्ति, दांव पेच। ५ अन्तर, फर्क।

हेरम्ब (सं० पु०) १ गणेश। २ महिष, भैंसा। ३ धीरोद्धत नायक। ४ बुद्धविशेष। पर्याय—हेरुक, चक्रसम्वर, देव, वज्रकपाली, निशुम्भी, शशिशेखर, वज्र-टीक। ५ तन्त्रसारमें हेरम्बगणेशके पूजायंत्र और मन्त्र आदिका विशेष विवरण लिखा है। ध्यान इस प्रकार है—

"मुक्ताकाञ्चननीलकुन्दमसृणच्छायैस्त्रिनेत्रान्वितै-
र्नागास्यैर्हरिवाहनं शशिधरं हेरम्बमर्कप्रभं।
दृप्तं दानमभीतिमोदकरदान् टङ्कं शिरोऽक्षात्मिकां।
मालां मुद्गरमङ्कुशं त्रिशिखकं दोर्भिर्दधानं भजे॥"

हेरम्बक (सं० पु०) जनपदविशेष। (भारत सभाप०)

हेरम्बजननी (सं० स्त्री०) दुर्गा।

हेरम्बसेन (सं० पु०) गूढ़बोध नामक वैद्यक ग्रन्थकार।

हेरम्बहट्ट (सं० पु०) दक्षिणदेशमें अवस्थित एक नगर।

हेरवा (हिं० पु०) तलाश, खोज।

हेरवाना (हिं० क्रि०) ढुढ़वाना, तलाश कराना।

हेराना (हिं० क्रि०) १ खो जाना, न जाने क्या होना। २ अभाव हो जाना, न रह जाना। ३ नष्ट हो जाना, लापता होना। ४ फीका पड़ जाना, मंद पड़ जाना। ५ आत्म-विस्मृत होना, अपनी सुध-बुध भूलना, लीन होना।

हेराफेरी (हिं० स्त्री०) १ हेरफेर, अदल बदल। २ यहां-की चीज वहां होना, इधरका उधर होना या करना।

हेरिक (सं० पु०) गुप्तचर, भेद लेनेवाला दूत।

हेरियाना (हिं० क्रि०) जहाजके अगले पालोंकी रस्सियां तान कर बांधना, हेरिया मारना।

हेरुक (सं० पु०) हि-उक-रुट् च। १ बुद्धभेद। २ महा-कालगण। ३ शिवलिङ्गविशेष। ४ गणेश।

हेल (हिं० पु०) १ घनिष्ठता, मेलजोल। यह शब्द अकेले नहीं आता, मेलके साथ आता है। २ कीचड़ गोबर आदि। ३ गोबरका खेप। ४ मैला, गलीज़। ५ घृणा, घिन।

हेलञ्ची (सं० स्त्री०) हिलमोचिका, हेलञ्च नामका साग।

हेलन (सं० पु०) १ अवहेला, अवज्ञा करना, परवा न करना। २ अपराध, कसूर। ३ क्रीड़ा करना, केलि करना। ४ अवनति, नमन।

हेलना (हिं० क्रि०) १ क्रीड़ा करना, केलि करना। २ विनोद करना, हंसी-ठट्ठा करना। ३ खेल समझना, परवा न करना। ४ तुच्छ समझना, अवज्ञा करना। ५ ध्यान न देना, परवा न करना। ६ प्रवेश करना, पैठना। ७ तैरना।

हेलमेल (हिं० पु०) १ मिलने जुलने, आने जाने, साथ बैठने आदिका सम्बन्ध, मित्रता। २ सङ्ग, साथ। ३ परिचय।

हेलया (सं० क्रि०) १ खेल ही खेलमें। २ सहजमें।

हेला (सं० स्त्री०) १ स्त्रियोंका शृंगारभावजनित क्रिया-विशेष, संयोगके समय स्त्रियोंकी मनोहर चेष्टा। विला-सादि स्त्रियोंके स्वाभाविक दश अलङ्कार है। इनमेंसे हाव, भाव और हेला ये तीन अङ्गज तथा शोभादि ७ प्रयत्नसाध्य हैं। सत्त्व देहमें अवस्थित है। इस सत्त्व-से भाव और हाव हुआ करता है। पीछे हावसे हेला होती है। २ अवज्ञा, तिरस्कार। ३ ध्यान देना, बेपर-वाई। ४ क्रीड़ा, खेल। ५ शृङ्गारचेष्टा, प्रेमकी क्रीड़ा। ६ ज्योत्स्ना, चांदनी।

हेला (हिं० पु०) १ पुकार, चिल्लाहट। २ आक्रमण,

चढ़ाई। ३ ठेलनेकी क्रिया या भाव। ४ मैला साफ करनेवाला, गलीज उठानेवाला। ५ उतना बोझ जितना एक बार टोकरे या नाव, गाड़ी आदिमें ले जा सके, खेप। ६ बारी, पारी।

हेलान (हिं० पु०) डांड़ेको नाव पर रखना।

हेलाराज (सं० पु०) १ एक प्राचीन काश्मीर ऐतिहासिक। २ एक प्रसिद्ध वैयाकरण, भूतिराजके एक पुत्र। इन्होंने 'वाक्यपदीयप्रकीर्णप्रकाश'की रचना की।

हेलाल (अ० पु०) १ दूजका चाँद। २ बंधी हुई पगड़ीकी वह उठी ऐंठन जो सामने माथेके ऊपर पड़ती है, बत्तीसी।

हेलाव—बम्बईप्रदेशके विजापुर और उसके आसपासकी अन्यान्य जिलावासी निम्न जातिविशेष। इन लोगोंका कहना है, कि इनका पूर्वपुरुष लंगड़ा था। लिङ्गायतधर्मप्रवर्त्तक बसवका कृपा-पात्र होनेके कारण सभी उसका आदर करते थे। पंगुके वंशधर होनेके कारण लोग इन्हें पांगाल कहते हैं।

ये लोग मराठी और कनाड़ी-भाषामें बोलचाल करते हैं। सभी गाय, भैंस और बैल आदि पालते हैं। तंबाकू, गांजा, भंग आदि मादक द्रव्य भी ये लोग सेवन करते हैं। शराब पीने और मांस खाने पर भी ये गलेमें लिङ्ग धारण करते देखे जाते हैं।

रावणेश्वर और यल्लमा इनके कुलदेवता हैं। ब्राह्मणोंके प्रति इनकी यथेष्ट भक्ति है, परन्तु यजनादि कार्योंमें ये कभी भी ब्राह्मणको नियुक्त नहीं करते। यहां तक, कि इस जातिका गुरु होता ही नहीं। ये लोग सिर्फ हिन्दूके पर्वदिनमें भिक्षा नहीं मांगते। श्रावणमासके प्रति सोमवारको ये एकाहारी रहते हैं तथा शिवरात्रिको पूर्णोपवासी रह कर देवाराधना करते हैं।

इन लोगोंमें बाल्यविवाह और विधवाविवाह प्रचलित है। बहुतेरे अवस्थानुसार एकसे अधिक विवाह कर सकते हैं। विवाहकालमें वरका पिता कन्याके कपालमें सिन्दूर लगाता है और कन्यापिताके उसे खिला देने पर विवाह सिद्ध होता है।

ये लोग शवदेहको मिट्टीमें गाड़ते हैं। तीसरे दिन मृतका रिश्तेदार एक छोटे मिट्टीके बरतनमें दूध और गुड़के मेलसे पिण्ड बना कर कब्र पर रखता है। पांचवें दिन गोबरसे घर और आंगन लीप पोत कर रातको ज्ञातिभोज देते हैं। इनमें कोई भी दलपति नहीं है। आपसमें पंचायत करके सामाजिक व्यापार निबटाते हैं। इन लोगोंकी सामाजिक अवस्था बहुत खराब है। अपने अपने लड़कोंको पढ़ानेकी ओर इन लोगोंका ध्यान बिलकुल नहीं है।

हेलावत् (सं० त्रि०) हेलायुक्त, अवहेलाविशिष्ट।

हेलावुक्क (सं० पु०) अश्वविक्रयी, घोड़ा बेचनेवाला।

हेलि (सं० पु०) हिलति हिल (सर्वधातुभ्य इन्। उण् ४।११७) इति इन्। १ सूर्य। २ आलिङ्गन। ३ हेला, अवज्ञा।

हेलियोपोलिस (या सूर्यपुर)—एक प्राचीन देश जो अक्षा० ३४° १´ ३०´´ उ० तथा देशा० ३६° ११´ पू०के मध्य दमस्कससे ४३ मील उत्तर-पश्चिम अन्तिलिवानस पर्वतके ढालू देश पर अवस्थित है। बाइबिलमें यह बालिथ नामसे मशहूर है। अभी इसे बालबेक कहते हैं। यहां अति प्राचीन सूर्यमन्दिर रहनेसे ग्रीक ऐतिहासिकोंने हेलियोपोलिस या सूर्यके मन्दिर नामसे इसका उल्लेख किया है। कब यह नगरी बसाई गई, मालूम नहीं। ७४८ ई०में मुसलमानोंने यह स्थान आक्रमण किया। १४०० ई०में तैमुर यहांका सर्वस्व लूट ले गया। तभीसे इस स्थानकी समृद्धि बिलकुल जाती रही। अभी यहां किसान अरबजातिका वास है। वर्त्तमान शहरके पश्चिम प्रान्तमें सुप्राचीन सूर्यमन्दिर तथा अन्यान्य प्राचीन अट्टालिकाओंका भग्नावशेष दिखाई देता है।

हेलिक (सं० पु०) हेलि स्वार्थे कन्। हेलि देखो।

हेलितव्य (सं० क्ली०) अवहेलाके योग्य, फटकारके लायक।

हेलिन (हिं० स्त्री०) गलीज उठानेवाली, मेहतरानी।

हेली (हिं० स्त्री०) सहेली, सखी।

हेलुवा (हिं० पु०) पानीमें खड़े हो कर एक दूसरेके ऊपर पानीका हिलोरा या छींटा मारनेका खेल।

हेल्मन्द—उत्तर-पश्चिम सीमान्तमें प्रवाहित एक पहाड़ी नदी। यह पघमान पर्वतके पश्चिम ढालूदेशमें फजिन्दाज नामक स्थानसे अक्षा० ३४° ४०´ उ० तथा देशा० ६८° २´ पू०के मध्य निकली है और दक्षिणपश्चिममें

प्रायः ७०० मीलका रास्ता तै कर सिस्तान-झीलमें गिरी है। पार होनेके लिये इसमें १४ जगह घाट हैं। नदीमें ष्टीमर भी आ जा सकता है। दोनों किनारा उर्व्वरा और सुन्दर वनराजिशोभित है। एक समय इसके किनारे बहुतसे लोगोंका वास था। पारसिकोंके सुप्राचीन धर्मग्रन्थ वन्दीदादमें यह स्थान 'हेतुमत्' और पाश्चात्य ऐतिहासिकोंके निकट Etymander नामसे प्रसिद्ध है। इसका तीरवर्त्ती स्थान निरापद नहीं समझ कर अभी कितने स्थान जनशून्य और अरण्यमें परिणत हो गये हैं।

हेवज्र (सं० पु०) बौद्धदेवभेद।

हेवली—बम्बई-विभागके धारवार जिलेके अधीन एक शहर। यह अक्षा० १५° २८′ ५०″ उ० तथा देशा० ७२° १०′ पू०के मध्य विस्तृत है। यह शहर एक ऊंची जमीनके ऊपर बसा हुआ है। यहां एक पुराने किलेका खंडहर देख पड़ता है।

हेष (सं० क्ली०) घोड़ेका हिनहिनाना।

हेषक्रतु (सं० क्ली०) ह्रेषारव, घोड़ेकी हिनहिनाहट।

हेषस् (सं० क्ली०) शब्दकारिणी हेति, वह हथियार जिसके चलते समय शब्द निकलता है।

हेषस्वत् (सं० त्रि०) शब्दयुक्त, शब्दविशिष्ट।

हेषा (सं० स्त्री०) अश्वध्वनि, घोड़ेको हिनहिनाहट।

हेषिन् (सं० पु०) अश्व, घोड़ा।

हेष्टिंस (वारेन)—भारतवर्षके प्रथम गवर्नर जनरल। उरष्टरसायरके अन्तर्गत डेलिस्फोर्डके हेष्टिंसवंश इङ्गलैण्डके राजा १म चार्ल्सके समय राजभक्तिके लिये प्रसिद्ध थे। चार्ल्सके साथ जब प्रजा लोगोंका युद्ध छिड़ा, तब इन लोगोंने चार्ल्सका पक्ष लिया था, इससे उन्हें गहरी हानि उठानी पड़ी थी। आखिर जब युद्धमें चार्ल्सकी हार हुई और प्रजाके विचारसे उनका शिर काट डाला गया, तब जीवनरक्षाके लिये ये लोग अपनी अपनी सम्पत्ति विजेता Commonwealth को दे देने वाध्य हुए। हेष्टिंसने इसी वंशमें १७३२ ई०को जन्म ग्रहण किया था। इनके जन्मके तीसरे वर्ष इनकी माताका देहान्त हुआ। पिता शीघ्र ही दूसरा व्याह कर अमेरिका चले गये। कुछ दिन बाद वहां उनको भी मृत्यु हुई। थोड़ी उमरमें ही हेष्टिंस पितृ-मातृ-हीन हो गये। इनके लालन पालनका भार इनके पितामहके हाथ सौंपा गया। पढ़ने लिखनेमें इनकी बुद्धि बड़ी तेज थी। इनके चचा इन्हें लंडन ले गये और वहां ईटन स्कूलमें भर्त्ती कराया। इस छोटी सी उमरमें इनकी असाधारण बुद्धि देख सभी चकित हो गये। चचाके मरने पर इन्हें पढ़ना लिखना छोड़ देना पड़ा। अब वे इष्ट-इण्डिया कम्पनीके अधीन एक किरानीका पद ग्रहण कर अठारह वर्षकी उमरमें १७५० ई०को वङ्गदेश आये। दो वर्ष यह काम करनेके बाद वे क्लाइवके अधीन पलासीको लड़ाईमें गये और वहां अपनी वीरता दिखा कर उनके प्रेमपात्र बन गये। हेष्टिंसके साहस, कष्टसहिष्णुता और प्रत्युत्पन्नमतित्वकी यह पहली परीक्षा थी। इस समय इन्होंने कप्तान कैम्बेलकी विधवा स्त्रीसे विवाह किया। कुछ दिन बाद स्त्रीका भी देहान्त हो गया।

हेष्टिंस कुछ समय कम्पनीके एजेण्ट स्वरूप मुर्शिदाबादमें थे। पीछे वे Bengal Council के सदस्य-पद पर नियुक्त हुए। १३ वर्ष भारतवर्षमें कम्पनीके अधीन काम कर १७६४ ई०में वे विलायत लौटे। वहां इन्होंने अपने आत्मीय-स्वजनके प्रतिपालनकी व्यवस्था की। परन्तु इस समय ये स्वयं अर्थ कष्ट पा रहे थे। लार्ड क्लाइवकी सहायतासे इन्होंने मन्द्राज कौंसिलमें द्वितीय सदस्यका पद पा कर १७६९ ई०में फिर भारतवर्षको यात्रा कर दी।

राहमें वे वारन इम्हौफकी पत्नीके रूप पर मुग्ध हो गये और पीछे उसके स्वामीकी अनुमति ले कर उससे विवाह कर लिया। कहते हैं, कि वारन इम्हौफको पत्नीके बदलेमें हेष्टिंससे बहुत रुपये मिले थे। जर्मनीकी अदालतमें विवाहभङ्गका आदेश पा कर Baron Imhoff स्वदेश लौट गये। हेष्टिंसने जो परायी पत्नीको अपनी पत्नी बना लिया था, यह उनके जीवनमें एक बड़ा कलंक लग गया है।

इस समय बङ्गालके राजस्व विभागकी सर्वेसर्वा इष्टइण्डिया कम्पनी थी। परन्तु देशके शासन और शान्तिरक्षाका भार देशी लोगोंके ही हाथ था। दो भिन्न देशीय लोगोंके हाथ इस प्रकार दो तरहकी शासन-

व्यवस्थासे सारा देश अत्याचार और उत्पीड़नसे हाहाकार कर रहा था। इङ्गलैण्डके डिरेकृरोंने वारेनहेष्टिंसको बङ्गालका गवर्नर बना कर इस प्रकार अराजकताको दूर करना चाहा। १७७२ ई०में हेष्टिंसने सभापतिका पद ग्रहण किया। इन्होंने बङ्गदेशके राजस्वके उगाहनेका सुप्रबंध कर महम्मद रेज़ा खाँ और राजा सिताब रायको हटा दिया।

इस समय कम्पनी पर १६० लाख पौंड कर्ज था। इतना भारी कर्ज चुकानेके लिये हेष्टिंसको कुछ असदुपायका अवलम्बन करना पड़ा था। पहले कोरा और इलाहाबाद ये दोनों जिले दिल्लीके सम्राट्ने कम्पनीको दे दिये थे। इसके बदले कम्पनी प्रति वर्ष २६ लाख रुपया देनेको राजी थी, पर पूर्वोक्त दोनों जिले सम्राट्ने फिर मराठोंको दे दिये। इस कारण वारेन हेष्टिंसने अयोध्याके वजीरकी सलाह ले कर खज़ाना भेजना बंद कर दिया। इसके बदले वे दोनों जिले वजीरको दे कर इन्होंने ५० लाख पौंड नकद उनसे ऐंठ लिये। इस प्रकार कम्पनीका ऋण चुकानेके लिये हेष्टिंसको नाना प्रकारके अन्याय कार्य करने पड़े थे। अयोध्याके वजीरने ४० लाख रुपये दे कर हेष्टिंसकी सहायता खरीद ली। हाफिज रहमत खाँने युद्धके खर्चाके अलावा वह रुपया अयोध्याके नवाबको देना चाहा था। क्योंकि, वे उनकी सहायतासे रोहिलखण्ड पर अधिकार जमाना चाहते थे। हेष्टिंस अयोध्याके वजीरकी सहायतासे कम्पनीका सेनादल भेजनेको राजी हुए। उनके जीवनमें यह भी एक महाकलंक है। क्योंकि, रोहिलागण अंगरेजोंके महाबंधु और विश्वासी मित्र थे। ऐसी विश्वासघातकता पर लोगोंको उन पर संदेह होने लगा।

हाफिज रहमत खां देखो।

इस प्रकार असदुपायसे हेष्टिंसने कम्पनीका बड़ा कर्ज चुका दिया। केवल चुका ही नहीं दिया, वरन् काफी रुपये भी जमा कर लिये। इस कारण पीछे जब सदस्यगण कलकत्ता आये, तब इनके विरुद्ध खड़ा होनेका किसीको साहस नहीं हुआ। पर हां, सदस्योंमेंसे कोई भी पीछे हटनेवाले नहीं थे। चार सदस्योंमेंसे क्लेभरिं, फ्रांसिस और मोनसन ये तीनों ही इनकी राजनीतिके विरोधी थे। उन लोगोंने आते ही सुजाउद्दौलाके पुत्र आसफउद्दौलाके साथ हेष्टिंसकी जो संधि हुई थी उसे बदल दिया और एक नई संधि कर ली। इलाहाबाद और कोरा जिला जो बेचा गया था, उसमें कोई हेर फेर नहीं किया गया। वजीरको कहा गया, कि वे कम्पनीकी सेनाओंका वेतन और बाकी रुपया चुका दें। ये सब काम बिना हेष्टिंसकी सलाहके किये गये।

इधर दाक्षिणात्यमें मराठोंके बीच गोलमाल खड़ा हो गया। मधुरावकी मृत्युके बाद उनके भाई नारायण राव पेशवा हुए। परंतु १७७३ ई०में उनके विरुद्ध जो षड़यंत्र रचा गया था उसीसे उनके प्राण गये। महाराष्ट्र देखो। कहते हैं, कि इस षड़यंत्रमें रघुनाथ भी शामिल थे। लेकिन पेशवाकी मृत्युके बाद शासनकार्यका प्रबंध नानाफड़नवीसके हाथ रहा। क्योंकि इस समय नारायण रावकी स्त्री गर्भवती थी। सन्तान होनेके पहले पेशवापद न्यायतः रघुनाथके ऊपर सौंपा नहीं जा सकता था। रघुनाथने इस प्रकार व्यर्थमनोरथ हो बम्बई सरकारसे सहायता मांगी। बम्बई सरकार सालसेट और अन्यान्य निकटवर्त्ती स्थान ले कर रघुनाथको मदद देने तैयार हो गई। परन्तु सिन्दे और होलकर ये दोनों ही महाराष्ट्रराज फड़नवीसके पक्षमें थे। रघुनाथने बम्बई भाग कर अङ्गरेजोंके साथ सूरतमें संधि कर ली। इस संधि-शर्त्तके अनुसार वे नगद रुपये और राज्यका कुछ अंश छोड़ देनेको राजी हुए। वृटिश गवर्मेण्टने उन्हें तीन हजार सेनासे मदद पहुंचानेको बाध्य हुई। यद्यपि बम्बईका गवर्नर यह संधि करके अपनी न्याय्य क्षमताकी सीमासे बहुत बढ़ गये थे, तथापि हेष्टिंसको बाध्य हो कर मराठोंके विरुद्ध युद्ध करनेके लिये प्रस्तुत होना पड़ा। क्योंकि युद्धजयके पहले पीछे हटनेसे कोई लाभकी संभावना न थी। परन्तु कौंसिलके अन्यान्य सदस्यगण मराठोंके साथ युद्ध ठानना नहीं चाहते थे। उन लोगोंके इच्छानुसार पूना गवर्मेण्टके साथ वृटिश गवर्मेण्टने पुरन्दरमें संधि कर ली। इस संधि पर बम्बई सरकार और हेष्टिंस दोनों ही कौंसिलके सदस्यों पर बड़े बिगड़े। आखिर डिरेक्टरोंने सूरतकी संधि मंजूर कर हेष्टिंसके मानसंभ्रमकी रक्षा की।

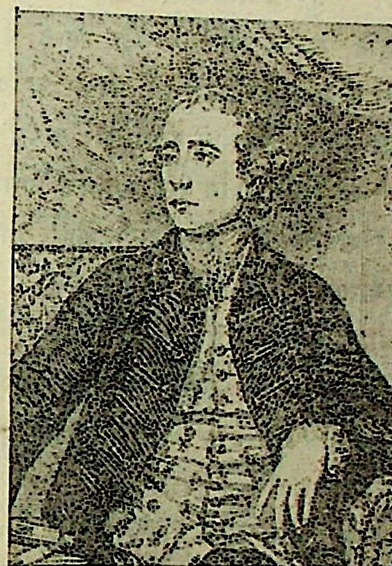
हेष्टिंसके सौभाग्यवशतः उनके प्रतिद्वन्द्वी क्लेभरिं और मोनसन इस लोकसे चल बसे। अब हेष्टिंस बे-रोकटोक अपना रोबदाब चलाने लगे। अमेरिकामें वृटिश उपनिवेशोंने जब ग्रेट वृटेनके विरुद्ध अपनी स्वाधीनता घोषित की, तब फरासी लोगोंने भी उन्हें साथ दिया। इधर पूनाके महाराष्ट्रपति फरासी-साहाय्य की प्रत्याशा कर रहे थे, पर हेष्टिंसके भेजे हुए सेनापति गोडर्डने मराठोंको परास्त किया।

इधर महाराष्ट्रीय गोलमाल की सुविधा पा कर हैदर अली अपना राज्य बढ़ा रहा था। उधर फरासी और अङ्गरेजोंके बीच जब युद्ध चल रहा था, तब वे मोरिससमें फरासी गवमेंएटके साथ पत्र व्यवहार कर रहे थे। इस पर हेष्टिंसने भारतवर्षमें फरासीके अधिकृत स्थानोंको दखल करना शूरू कर दिया। जब अङ्गरेज लोग माही पर अधिकार कर बैठे, तब हैदरअलीने अङ्गरेजोंके विरुद्ध युद्धघोषणा कर दी। युद्धमें अङ्गरेजोंकी ही जीत हुई। पीछे हैदरअलीके लड़केने उनसे संधि कर ली। इस संधिके अनुसार दोनों पक्षको अपना अपना अधिकार मिल गया।

हेष्टिंस केवल वृटिश-साम्राज्यको फैलाना ही चाहते थे सो नहीं, साम्राज्यको दृढ़ शासनसे बांधनेके लिये उनकी प्रबल इच्छा थी। इनके शासनकालमें केवल वाराणसी जिलेमें वृटिश गवमेंएटको युद्ध चलाना पड़ा था। युद्धमें जीत होने पर भी इन्होंने राज्य फैलानेका लोभ छोड़ा नहीं था। हेष्टिंस १७७२ ई०से १७७४ ई० तक बंगालके गवर्नर थे। इस समय इनका शासन अप्रतिहत था, परंतु लार्ड नार्थका Regulation act जब जारी हुआ और उस नियमके अनुसार कौंसिलके चार सदस्य बङ्गाल आये, तबसे ही वे अपने शासन-कार्यमें बाधा पाने लगे। १७७६ ई०में मोनसनकी मृत्यु पर्यन्त हेष्टिंसको समस्त शासनकार्यमें पद पद पर बाधा मिलती गई। परंतु उनकी मृत्युके बाद ये ही सर्वेसर्वा हो गये।

नन्दकुमारके साथ हेष्टिंसका जो विवाद चला था, वह किसीसे भी छिपा नहीं है। नन्दकुमार देखो।

काशीके महाराज चैतसिंहको हेष्टिंसने जो रुपयेके कारण नाकोंदम किया था, वह भी बहुतोंको मालूम है। महाराजके बार बार क्षमा प्रार्थनाके बाद हेष्टिंसने उन्हें क्षमा तो कर दिया, पर वे अपना कुल धनरत्न ले कर बुंदेलखण्ड भाग जानेको बाध्य हुए। कर्णल पोपहमने उन्हें एक युद्धमें परास्त कर विजयगढ़ तथा ५० लाख रुपया नगद ले लिया। गवर्नर जनरलने भ्रमवशतः जो एक पत्र लिखा था, उसके फलसे ५० लाख रुपये पोपहमकी सेनाओंके बीच बांट दिये गये। चेतसिंह आजीवन ग्वालियरमें रहे थे। उनके भतीजे प्रतिवर्ष ४० लाख रुपया राजस्व देना अंगीकार कर काशीके राजा हुए। काशी देखो।



हेष्टिंस (वारेन)

वारेन हेष्टिंस १७८५ ई०में माकफार्सन साहबके हाथ शासनभार सौंप विलायत लौटे। वहां प्रसिद्ध वाग्मी और राजनीतिज्ञ वार्क, फान्सिस और प्रथितनामा लेखक सेरिडनने पार्लियामेण्ट महासभामें उन पर अभियोग लगाया। रोहिलोंके विरुद्ध युद्ध, नन्दकुमारकी फांसी, काशीके राजाको रुपयेके लिये कष्ट देना और अर्थगृध्नु देवीसिंहप्रमुख अत्याचारियोंको नियुक्त कर भारतवर्षमें अंगरेजोंका नाम कलङ्कित करना, ये ही सब अभियोग मनीषियोंने हेष्टिंस पर लगाये। यद्यपि वर्षों विचार करनेके बाद वे निर्दोष प्रमाणित हुए, तथापि अंगरेज समाजको श्रद्धा और सम्मान उनके भाग्यसे जाता रहा। क्या सचमुच वारेन हेष्टिंस दोषी थे? जिन सब अंगरेजोंने भारतवर्षमें वृटिशशासनको चलाया

था, उन सबोंको थोड़े बहुत असदुपाय और निष्ठुरताका साहाय्य लेना पड़ा था। हेष्टिंसके नाम जो सब अभियोग लगाये गये थे, वे सभी यदि सत्य हों, तो भी ऐसा कदापि नहीं कह सकते, कि उनका चरित्र बिलकुल कलङ्कमय था। कम्पनीका ऋण चुका देनेके लिये ही उन्हें इन सब प्रवंचना और निष्ठुरताका आश्रय लेना पड़ा था। इन्होंने निजी स्वार्थके लिये ऐसा किया था, सो नहीं। उनमें यदि एक महादोष था भी तो सिर्फ यही कि वे घोर प्रतिहिंसापरायण थे। नन्द-कुमारको फांसीसे हमें उसका पता चलता है। नन्द कुमार देखो। मुसलमानोंके बीच उच्च शिक्षा फैलानेके लिये इन्होंने मदरसा खोला और हिन्दू पण्डितोंका उत्साह बढ़ानेके लिये टोलमें भी काफी रुपया दिया। हिन्दूशास्त्रानुसार हिन्दुओंके सामाजिक झगड़ेका सम्यक् विचार करनेके लिये इन्होंने उस समयके प्रधान प्रधान स्मार्त्तोंकी सहायतासे 'विवादार्णवसेतु' नामक एक निबंध प्रकाशित किया था। स्मृति देखो। भारतीय विद्याका भी वे यथेष्ट गौरव करते थे। विलकिन्स साहब-की गीताके अनुवाद पर इन्होंने जो गवेषणापूर्ण भूमिका लिखी है, उसीसे भारतीय आर्य्यशास्त्रके ऊपर इनके प्रगाढ़ अनुरागका परिचय मिलता है।

अभियोगसे मुक्त होनेमें हेष्टिंसके बहुत रुपये खर्च हुए थे, इस कारण इन्हें अन्तमें ऋणग्रस्त होना पड़ा था। आखिर कम्पनीने इन्हें वार्षिक ४००० पौंड वृत्ति तथा ऋण चुकानेके लिये ५०००० पौण्ड बिना सूदके कर्ज दे कर इनकी रक्षा की। हेष्टिंसने यह सहायता पा कर अपने पूर्वपुरुषके वासस्थान डेलिसफोर्डमें सम्पत्ति खरीदी और वहीं वे रहने लगे। १८१८ ई०को २२वीं अगस्तको ८६ वर्षकी आयुमें वे इस लोकसे चल बसे।

हेष्टिंस—मार्क्विस आव हेष्टिंस अथवा लार्ड मायरा (G. A. Francis, Lord Rawdon and Earl of Moira, K. G.) भारतवर्षके एक गवर्नर जेनरल। इनका जन्म आइरिस वैरन् (Baron) वंशमें हुआ था। अमेरिकाकी स्वाधीनता ले कर जो युद्ध हुआ था उसमें १७७३ ई०को ये अंगरेजोंकी ओरसे लड़े थे। स्काटलैण्डमें प्रधान सेनापतिरूपमें रहते समय १८०४ ई०को लाउडनकी काउ-ण्टेसके साथ इनका विवाह हुआ। उसीकी कन्या सुरुचि फ्लोरा हेष्टिंस थी। १८१३ ई०को चौथी अक्तूबरको कलकत्ता आ कर इन्होंने लार्ड मिण्टोसे भारतके गवर्नर-जेनरलका पद ग्रहण किया। लार्ड मिण्टोकी निरपेक्ष नीतिको (Non-interference policy) भारतीय राजाओं-ने कापुरुषता और अक्षमताका नामान्तर समझ लिया था। इस कारण मध्यप्रदेशके राजे उद्धत और विद्रोही हो गये थे। विशेषतः सिंदेराज सैन्यसंग्रह कर रहे थे।

इधर उत्तरमें गुर्खा लोग भारतवर्ष पर आक्रमण करने लगे। लार्ड मिण्टोके अमलमें उन लोगोंने बुत्-वाल और शिवराजका अधिकार कर लिया था। लार्ड मिण्टोने सेना भेज कर बुत्वालका उद्धार किया। लार्ड मायरा इस समय अयोध्याप्रदेशमें भ्रमण कर रहे थे। अयोध्याके नवाबने उनके व्यवहार पर प्रसन्न हो उन्हें दश लाख पौण्डसे सहायता पहुंचाई थी।

गुर्खा-युद्धमें अङ्गरेज लोग एकसे अधिक बार परास्त हुए थे। कर्नल निकोल और जेनरल अक्टरलोनीके वीरत्व और युद्धकौशलसे आखिर गुर्खा लोग परास्त और संधि करनेको बाध्य हुए। इधर पेशवा २य बाजीराव अङ्गरेजोंके विरुद्ध षड़यन्त्र रच रहे थे। सैन्य-संग्रह आदि द्वारा वे अङ्गरेजोंका संदेह और भी बढ़ाने लगे। इस समय सुयोग्य और प्रसिद्ध भारत-इतिहास-लेखक मनष्टुआर्ट एलफिन्स्टन बम्बईके गवर्नर थे। उन्होंने गवर्नर जेनरलके पास पेशवाकी शिकायत की। शीघ्र ही एक नई संधि की गई जिसमें गवर्नर जेनरल-ने पेशवाको जब्त कर लिया।

इस समय लार्ड कैनिङ्ग कम्पनीके बोर्डके सभा-पति थे। उन्होंने देखा, कि भारतवर्षमें कम्पनीका प्रभाव अक्षुण्ण रखनेमें अंगरेजोंको निरपेक्ष नीतिका त्याग करना होगा। उन्होंने गवर्नर जेनरल हेष्टिंसको वृटिश-का नाम रखनेके लिये युद्ध ठान देनेका हुकुम दे दिया। इस समय पिण्डारियोंके अत्याचारसे सारे देशमें हाहा-कार मच रहा था। जब अंगरेजोंके मित्र नागपुरके राजा पिण्डारियोंके द्वारा आक्रान्त हुए, तब बड़े लाट हेष्टिंस-ने स्वयं युद्ध ठान दिया। पिण्डारी-दलपति अमीर खां

पराम्त हुआ और हेष्टिंसने उसे एक राज्य दे देना चाहा। एक सन्धि की गई जिसमें शर्त यह ठहरी, कि अमीर खांकी सारी सेना अङ्गरेज-सैन्यभुक्त होगी। अमीर खांको वाध्य हो कर यह सन्धि स्वीकार करनी पड़ी।

इस समय पेशवा भीतर ही भीतर नई संधि ले कर आनाकानी कर रहे थे। अंतमें युद्ध छिड़ ही गया और किरकोकी लड़ाईमें महाराष्ट्रसेना परास्त हो कर भाग चली। पेशवाका कुल राज्य बम्बई गवमेंटके शासनाधीन हुआ।

होलकरके साथ जो युद्ध हुआ वह हेष्टिंसके शासनकालकी अन्यतम घटना है। होलकरकी सेनाने हार खा कर अङ्गरेजोंसे मेल कर लिया। हेष्टिंसके शासनगुणसे पिंडारियोंको उनकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। अमीर खांने भी हेष्टिंसकी प्रस्तावित संधिको स्वीकार कर लिया। हेष्टिंसकी शासननीतिके गुणसे मध्यप्रदेशमें गोलमाल खड़ा हुआ। पेशवाने अङ्गरेजोंके हाथ आत्म-समर्पण किया। उनकी वृत्तिकी व्यवस्था कर दी गई। अप्पा साहब पेशवाके साथ मिल गये। उन्होंने पिंडारीदलपति चोतूका भी साथ दिया था। परंतु जब उन्होंने देखा, कि इससे कोई फल होनेकी नहीं, तब वे अङ्गरेजोंकी सलाह ले कर जोधपुरराजाके आश्रयमें रहने लगे। महाराष्ट्र और नागपुर देखो।

हेष्टिंसके शासनकौशलसे कम्पनीका राजस्व ६ करोड़ रुपया बढ़ गया था। वे दीवानी, फौजदारी और सामरिक आदि विभागोंमें साधारण उन्नतिजनक बहुतसे कानून निकाल गये हैं। माउण्ट स्टुआर्ट एलफिनस्टन, सर टामस-मनरो, सर जान मालकम, सर डेभिड अक्टरलोनी आदि अङ्गरेजपुङ्गवोंकी मंत्रणासे भी उन्हें अनेक समय मदद मिली थी। नेपालका युद्ध शेष होने पर वे अर्लकी उपाधिसे भूषित हुए तथा पिण्डारी दस्युदलनके बाद कम्पनीसे इन्हें ६० हजार पौंड पारितोषिक मिला। पामर कम्पनीके साथ मनोमालिन्य हो जानेके कारण पीछे कहीं वे डिरेक्टरोंकी तीव्र समालोचनाके पात्र भी न बन जांय, इस आशंकासे इन्होंने बड़े लाटका पद त्याग दिया। इसके लिये पीछे डिरेक्टरोंने भी सचमुच दुःख प्रकट किया था। १८२१ ई०में पद-त्याग पत्र विलायत भेजने पर भी १८२३ ई०की १ली जनवरी तक इन्हें भारतवर्षमें रहना पड़ा था। विलायत लौटने पर सबोंने बड़े आदरसे इन्हें ग्रहण किया। पीछे अर्लसे इनकी उपाधि मार्क्विस कर दी गई। कोर्ट आव डिरेक्टरोंने इनके पुत्र अर्ल आव रोडनको सम्मानसूचक २० हजार पौंड उपहार दिये थे। १८२६ ई०को मार्क्विस आव हेष्टिंसका देहांत हुआ।

हेषरतो—छोटा नागपुरके करैया नामक करदराज्यकी सबसे बड़ी नदी। यह सोनाहाटसे निकल कर दक्षिण-करैया राज्य होती हुई मध्यप्रदेशमें विलासपुरके पाससे बह गई है।

हेहे (सं० अव्य०) सम्बोधनसूचक शब्द।

हैहै (सं० अव्य०) १ सम्बोधन। २ हूति।

हैं (हिं० अव्य०) १ एक आश्चर्य-सूचक शब्द। २ एक निषेध या असम्मतिसूचक शब्द। (क्रि० अ०) ३ सत्तार्थक क्रिया 'होना'के वर्त्तमान रूप 'है'-का बहुवचन।

हैंगिंग लैंप (अं० पु०) छतमें लटकानेका लंप।

हैंडबैग (अं० पु०) चमड़ेका छोटा बकस या लंबोतरा थैला जिसे सफरमें हाथमें रखते हैं।

हैंडिल (अं० पु०) दस्ता, मुठिया।

हैंस (हिं० स्त्री०) एक छोटा पौधा। इसकी जड़ जहरीले फोड़ों पर जलानेके लिये घिस कर लगाई जाती है।

है (सं० अव्य०) १ सम्बोधन। २ आह्वान।

है (हिं० क्रि०) 'होना'का वर्त्तमान कालिक एकवचन रूप।

हैकल (हिं० स्त्री०) १ घोड़ोंके गलेमें पहनानेका एक गहना। २ चौकोर या पानके जैसे दानोंकी एक प्रकारकी माला जो गलेमें पहनी जाती है। इसे हुमेल भी कहते हैं।

हैङ्गुल (सं० त्रि०) हिंगुल सम्बन्धी, ईंगुरका।

हैंजम (हिं० स्त्री०) १ सेनाकी पंक्ति। २ खड्ग, तलवार।

हैज़ा (अ० पु०) दस्त और कैकी बीमारी जो मरी या संक्रामक रूपमें फैलती है। संक्रामक देखो।

हैट (अं० पु०) छज्जेदार अंगरेजी टोपी जिससे धूपका बचाव होता है।

हैटा (हिं० पु०) एक प्रकारका अंगूर।

हैडम्ब—भविष्यब्रह्मखण्डवर्णित एक देश। कछाड़। हेड़म्ब देखो। देशावलिविवृतिके मतसे यह अङ्गदेशके अन्तर्गत चम्पाके निकटवर्त्ती 'हेड़म्बविषय' नामसे पुकारा जाता है। यहां घटोत्कच राज्य करते थे।

हैडिम्ब (सं० त्रि०) हिड़िम्बा-अण्। १ हिड़िम्बासम्बन्धीय। २ हिड़िम्बाके पुत्र घटोत्कच।

हैडिम्बि (सं० पु०) हिड़िम्बाका अपत्य, घटोत्कच।

हैतनाम (सं० पु०) हितनामके गोत्रापत्य।

हैतुक (सं० त्रि०) १ सद्युक्तिव्यवहारी, जो अच्छे शब्दका व्यवहार करता हो। २ जिसका कोई हेतु हो, जो किसी हेतु या उद्देश्यसे किया जाय। ३ अवलम्बित, निर्भर। (पु०) ४ हेतु द्वारा सत्कर्ममें सन्देहकर्त्ता, नास्तिक। मनुटीकामें कुल्लूकने लिखा है, कि जो वेदविरोधी तर्क करते हैं, उन्हींका नाम हैतुक है। मनुके मतानुसार ऐसे वेदविरोधी तर्क करनेवालोंके साथ बातचीत तक भी नहीं करनी चाहिये। (४।३०) ५ तार्किक, तर्क करनेवाला। ६ कुतर्की। ७ मीमांसाका मत माननेवाला।

हैदर अली—महिसुरके राज्यापहारक एक मुसलमान अधिपति। यह पहले महिसुरके हिन्दूराजके अधीन काम करते थे, पीछे अपने मालिकको तख्त परसे उतार राजा बन बैठे।

हैदर अलीके प्रपितामह महम्मद बहलोल पंजाबसे आ कर दाक्षिणात्यके कुलवर्गा नामक स्थानमें बस गये। उनके दो पुत्र थे, महम्मद अली और महम्मद ओअली। दोनों भाई महिसुरके शिरा नामक स्थानमें आ कर राजस्व उगाहनेका काम करते थे। यहीं पर १७०२ ई०को महम्मद अलीके पुत्र और हैदर अलीके पिता फते महम्मदका जन्म हुआ। यथासमय फतेमहम्मदके भी दो पुत्र हुए, शाहबाज और हैदर। जब शाहबाजकी उमर ६ और हैदरकी ७ वर्ष थी तब ही युद्धक्षेत्रमें फते महम्मदका प्राणान्त हुआ। हैदर लिखना पढ़ना नहीं जानते थे, साहसिकता और शक्तिमत्ताके गुणसे चढ़ती जवानीमें ही इन्होंने सेनाविभागमें प्रवेश किया। पीछे देवनहल्ली-युद्धमें बड़ी वीरता दिखानेके कारण ५०से २०० पदातिकके पद पर इनकी तरक्की हुई। महिसुरके नंजराज और देवराज जिन सब लड़ाइयोंमें लिप्त थे, उन्हीं सब लड़ाइयोंमें हैदरने रणनैपुण्यका परिचय दिया था। जब कर्णाटकका आधिपत्य ले कर चांद साहब और महम्मद अलीके बीच आग धधक रही थी, उसी समय (१७६१ ई०में) हैदर अलीने महिसुर-शासनकी बागडोर अपने हाथमें ली। महिसुरपतिको ३ लाख पगोडा आयकी जागीर ले कर ही संतुष्ट रहना पड़ा। १७६३ ई०में हैदरने वेदनुर जीत कर प्रायः १२ करोड़ रुपये ऐंठ लिये। नंजराजके निःसन्तान मरने पर हैदरने चमराज नामक उनके दूर-सम्पर्कीय एक व्यक्तिको राजाका उत्तराधिकारी चुना।

इधर मराठोंने हैदर अलीके शासनभुक्त अनेक स्थान दखल कर लिये। इन्होंने निज़ाम अलीके साथ मेल कर अंगरेजोंके विरुद्ध युद्धघोषणा कर दी। १६६७ ई०के अगस्त मासमें पहले चङ्गमा नामक स्थानमें और पीछे त्रिनूकमाली नामक स्थानमें दोनों ही अंगरेजोंके हाथसे परास्त हुए। परन्तु हैदर कब रुकनेवाले थे, वे फिर बड़ी भारी तैयारी करके अंगरेजोंका दमन करनेके लिये मन्द्राजके पास आ धमके। ४थी अप्रिलको उनके साथ अंगरेजराजपुरुषोंने मेल कर लिया। १७७२ ई०में उन्होंने कुर्ग प्रदेश जीता। मराठोंने हैदरके जो सब प्रदेश दखल कर लिये थे, १७७३ और १७७४ ई०के मध्य एक एक कर उन्होंने कुल प्रदेशोंका उद्धार किया। १७७४ ई०में उन्होंने बेलारी पर धावा बोल दिया। १६७६ ई०में उनके प्रबल प्रतापसे मुरारी रावका प्रभुत्व और सवनूरकी स्वाधीनता जाती रही। १७८० ई०की २१वीं जुलाईको हैदरने कर्णाटक दखल किया और उसी साल पोटो-नोवोको लूटा तथा अर्काटमें घेरा डाला। १०वीं सितम्बरको पेरम्बकम् नामक स्थानमें इन्होंने कर्नल बेली द्वारा परिचालित अंगरेजोंकी एक बड़ी सेनाको बुरी तरह परास्त किया। पीछे जब हैदर अली ५ दुर्गमें घेरा डाले हुए थे उसी समय अंगरेजी सेनानायक कूटने करङ्गुली अधिकार कर एक भीषण युद्धमें हैदरकी दुर्द्धर्ष सेनाको हराया। इससे हैदरको त्रिचोनपली और उनके लड़के

टीपूको वन्दिवास जीतनेकी आशा छोड़ देनी पड़ी। पहले पल्लिलूर और पीछे २७वीं सितम्बर (१७८१ ई०)-को शोलिङ्गगढ़में अंगरेजवीर कूटके साथ हैदरका जो युद्ध हुआ उसमें हैदरने बुरी तरह हार खा कर घेरा उठा लिया। १७८२ ई०की ७वीं दिसम्बरको ८० वर्षकी उमरमें अर्काटके निकटवर्त्ती चित्तूर नामक स्थानमें उनकी मृत्यु हुई। टीपूके नहीं आने तक उनका मृत्युसंवाद छिपा रखा गया था। हैदरने प्रायः ३० वर्ष राज्यशासन किया था। उनके मृत्युकालमें एक लाख सुशिक्षित सेना और खजानेमें ५ करोड़ नगद रुपये मौजूद थे। पीछे उनके प्रिय पुत्र टीपू सुलतान राज्याधिकारी हुए। श्रीरङ्गपत्तनमें हैदरकी लाश दफनाई गई। उनकी कब्रके ऊपर एक सुन्दर गुम्बज बनाया गया है।

हैदरगढ़—१ अयोध्याके बड़वांकी जिलेकी एक तहसील। इसके उत्तरमें बड़वांकी तथा रामसनेही तहसील; पूर्वमें मुसाफिरखाना और दक्षिणमें रायबरेलीके अन्तर्गत महाराजगञ्ज तहसील है।

२ उक्त हैदरगढ़ तहसीलका एक परगना। भूपरिमाण १०३ वर्गमील है। इसमें ११७ ग्राम लगते हैं। राजपूत वंशीय अमेथियागण इस स्थानके स्वत्वाधिकारी हैं।

३ बड़वांकी जिलेका एक शहर। यह जिलेके सदरसे २५ मील पूर्वमें अवस्थित है। नवाव आसफ उद्दौलाके मन्त्री अमीरउद्दौला हैदरबेग खांने इस शहरको बसाया।

हैदरगढ़—दक्षिण कनाड़ाके अन्तर्गत एक पहाड़ी रास्ता।

हैदर मालिक—काश्मीरके एक अच्छे इतिहास-प्रणेता। इनकी उपाधि रायसुल मुलुक चाघताई थी। १६१६ ई०में ये जहांगीरके साथ काश्मीर गये थे।

हैदर मिर्जा—महम्मद हुसेनका लड़का। इसकी स्त्री बाबरकी नजदीकी रिश्तेदार थी। सम्राट हुमायूनके भाई कामरान मिर्जाके अधीन यह पहले पहल काम करता था। पीछे यह किसी कारणवश नाराज हो हुमायूनके यहां नौकरी करने लगा। यह हुमायूंका दाहिना हाथ था। १५४० ई०में हुमायूंने इसे काश्मीर जीतनेके लिये भेजा था। थोड़े ही समयके अन्दर इसने काश्मीर पर दखल जमा लिया।

शेरशाहने जब हुमायूनको भारतवर्षसे भगा दिया, तब हैदर काश्मीरका राजा हुआ। पीछे इसने निम्न तिब्बत जीत कर अपने राज्यकी सीमा बढ़ाई। इसने प्रायः दश वर्ष राज्य किया था। १५५१ ई०में रातके समय किसीने इसकी छावनीमें तीर फेंका और उसीसे इसके प्राणपखेरू उड़ गये।

हैदराबाद—भारतके वृटिश गवर्मेण्टके अधीन सबसे बड़ा करद और मित्र राज्य। यह उत्तरमें बेरार, पूर्वमें मध्य-प्रदेश, पश्चिममें बम्बई और दक्षिणमें मन्द्राज प्रदेश तक फैला हुआ है। मोटामोटी तौरसे यदि देखा जाय, तो यह राज्य चतुर्भुजाकृति है। उत्तर, पूर्व और दक्षिण तक इसका जो व्यास है वही केवल ४२० मील है। भारतवर्षके मध्य यह विस्तृत प्रदेश अक्षा० १५° १०´ से २०° ४०´ उ० तथा देशा० ७४° ४०´ से ८१° ३५´ पू०के मध्य फैला हुआ है। भूपरिमाण ८२६९८ वर्गमील है। इसके उत्तरमें बेरार और मध्यप्रदेश, दक्षिणमें कृष्णा और तुङ्गभद्रा नदी, पश्चिममें अहमद नगर, शोलापुर, बीजापुर और धारवार जिला तथा पूर्वमें वर्द्धा और गोदावरी नदी एवं मन्द्राजका कृष्णा जिला है। इसका क्षेत्रफल मन्द्राजप्रदेशके समान है। यह राज्य कुल ५ विभागों और १० जिलोंमें विभक्त है। प्रत्येक विभागमें ३ या ४ जिला है।

यह राज्य एक विस्तृत मालभूमि है। समुद्रपृष्ठसे इसकी ऊंचाई १२५० फुट है। हैदराबाद शहरके पास जो गोलकुंडा दुर्ग है वही प्रायः २५०० फुट ऊंचा होगा।

इस राज्यका सबसे बड़ा पर्वत बालाघाट-गिरिमाला है। पूर्वमें बिलोली तालुकसे पश्चिममें अष्टि तालुक तक इसकी विस्तृति है। यहां सह्याद्रिकी लम्बाई प्रायः २५० मील है। यह इन्दोरसे ले कर बेरारको चीरता फाड़ता हुआ हैदराबादमें आ कर खतम हुआ है। इसकी एक शाखा हैदराबादसे खान्देशमें चली गई है। इस शाखाका एक बड़ा अंश अजण्टाघाट कहलाता है।

हैदराबादमें बहुत-सी नदी, खाल और दिग्गी हैं।

यहांकी अधिकांश जमीनमें बालू और पत्थर मिलता है, इस कारण फसल बहुत कम लगती है। बेनगंगाके साथ जहां वर्द्धा मिली है, वहां तीन कोयलेकी खान है। इन कोयलेकी खानोंसे जो कोयला निकलता है वह रानीगंजके कोयलेसे बहुत खराब है। इसके पास ही लोहेकी खान भी है।

कृष्णा और तुङ्गभद्रा नदी द्वारा हैदराबादकी दक्षिणी सीमा निर्द्धारित हुई है। यहांकी आबहवा अच्छी है। राजपूतानेकी तरह अनुर्वर भूमि यहां नहीं होनेके कारण ग्रीष्मकालमें लू नहीं चलती। इस राज्यमें जहां बालू-पत्थर अधिक है वहां प्रायः आँखका रोग देखा जाता है। यहांके कूओंका जल फीका अस्वास्थ्यकर होता है, पर पुष्करिणी और झरनोंका जल साधारणतः अच्छा है।

औसतसे यहांका वृष्टिपात २८से ३२ इञ्चसे अधिक नहीं है। मौसुमके समय जेठसे आसिनके महीने तक यहां वर्षा होती है।

यहांकी मिट्टी साधारणतः उर्व्वरा है। परन्तु जहां चिकना झोल है वह स्थान खेतीबारीके बिलकुल लायक नहीं है। इसके सिवा और सभी जमीनको यहांकी भाषामें 'लाल जमीन' कहते हैं। यहांकी 'रेगड़' जमीन सबसे अच्छी है। ऐसी जमीनका रकवा बहुत कम है, परन्तु जो कुछ है भी, उसमें अच्छी फसल लगती है। विशेषतः रूईकी खेतीके लिये यह सबसे अच्छी है। इसके सिवा 'तालाबकी जमीन' है जिसकी मिट्टी एकदम काली होती है।

यहां ताड़ और खजूरके पेड़ बहुत लगते हैं। उनके रससे एक प्रकारकी शराब बनाई जाती है। यहां नारियलका पेड़ बहुत कम उगता है। आम और इमलीका पेड़ गांव-गांवमें देखा जाता है। रूई, नील, ईख आदिकी यहां अच्छी खेती होती है।

यहांके जंगलमें एक प्रकारके कीड़ेसे टसर और मधुमक्खीके छत्तेसे मधु संग्रह किया जाता है। कहनेका तात्पर्य्य यह, कि हैदराबाद वाणिज्योपयोगी स्थान है। यहांसे रूई, सरसों, तीसी, कपड़े, चमड़े, धातव पदार्थ तथा खेतीबारीके सामानोंकी रफ्तनी होती है। वाणिज्यके अन्यान्य द्रव्योंमें विदरका बरतन, कलई किया हुआ धातव पदार्थ, औरङ्गाबादका किंखाब और कागजपुर ग्रामका कागज मशहूर है।

विदर जिलेके मलेगांव नामक एक ग्राममें एक बड़ा मेला लगता है जिसमें केवल घोड़े बिकते हैं। हैदराबाद राजधानीके पास भी घोड़े बिकनेका एक बाजार है।

मुगलसम्राट् औरङ्गजेबके विख्यात सेनापति आसफजा निजामवंशके प्रवर्त्तक थे। दिल्लीकी सभामें जिस प्रकार युद्धविजयी कह कर इनकी प्रसिद्धि थी, उसी प्रकार राजनैतिक क्षेत्रमें यह कूटतान्त्रिक समझे जाते थे। १७१० ई०में सम्राट्ने उन्हें निजाम उलमुल्ककी उपाधि दे कर दाक्षिणात्य भेजा। यह उपाधि अन्तमें उनकी वंशगत हो गई। निजाम देखो। मुगल साम्राज्य इस समय घर-झगड़ेसे रसातल जा रहा था, उधर फिर मराठाके गौरव-रवि धीरे धीरे उदय हो रहे थे। यह सुयोग पा कर आसफजाने अपनी स्वाधीनता घोषित कर दी। वे मुगल-बादशाहके विरुद्ध खड़े हो कर कामयाब हो गये थे सही, पर अश्वारोही मराठोंको परास्त करना उनके लिये टेढ़ी खीर थी। जो हो, १७४८ ई०में उनके मरने पर राज्यमें शान्ति विराजने लगी।

हैदराबादका सिंहासन ले कर आसफजाके वंशधरोंमें विवाद खड़ा हो गया। जब आसफजाकी मृत्यु हुई, तब उनके दूसरे लड़के नासिरजङ्गने धनागार अधिकार कर सिंहासनको दखल किया। परन्तु आसफजाके नाती मुजफ्फर जङ्गने यह कह कर राज्यका दावा किया कि उनके मातामह उन्हींको सिंहासन दे गये हैं। इस सूत्रसे फरासी और अंगरेज वणिकोंने अपना अपना मतलब गांठना चाहा। अंगरेजोंने नासिर जंगका और फरासियोंने मुजफ्फर जङ्गका पक्ष लिया। परन्तु मुजफ्फर जङ्गके कर्मचारियोंके साथ फरासी सेनापतिका मनमुटाव हो जानेसे फरासी सेनाने युद्ध करना नहीं चाहा। अतएव मुजफ्फर जङ्ग नासिरके हाथ बन्दी हुए। परन्तु नासिरके कर्मचारियोंने भी षड़यन्त्र रच कर नासिरका काम तमाम किया। इसके बाद मुजफ्फर दाक्षिणात्यके सूबादार बनाये गये, परन्तु उनकी शासनशक्ति बहुत समय तक फरासी सेनापति डुपलेके

हो हाथ रहो। कुछ पठान-दलपतियोंके साथ मुजफ्फर-का जो युद्ध हुआ उसीमें वे मारे गये। फरासियोंने मुजफ्फर जङ्गके पुत्रका दावा अग्राह्य कर नासिरके एक भाई सलावत् जङ्गको निजामके पद पर अधिष्ठित किया। परन्तु आसफजाके बड़े लड़के गाजीउद्दीनने सिंहासनका दावा ले कर अपने छोटे भाईके साथ विवाद ठान दिया। गाजी उद्दीन् शीघ्र हो मारे गये। मराठोंने गाजी उद्दीनका पक्ष लिया था। वे लोग युद्धमें हार खा कर संधि करनेको राजी हुए। इस समय फरासी और अंगरेज दाक्षिणात्यमें अपना अपना प्रभुत्व ले कर लड़ रहे थे। फरासी लोग जब क्लाइवसे परास्त हो कर सलावत् जंगको मदद न पहुंचा सके तब निजामने अंगरेजोंसे सन्धि कर ली।

सन्धि-शर्त्तके अनुसार सलावत्ने इस बातको कबूल किया, कि वे फरासियोंको अपने यहांसे हटा देंगे और उनसे कोई संबन्ध न रखेंगे। परन्तु उनके भाई निजाम अली उन्हें राज्यच्युत कर स्वयं सिंहासन पर अधिकार कर बैठे। उनकी निष्ठुरता, अत्याचार और कर्णाट लूटनेके कारण अन्तमें उनके मित्र अंगरेजोंको भी उनके विरुद्ध हथियार उठाना पड़ा था। जो हो, वे अंगरेजी सेनाको सहायता पा कर कर्णाटसे वापस आये। अंगरेज लोग उनके साथ हमेशा सद्भाव रखना चाहते थे, क्योंकि उन्होंने फरासोके बदलेमें निजामसे हो उत्तरसरकार प्राप्त किया था। १७६६ ई०में जो संधि हुई उसमें शर्त्त यह थो, कि अंगरेज प्रयोजन पड़ने पर निजामको सेनासे सहायता पहुंचायेंगे और जिस वर्ष उन्हें सहायताका प्रयोजन न होगा उस वर्ष वे निजामको ६ लाख रुपये देंगे। इसके बदलेमें निजामने उक्त जमींदारीका उपस्वत्व अंगरेजोंको दे दिया। सन्धि-शर्त्तके अनुसार जब हैदर अलीके विरुद्ध वृटिशसैन्यकी सहायताका प्रयोजन हुआ, तब वृटिश सरकारने कुछ भी सहायता नहीं पहुंचाई। पर निजामने हो अन्तमें हैदर अलीका साथ दिया। जो हो, थोड़े हो दिनोंके बीच निजाम अलीने फिरसे अंगरेजोंके साथ एक और संधि कर ली। इस समय सलावत् जङ्गके मरने पर उत्तर सरकार अंगरेजोंके अधिकारमें आया।

अंगरेज गवर्मेण्टके साथ टीपूका युद्ध चलते समय अंगरेज गवर्मेण्ट, निजाम और पेशवामें संधि हो गई थो। जब टीपू युद्धमें हार खा कर अपने राज्यका अर्द्धांश खो बैठे तब निजामको बड़ा हिस्सा मिला था। इसके बाद जब निजामके साथ मराठोंका युद्ध छिड़ा, तब निजामने संधि-शर्त्तके अनुसार उस समयके गवर्नर सर जान सोरसे सहायता मांग भेजी। पर मराठोंके साथ अंगरेजोंको संधि हो चुको थी, इस कारण सर जान सोरने इस काममें मध्यस्थ होनेके सिवा और कोई मदद पहुंचाना नहीं चाहा। इसके फलसे निजामके साथ वृटिश गवर्मेण्टका मनमुटाव हो गया। जब अर्ल आव मोर्निङ्गटन (मार्क्विस आव वेलेस्ली) बड़े लाट हुए, तब निजामने उनके पास अपना दुखड़ा रोया। इसके फलसे उन्होंने निजामके साहाय्यकारो सैन्यदलको संख्या बढ़ा दी और उन लोगोंको खर्चा वर्चाके लिये वार्षिक २४१७१० पौण्ड रुपया स्थिर कर दिया। अंगरेजोंने जब श्रीरंगपत्तन पर अधिकार किया और टीपूकी मृत्युके बाद जब महिसुरराज्य अंगरेजमित्रोंके बोच बांट दिया गया, तब निजामको भी एक बड़ा हिस्सा मिला। १७८० ई०में साहाय्यकारी सैन्य संख्या बढ़ा दी गई और रुपयेके बदलेमें गवर्मेण्टको राज्यका बहुत कुछ हिस्सा दे देना पड़ा।

१८०३ ई०में निजाम अलीको मृत्यु हुई। पीछे उनके लड़के सिकन्दर शाह गद्दी पर बैठे। १८२२ ई०में उनके साथ अंगरेजोंकी एक संधि हुई। इस संधिके अनुसार अंगरेजोंने उनसे चौथ लेना बंद कर दिया। १८२९ ई०में सिकन्दर शाहका देहान्त हुआ। पीछे उनके लड़के नासिरउद्दौला सिंहासनके उत्तराधिकारी हुए। नासिरउद्दौला भी २८ वर्ष राज्य करनेके बाद कराल कालके शिकार बने। अब उनके लड़के अफजल-उद्दौलाने १८५७ ई०में सिंहासनको सुशोभित किया। इन्हींके समय इतिहास-प्रसिद्ध सिपाही-विद्रोहको आग धधको। वह आग हैदराबाद तक भी फैल गई थी। निजाम किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये। किसीने अंगरेजोंका पक्ष और किसीने विद्रोहियोंका पक्ष लेनेकी सलाह दी।

आखिर अफजलउद्दौलाने प्रधान मन्त्रीकी सलाहसे अंगरेजोंको खासा मदद पहुंचाई। गदरके बाद वृटिश गवर्मेंटने कृतज्ञता स्वरूप निजामके साथ एक संधि कर ली और उन्हें १८६१ ई०में G. C. S. I.की उपाधिसे भूषित किया। १८६६ ई०में अफजल-उद्दौलाकी मृत्यु हुई। पीछे उनके लड़के मीर महबूब अली खां बहादुर गद्दी पर बैठे। १८८४ ई०में लार्ड रीपनने उन्हें राजटीका पहनाया। कुछ वर्ष बाद कर्जनने २५ लाख रुपया वार्षिक खजाना दे कर बरार प्रदेश अंगरेजी राज्यमें मिला लिया। यही उनके समयकी प्रधान घटना है।

वर्त्तमान नवाबका पूरा नाम है एच, ई, एच, आसफजाह मुजफ्फरुल-ममालिक निजाम-उल-मुल्क निजाम उद्दौला नवाब मीर सर उसमान अली खां बहादुर फतेहजङ्ग, जी, सी, एस, आई।

इस राज्यमें ७६ शहर और २० हजारसे ऊपर ग्राम लगते हैं। जनसंख्या करोड़के लगभग है। यहांकी भाषा हिन्दी, तेलगू और कनाड़ी है। निजामकी वार्षिक आय चार करोड़ रुपया है। यहां जो सिक्का चलता है उसका नाम 'हाली सिक्का' है। राज्यमें करीब ३० हजार फौज तथा बहुतसे स्कूल कालेज और अस्पताल हैं।

२ हैदराबाद राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० १७° २२´ उ० तथा देशा० ७८° २७´ पू०के मध्य मूसी नदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ५ लाखके लगभग है। समुद्रकी तहसे यह शहर प्रायः १७०० फुट ऊंचा है। इसकी परिधि प्रायः ६ मील है और एक दीवारसे शहर घिरा हुआ है। इस शहरमें जैसे विभिन्न जातिके लोग देखे जाते हैं, मालूम होता है, कि भारतके और किसी भी शहरमें वैसे नहीं देखे जाते। यहां अरब, सिद्दी, रोहिला, मराठा, तुर्क, सिख, पारसिक, बोखारीय, मन्द्राजी आदि भारतवर्षके तथा अन्यान्य देशोंके लोग देखे जाते हैं।

हैदराबादके चारों ओरका दृश्य बड़ा ही मनोरम है। कुछ मीलकी दूरी पर एक हृद है। उस हृदसे हैदराबाद-शहरमें जलका प्रबंध किया गया है।

हैदराबाद मुसलमानप्रधान शहर है। यहां बहुत-सी मसजिदें देखनेमें आती हैं। वे सब मसजिदें नाना प्रकारके कारुकार्य-मण्डित गुम्बजों द्वारा शोभा दे रही हैं। यहांकी जुम्मा मसजिद मक्काकी मसजिदके ढंग पर बनाई गई है। 'चारमिनार' नामक विश्वविद्यालयका प्रासाद यहांका एक उल्लेखयोग्य स्थान है।

मूसीके उत्तर हैदराबादसे सटा हुआ एक बड़ा ग्राम है। उस ग्रामको लोग बेगम-बाजार कहते हैं। इससे जो शुल्क उगाहा जाता है वह निजामकी प्रधान बेगमको मिलता है। इस बेगमबाजारमें वृटिश रेसिडेण्टका प्रासाद है। राजप्रासाद और रेसिडेण्टप्रासादके बीचमें एक पुल है। रेसिडेण्टका मकान केवल देशी शिल्पियोंका बनाया हुआ है। हैदराबादके प्रधान मन्त्रीका प्रासाद 'बारहदुआरी' सबसे सुन्दर और देखने लायक है।

गोलकुण्डा राज्यके प्रतिष्ठाता सुलतान कुलीकुतबशाहसे नीचे पांचवी पीढ़ीमें कुतबशाह महम्मद कुलीने १५८९ ई०में इस शहरको बसाया। नदीकी सुविधा नहीं रहनेके कारण महम्मद गोलकुण्डाका त्याग कर यहीं पर राजधानी उठा लाये। प्राचीन राजधानीसे ७ मील दूर मूसी नदीके ऊपर भागमती नामक उनकी एक रानीके नाम पर भागनगर बसाया गया। परन्तु उस रानीकी मृत्यु हो जानेके बाद भावनगर ही हैदराबाद कहलाने लगा। १५८९ ई०से गोलकुण्डा और हैदराबादका एक ही इतिहास चलता है।

महम्मदकुलीके लड़के सुलतान अब्दुल्ला कुतबशाहके राज्यकालमें हैदराबादमें पहले पहल मुगलोंका संस्रव हुआ। औरङ्गजेबकी मृत्युके बाद उनके पुत्रोंमें सिंहासन ले कर तकरार खड़ा हुआ। जब जहान्दार शाह और उनके भतीजे फरुखसियरमें युद्ध चल रहा था, तब चिङ्गलीज खां नामक एक सम्भ्रान्त वंशीय मुसलमानने फरुखसियरकी बड़ी मदद की थी। फरुखसियर जब सम्राट् हुए, तब उन्होंने चिङ्गलीज खांको 'निज़ाम उल्-मुल्क आसफजा' की उपाधि दी।

जब दिल्लीमें सैयद लोग रफिउद्दौला और पीछे महम्मद शाहको सम्राट् बना कर प्रतिदिन अपना अपना प्रभुत्व फैला रहे थे, तब आसफजा और सादत खां

दोनोंने मिल कर सैयद दो भाइयोंमेंसे एकको छिपके मार डाला और दूसरेको युद्धमें परास्त किया। १७२२ ई०में आसफजाने दिल्ली आ कर वहां वजीरका पद पाया। परन्तु उन्हों'ने दिल्लीमें वजीर होनेकी अपेक्षा सुदूर दाक्षिणात्यमें एक राज्य प्रतिष्ठित कर वहां शासन करना ही अधिक सम्मानजनक समझा। इस कारण एक दल सेना ले कर उन्हों'ने दाक्षिणात्यकी यात्रा कर दी। वहां सम्राट्के प्रतिनिधि मुबारिज खांने सम्राट्-की गुप्त मन्त्रणासे उन्हें रोका। पर आसफजा युद्धमें मुबारिज खांको परास्त कर हैदराबाद पर अधिकार कर बैठे। अब सम्राट्ने किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो आसफजाको ही हैदराबादका निजाम स्वीकार किया। आसफजा-ही दाक्षिणात्यमें निजामवंशके प्रतिष्ठाता हैं। उनके वंशधर बृटिश गवमेंटके मित्र राजरूपमें आज भी सम्मान राज्य करते हैं। निजाम देखो।

शहरमें बड़ी बड़ी इमारत, तीन कालेज, बहुतसे मिडिल और वर्नाक्युलर स्कूल, एक बड़ा रोमन कैथलिक चर्च और अफजल ब्रिजके पास अफजलजङ्ग अस्पताल है।

हैदराबाद—सिन्धुप्रदेशके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० २४°१३´से २७° १४´ उ० तथा देशा० ६७° ५२´से ६९° २२´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ८२६१ वर्गमील है। इसके उत्तरमें खैरपुर राज्य, पूर्वमें थर और पार्कर जिला, दक्षिणमें कोरि नदी तथा पश्चिममें सिन्धुनदी और कराची जिला है।

इस जिलेकी लंबाई २१६ मील और चौड़ाई ४८ मील है। सिन्धुनदके किनारे यह जिला पहले उर्वर और पीछे अनुर्वर बलुई मरुभूमि द्वारा आवृत है। सिन्धु शब्दमें इसका इतिहास लिखा जा चुका है। सिन्धु देखो।

इस जिलेमें ७ शहर और १४४६ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या १० लाखके करीब है। सैकडे पीछे ६१ मानकी हो संख्या ज्यादा है। यहांकी प्रधान उपज जुआर, बाजरा, गेहूं, धान, रुई और तेलहन है। विद्या-शिक्षामें यह जिला इस प्रदेशके चौबीस जिलोंमें सवां पड़ता है। अभी कुल मिला कर ५ हाई स्कूल, आदमीको भाषा सिंधी है। अधिवासियोंमें मुसल-इक्की-

१० मिडिल स्कूल, ३२५ प्राइमरी स्कूल, ३ ट्रेनिङ्ग स्कूल और ४ स्पेशल स्कूल हैं। स्कूलके अलावा १७ चिकित्सालय, १ सिविल अस्पताल और १ जनाना-अस्पताल है। सर कावसजी जहांगीरके नाम पर एक कुष्ठाश्रम भी खोला गया है। भारतवर्षके शीत-प्रधान अन्यान्य स्थानोंकी तुलनामें यहांकी आबहवा अच्छी है।

२ उक्त जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० २५° १०´ से २५° ३३´ उ० तथा देशा० ६८° २०´से ६८° ४५´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ३९८ वर्गमील और जनसंख्या डेढ़ लाखके करीब है। इसमें हैदराबाद नामक १ शहर और १०० ग्राम लगते हैं।

३ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० २५° २३´ उ० तथा देशा० ६८° २५´ पू०के मध्य अवस्थित है। जन-संख्या करीब ७० हजार है। १७६८ ई०में गुलामशाह कलहोराने यह शहर बसाया। इस शहरमें ४ हाई स्कूल, १ ट्रेनिंग कालेज, १ जनाना ट्रेनिंग कालेज, १ सूतिका स्कूल, १ काश्तकार स्कूल, १ इञ्जिनियरिङ्ग क्लास और १ मेडिकल स्कूल है। इसके अलावा एक सिविल अस्प-ताल और एक चिकित्सालय भी है।

हैन (हिं० स्त्री०) एक प्रकारको घास, तकड़ी।

हैनाड़—सह्याद्रिखण्डवर्णित एक देश। (२।८।४३)

हैफ (अ० अव्य०) खेद या शोकसूचक शब्द, अफसोस।

हैबत (अ० स्त्री०) भय, त्रास।

हैबतनाक (अ० वि०) भयानक, डरावना।

हैम (सं० क्ली०) १ प्रातर्हिमोद्भव जल, सबेरेका ओस-का पानी। (पु०) २ भूनिम्ब, चिरायता। ३ सुवर्ण-का विकार। ४ शिव। ५ पर्वतविशेष, हिमालय। ६ पाला। ७ ओस। (त्रि०) ८ सुवर्णमय, सोनेका। ९ सुनहरे रंगका। १० हिमसंबंधी, पालेका। ११ जाड़े-का, जाड़ेमें होनेवाला।

हैमकूट (सं० पु०) हेमकूट पर्वतके पासका एक देश।

हैमगिरिक (सं० पु०) हैमकूट देखो।

हैमचन्द्रि (सं० पु०) हेमचन्द्रका गोत्रापत्य।

हैमन (सं० पु० क्ली०) हेमन्त पव इति (सर्वत्राण् च तलोपश्च। पा ४।३।२२) इति स्वार्थे अण् तलोपश्च।

१ हेमन्त ऋतु । (त्रि०) २ स्वर्णजात, सोनेका। ३ हिमजात, बर्फका। ४ हेमन्त भव, हेमन्त ऋतुमें होनेवाला। (पु०) ५ मार्गशीर्षमास, अगहनका महीना। ६ हिमकालोद्भव षष्टिकधान्य, हिमकाल या अगहनके महीनेमें होनेवाला साठी धान।

हैमना (सं० त्रि०) १ शीतकालका, जाड़ेका। (पु०) २ पूसका महीना। ३ साठी धान।

हैमन्त (सं० पु० क्ली०) हेमन्त (सन्धिवेलाद्युतुनक्षत्रेभ्योऽण्। पा ४।३।१६) इति अण्। १ हेमंत ऋतु। (त्रि०) २ हेमन्त सम्बंधी।

हैमन्तिक (सं० क्ली०) शालिधान्य, आमन धान।

हैममुद्रिक (सं० त्रि०) स्वर्णमुद्रिकाविशिष्ट।

हैमल (सं० पु० क्ली०) हिमल-अण्। हेमन्त ऋतु।

हैमवत (सं० क्ली०) १ भारतवर्ष। २ हिमालयका निवासी। ३ एक प्रकारका विष। ४ एक राक्षसका नाम। ५ एक सम्प्रदायका नाम। ६ मुक्ता, मोती। (त्रि०) ७ हिमालय सम्बन्धी, हिमालयका। ८ हिमालयजात, हिमालय पर होनेवाला।

हैमवती (सं० स्त्री०) १ हिमवत्‌की कन्या, पार्वती, उमा। २ हरीतकी, हर्रे। ३ स्वर्णक्षीरी। ४ श्वेत वचा, सफेद फूलकी वच। हिमवतः इति (प्रभवति। पा ४।३।८३) इत्यण्। ५ गङ्गा। ६ रेणुका नामक गंध द्रव्य। ७ कपिलद्राक्षा, एक प्रकारकी दाख। ८ अतसी, तीसी। ९ हरिद्रा, हलदी। १० पीतदुग्ध सेहुण्ड, थूहर। ११ क्षीरिणी, खिरनी।

हैमवर्चि (सं० पु०) हेमवर्चसके गोत्रापत्य।

हैमा (सं० स्त्री०) १ पीतयूथिका, सोन जुही। २ पीत चम्पक, जर्द चमेली।

हैमी (सं० स्त्री०) १ पीत यूथिका, सोनजुही। २ केतकी। (त्रि०) ३ सोनेकी बनी, सोनेकी।

हैयङ्गव (सं० क्ली०) हैयङ्गवीन देखो।

हैयङ्गवीन (सं० क्ली०) ह्यो गोदोहस्य विकार इति (हैयङ्गवीनं संज्ञायां। पा ५।२।२३) इति घञ्, हियङ्गादयश्च। सद्यो गोदोहोद्भव घृत, एक दिन पहलेके दूधके मक्खनसे बनाया हुआ घी। यह घी सर्वश्रेष्ठ और अत्युत्कृष्ट गुणयुक्त है। घृत शब्द देखो।

हैरण्य (सं० त्रि०) हिरण्य-अण्। १ हिरण्य सम्बन्धीय, सोनेका। २ सोना उत्पन्न करनेवाला।

हैरण्यक (सं० त्रि०) १ हिरण्य, सोनेका। (पु०) २ स्वर्णकार, सोनार।

हैरण्यगर्भ (सं० पु०) १ मनुभेद। (मनु ३।१९५) २ हिरण्यगर्भ मनुके अपत्य।

हैरण्यनाभ (सं० पु०) हिरण्यनाभके गोत्रापत्य।

हैरण्यवासस् (सं० त्रि०) स्वर्णवस्त्रयुक्त।

हैरण्यबाहेय (सं० पु०) हिरण्यबाहुके गोत्रापत्य।

हैरण्यस्तूप (सं० त्रि०) हिरण्यस्तूपके गोत्रापत्य, वैदिक ऋषिविशेष।

हैरण्यिक (सं० त्रि०) १ सुवर्णसम्बन्धीय। (पु०) २ स्वर्णकार, सोनार।

हैरण्यवती (सं० स्त्री०) नदीभेद, गण्डकी, हिरण नदी।

हैरत (अ० स्त्री०) १ आश्चर्य, अचरज। २ एक मुकाम या फारसी रागका पुत्र।

हैरम्ब (सं० त्रि०) हेरम्ब-अण्। १ हेरम्बसम्बन्धीय, गणेश सम्बन्धीय। (पु०) २ गणेशका उपासक सम्प्रदाय, गाणपत्य।

हैरान (अ० वि०) १ आश्चर्यासे स्तब्ध। २ व्यग्र, परेशान।

हैरिक (सं० पु०) हेरं आसुरोमायां जानातीति ठक्। चौर, चोर।

हैवान (अ० पु०) १ पशु, जानवर। २ जड़ मनुष्य, बेवकूफ।

हैवानी (अ० वि०) १ पशुका। २ पशुके करने योग्य।

हैसियत (अ० स्त्री०) १ योग्यता, शक्ति। २ आर्थिक दशा, वित्त। ३ मूल्य, कीमत। ४ श्रेणी, दरजा। ५ मान-मर्यादा, प्रतिष्ठा। ६ धन, दौलत।

हैहय (सं० पु०) १ हैहयवंशी कार्त्तवीर्य, सहस्रार्जुन। २ पश्चिम दिशाका एक पर्वत। ३ एक क्षत्रियवंश। हैहयराजवंश देखो। ४ देशभेद, एक मुलकका नाम।

हैहयराजवंश—इतिहासप्रसिद्ध एक राजवंश। हैहयसे इस वंशकी प्रतिष्ठा हुई है। पुराण पढ़नेसे जाना जाता है, कि राजा हैहय यदुके पुत्र और महाराज नहुषके पौत्र थे।

हैहय लोगोंने आगे चल कर कब और किस तरह दक्षिणभारतमें अपनी धाक जमाई उसका ठीक और आनुपूर्विक विवरण इतिहासमें नहीं मिलता। शिलालिपि आदिके आनुषङ्गिक प्रमाणमें हैहयवंशका जो संक्षिप्त परिचय है उससे जाना जाता है, कि क्षत्रपशक्तिको विलोप करनेवाले महाक्षत्रपने ईश्वरदत्त त्रैकूटमें राजधानी बसाई। करीब २५० ई०में उन्होंने क्षत्रपगर्व बहुत कुछ चूर्ण किया था तथा उस समय उनके नामकी १म और २य वर्षकी मुद्रा प्रचलित थी। अतएव कोङ्कणविजयके बाद उन्होंने जो त्रैकूटक अब्द प्रचार किया था, वह २४८ ई०से ही आरम्भ हुआ। इसके बाद ही कलचूरीय चेदी सम्वत् नामसे इसकी प्रसिद्धि हुई है।

वीरदामके पुत्र रुद्रदामके शासनकालमें क्षत्रपोंने फिरसे अपना खोया हुआ राज्य अधिकार कर त्रैकूटकोंको राज्यसे निकाल भगाया। वे लोग कोई उपाय न देख मध्यभारत भाग गये और वहां हैहय या कलचूड़ी नामसे प्रसिद्ध हुए। इसके बाद क्षत्रप प्रभावका एकदम पतन होने पर त्रैकूटकोंने पुनः त्रिकूट राजधानी पर अधिकार जमाया। हम ४५६ ई०में त्रैकूटकराज दहसेनको सिंहासन पर अधिष्ठित पाते हैं।

अनन्तर ५६७ ई०में पूर्वचालुक्यवंशीय १म पुलकेशीके पुत्र मङ्गलीशके विजयप्रसङ्गमें कलचूरिराज बुद्धराजकी पराजयकी बात लिखी है। शिलालिपिसे यह भी जाना जाता है, कि पश्चिम चालुक्यवंशीय १म विक्रमादित्यके पुत्र विनयादित्य सत्याश्रयने अपने शासनकालके ११वें से १४वें वर्षके भीतर पल्लव, हैहय आदि जातियोंको परास्त किया था। उसी वंशके राजा २य विक्रमादित्य सत्याश्रयने चेदिराजकन्या लोकमहादेवी और त्रैलोक्यमहादेवीका पाणिग्रहण किया (७३३ ई०)। परवर्त्ती राष्ट्रकूटराजे भी हैहयराजकुमारियोंका पाणिग्रहण कर उन लोगोंके साथ सम्बन्ध जोड़ गये हैं।

आगे चल कर हैहय लोग कलचूड़ि या कुलचूरि कहलाने लगे। वे लोग चेदी नामक देशमें राज्य करते थे। वह चेदीराज्य वर्त्तमान जब्बलपुरके आस पासके स्थान ले कर संगठित था। उस समय हैहयराज चेदी या कलचूड़िया राज कहलाते थे। पीछे जब इस वंशकी एक शाखाने कल्याणदेशमें जा कर राज्य फैलाया, तब ही से 'कल्याणके कलचूरिराज' नामका आरम्भ हुआ।

कल्याणपति विज्जलकी उपाधि 'कालञ्जरपुरवराधीश्वर' थी। कालञ्जरमें प्राचीन चेदिराजाओंका एक जबरदस्त किला था। मालूम होता है, कि इसी समय कालञ्जर उनकी राजधानीरूपमें समझा जाता था। परन्तु यथार्थमें त्रिपुर (वर्त्तमान तेवुर) नामक स्थानमें ही उनके प्रासाद आदि थे। कल्याणपतिके ऐसी उपाधि धारण करनेसे ही जाना जाता है, कि उन्होंने पूर्वतन हैहय या कलचूड़िवंशकी मर्यादारक्षाके लिये 'कालञ्जरपुराधीश्वर' उपाधिको गौरवके साथ धारण कर अपने वंशको गौरवान्वित किया था।

कृष्ण ही कल्याणके कलचूरिवंशके प्रतिष्ठाता थे। वेलगामकी शिलालिपिसे जाना जाता है, कि चेदिकुलके कृष्ण और यदुकुलके भगवान् श्रीकृष्ण दोनों एक-से थे और लोग उन्हें विष्णुका अवतार मानते थे। कृष्णके पुत्र जोगम, जोगमके पुत्र परमर्दी और यही परमर्दी विज्जलके पिता थे। ३य सोमेश्वरके पुत्र राजा जगदेकमल्लके राज्यकालमें विज्जल 'महामण्डलेश्वर' थे। उन्होंने कल्याणके राजा ३य तैलको बड़े कौशलसे राज्यच्युत कर धीरे धीरे उपाधिके साथ कल्याणका चालुक्यसिंहासन अधिकार किया था। परन्तु कुछ समय बाद ही राज्यमें एक धर्मविप्लव खड़ा हो गया। इस विप्लवसे उन्हें सपरिवार राज्यभ्रष्ट होना पड़ा था।

लिङ्गायत-धर्मप्रवर्त्तक बसव इस विद्रोहके प्रधान नेता थे। बसवके मामा और ससुर बलदेव महाराज विज्जलके प्रधान मन्त्री थे। बलदेवकी मृत्युके बाद विज्जलने बसवको ही मंत्री बनाया। बसव लिङ्गायत मतका प्रचार करनेके लिये खज़ाना खाली कर रहे थे, यह सुन कर राजाने उन्हें दंड देना चाहा। बसव भाग गये। राजाने उनका पीछा किया, पर राहमें ही बसवके शिष्योंने उन्हें परास्त किया। राजाको बाध्य हो कर उन्हें मन्त्री बनाना पड़ा, पर दोनोंमें पटती नहीं थी। कुछ समय बाद षड़यन्त्र करके बसवने राजाका काम तमाम किया।

इस घटनाका वर्णन बसवपुराणमें भक्तलिङ्गायतको

लेखनोंसे जिस भावमें किया गया है, विज्जलरायचरितके रचयिता जैनकविकी रचनामें कुछ और तरहसे देखा जाता है। बसवपुराणमें लिखा है, कि राजा विज्जलने हल्लेयग और मधुवेय्य नामक दो लिङ्गायत साधुओंको बुजुर्ग जान कर उनकी आंखें निकाल लीं। इस पर बसव बड़े बिगड़े और उनके हुकुमसे उनके प्रियशिष्य जगद्देवने अनुचरके साथ राजसभामें जा कर राजाको मार डाला। अनन्तर बसवके शापसे कल्याणनगरीमें घोर राष्ट्रविप्लव फैल गया। अधिवासी लोग आपसमें ही मार काट करने लगे।

जैनलेखकका उपाख्यान कुछ और तरहसे है। राजा विज्जलने शिलाहारवंशीय सामन्तराज २य भोजको काबूमें लानेके लिये कोल्हापुरकी ओर युद्धयात्रा कर दी। कुछ दिन बाद स्वराज्य लौटते समय वे भीमा नदीके किनारे खेमा डाल कर विश्राम करने लगे। राजा स्वयं जैनधर्मानुरक्त थे, पर उनके मन्त्री बसव लिङ्गायत थे। बसव जब अपने मालिकको स्वमतमें लाख चेष्टा करने पर भी नहीं ला सके, तब उन्होंने उनका प्राण लेनेका संकल्प किया। इस उद्देशसे उन्होंने भीमानदीके किनारे अवस्थित राजाके पास अपने एक विश्वस्त जङ्गम अनुचरको जैनपुरोहितरूपमें सजा कर भेजा। छद्मवेशी जैनपुरोहितने राजाको कुछ विषैले फल भेंटमें दिये। जैनधर्म पर विश्वास रखनेवाले राजा पुरोहितके दिये हुए उपहार पर जरा भी संदेह न कर फल ले लिये। परन्तु ज्यों ही वे उस सुपक्व फलको सूंघनेके लिये नाकके पास लाये, त्यों ही उनका होश हवाश जाता रहा।

यह संवाद बिजलीकी तरह खेमेमें फैल गया। राजपुत्र इम्मड़ि विज्जल और अन्यान्य आत्मीयवर्ग राजाकी सेवा सुश्रूषाके लिये वहां आये। बहुत चेष्टा करनेके बाद कुछ समयके लिये उनकी मूर्च्छा दूर हुई। इस समय उन्होंने पुत्रको बुला कर कहा, 'दुरात्मा बसवने विषैला फल भेज कर बड़े कौशलसे मेरी जान ले ली। बेटा! तुम इसका बदला अवश्य लेना।' इतना कहते न न कहते राजा फिर मूर्च्छित हो पड़े, उनके प्राण पखेरू उड़ गये। पिताका श्राद्ध आदि कर चुकनेके बाद युवराज बसवको दण्ड देने चले। बसवने मालवाके उपकूलस्थ उलवी नामक स्थानमें जा कर आश्रय लिया। परन्तु वहां भी वे निश्चिन्त न हो सके। राजसेनाने शीघ्र ही जा कर उलवीनगरको घेर लिया। बसवने कूएं-में कूद कर मान रक्षा की। उनकी स्त्री नीलम्बाने विष खा कर सांसारिक ज्वालासे छुटकारा पाया। अनन्तर छेन्नबसवने राजद्वारमें आ कर प्राणभिक्षा मांगी। राजाने उन्हें माफ कर दिया।

११६७ ई०में विज्जलकी मृत्यु हुई। पीछे उनके लड़के सोम (नामान्तर सोविदेव या सोमेश्वर) सिंहासन पर बैठे। राजा सोमने अपनी स्त्री बावलदेवीके लिये १०९६ शकके जय-वर्षमें कार्त्तिकी शुक्ला द्वादशीके दिन ब्राह्मणोंको तथा सोमेश्वरदेवके पूजोपलक्षमें भूमि दान की थी। ११०० शकमें राजा सोमेश्वरका शासनकाल शेष हुआ। पीछे उनके भाई सङ्कमने कुछ समय स्वाधीनभावसे और कुछ समय अपने भाई आहवमल्लके साथ मिल कर राज्य किया। ११०३ और ११०४ शकमें उत्कीर्ण शिलालिपिमें दोनों भाइयोंका शासनकाल लिखा है। इस अंतिम शकमें ही चालुक्यराज ४र्थ सोमेश्वरने कलचूडिराजवंशके पंजेसे अपने पूर्वपुरुषोंके खोये हुए राज्यका कुछ अंश उद्धार किया। उधर उत्तरके यादवराजोंने भी बचा खुचा अंश अधिकार कर लिया। इस समय सिङ्घण नाममात्रके राजा थे तथा उन्होंके समयसे कलचूड़िवंशका विलोप हुआ।

हम शिलालिपिसे तीन विभिन्न हैहय या कलचूरिवंशका शासनप्रभाव नाना स्थानोंमें विस्तृत देखते हैं। उन तीनोंमें चेदीका राजवंश ही आदि मूल और अत्यन्त प्रभावशाली थे। कल्याण और रतनपुरके राजवंश उनके शाखामात्र थे। जनसाधारणकी सुविधाके लिये उक्त राजाओंकी तालिका नीचे लिपिबद्ध की गई है—

चेदिके कलचूरिराजगण

१ काकवर्ण

२ शङ्करगण

३ बुद्धराज २रेके पुत्र—५८० ई०

* * * *

४ कोक्कल्ल १म ८७५ ई०
५ मुग्धतुङ्ग प्रसिद्ध धवल ४थेके पुत्र—९००
६ बालहर्ष ५वेंके पुत्र
७ केयूरवर्ष युवराजदेव ५वेंके पुत्र—९२५
८ लक्ष्मणराज ७वेंके पुत्र—९५०
९ शङ्करगणदेव ८वेंके पुत्र—९७०
१० युवराजदेव २य ८वेंके पुत्र—९७५
११ कोक्कलदेव २य १०वेंके पुत्र—१०००
१२ गाङ्गेयदेव विक्रमादित्य ११वेंके पुत्र—१०३८
१३ कर्णदेव १२वेंके पुत्र—१०४२
१४ यशःकर्णदेव १३वेंके पुत्र—११५२
१५ गयकर्ण देव १४वेंके पुत्र—११५१
१६ नरसिंहदेव १५वेंके पुत्र—११५५
१७ जयसिंहदेव १५वेंके पुत्र—११७७
१८ विजयसिंहदेव १७वेंके पुत्र—११८०

कल्याणके कलचूरिराजगण

१ जोगम
२ पेर्माड़ी (परमर्द्दी) १लेके पुत्र—११२८ ई०
३ त्रिभुवनमल्ल-विज्जल २रेके पुत्र—११५५
४ सोमेश्वर या सोविदेव ३रेके पुत्र—११६८
५ निःशङ्कमल्ल सङ्कम " ११७४
६ वीरनारायण आहवमल्ल " ११८०
७ सिङ्घण " ११८३

रत्नपुरके कलचूरिराजगण

१ कलिङ्गराज—चेदीश्वर कोक्कल्लके वंशधर। किसी किसी शिलालिपिमें इनका पुत्रके रूपमें और किसीमें पुत्रके वंशावतंशरूपमें वर्णन है। इन्होंने दक्षिण-कोशलके अन्तर्गत तुम्माननगरमें राजधानी बसाई।
२ कलल १लेके पुत्र
३ रत्नराज रत्नदेव १म या रत्नेश—२रेके पुत्र, रत्नपुरके प्रतिष्ठाता।
४ पृथ्वीदेव १म या पृथ्वीश ३रेके पुत्र।
५ जाजल्लदेव ४थेके पुत्र—१११४ ई०।
६ रत्नदेव २य—५वेंके पुत्र, कलिङ्गराज चोड़गङ्गके विजेता
७ पृथ्वीदेव २य ६ठेके पुत्र—११४५
८ जाजल्लदेव २य ७वेंके पुत्र—११६८
९ रत्नदेव ३य ८वेंके पुत्र—११८१
१० पृथ्वीदेव ३य ९वेंके पुत्र—११९०

कलचूरि, कल्याण, चेदी और रत्नपुर शब्द देखो।

९७३ से ११८८ ई०के मध्यवर्त्ती समयमें चालुक्य और कलचूरिराजाओंके यत्नसे दक्षिण भारतवासीका धर्म प्रभाव और सामाजिक अवस्था नष्ट हो कर नये भावका उदय हो रहा था। राजा त्रिभुवनमल्ल और २य विक्रमादित्यके शासनकालमें १०१७ शकको १४ वैश्यवणिकने एक बौद्धविहार तथा धारवाड़ जिलेके धर्मबोलल (वर्त्तमान दम्बोल) नगरमें एक देवमन्दिर बनवाया। १०१२ शकमें कोल्हापुरके शिलाहारपतिने एक दिग्गी खुदवा कर उसके किनारे शिव, बुद्ध और अर्हत्मूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की। इस समय नवोद्यमसे लिङ्गायत धर्मका अभ्युदय होनेके कारण जैनधर्म लोप हो गया। बहुतसे जैनमन्दिरोंको जिनमूर्त्ति दूर फेंक दी गई और उसके स्थानमें हिन्दू-देवदेवीकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित हुई।

हैहयवंशी—युक्तप्रदेशके बलिया जिलेकी एक राजपूत-शाखा। इस शाखाके लोग हयवंश भी कहलाते हैं। लोगोंका विश्वास है, कि यह राजपूतशाखा चन्द्रवंशसे उत्पन्न हुई है और सारे जिलेमें इनका बड़ा सम्मान है।

किंवदन्ती है, कि नर्मदा उपत्यकाकी माहेष्मतीपुरीमें चन्द्रवंशकी एक राजधानी थी। हैहयवंशीय राजा सहस्रार्जुन उस पुरी और वहांके राजवंशके प्रतिष्ठाता थे। पीछे इस वंशके ५२वें राजाने वंशपरम्परासे मध्यप्रदेशका रतनपुर सिंहासन अलंकृत किया था। एक समय दाक्षिणात्यभुवनमें हैहयवंशका यश और प्रताप खूब फैल गया था। बलियाके हयवंशी राजपूत अपनेको रतनपुर राजवंशसे उत्पन्न बतलाते हैं। करीब ८५० ई०में रतनपुरराजवंशके चन्द्रगोत नामक कोई कनिष्ठ राजकुमार उत्तर भारतमें तीर्थपर्यटनको निकले और सारण जिलेके गङ्गातीरवर्त्ती मांझा नगरमें बस गये। अनन्तर उन्होंने स्थानीय चेरो नामक असभ्य जातिको युद्धमें परास्त कर आसपासके स्थानोंको दखल कर लिया। उनके वंशधर दो सदी तक मांझामें रह कर गंगाके दक्षिणी किनारे बिहिया नामक स्थानमें

प्रतिष्ठित हुए। यहां भी वे लोग पांच सदी तक वास कर और पीछे चेरोंको पुनः परास्त कर अपने काबूमें लाये थे। इस समय उन लोगोंका बलवीर्य अक्षुण्ण और अप्रतिहत था।

१५२८ ई०के लगभग हैहयराज भोपत (भूपति) देव अथवा उनके इकलौते लड़केने मोहिनी नामकी एक ब्राह्मणकन्याका सतीत्व नष्ट किया। वह कन्या हैहय-वंशके पुरोहित कुलमें उत्पन्न हुई थी। उसके रूप-लावण्य पर आकृष्ट हो राजकुमारने बलपूर्वक उसे अपहरण कर अपनी पापप्रवृत्तिको चरितार्थ किया।

ब्राह्मण-कुमारी इस अपमान और आत्मग्लानिके मारे आगमें जल मरी। मृत्युकालमें उसने शाप दिया 'शीघ्र ही हैहयवंशकी कीर्त्ति और प्रभाव विलुप्त हो जायेगा और उसके वंशधर मानसिक कष्टसे जीवन बितायेंगे।' ब्राह्मणकन्याका वाक्य निष्फल नहीं हुआ। थोड़े ही समयमें हैहयवंशका अवश्यम्भावी अधःपतन शुरू हुआ। सामनेमें बड़ी बड़ी मुसीबतें देख इन लोगोंने शीघ्र ही उस अभिशप्त विहिया नगरीका परित्याग किया और गङ्गा पार कर वे सबके सब बलिया परगने चले गये। यहां कुछ दिन 'गंगाघाट' नामक स्थानमें रहनेके बाद वे हल्दी नामक स्थानमें गये और वहीं स्थायीरूपसे रहने लगे। आज भी हैहयवंशीय राजे इस हल्दीमें आ कर ही राजोपाधि ग्रहण करते हैं।

वर्त्तमान विहिया रेलस्टेशनके समीपवर्त्ती एक बड़े पीपल पेड़के नीचे मोहिनी ब्राह्मणीकी समाधि अवस्थित है। स्थानीय रमणियां उस समाधि-स्थलमें आ कर मोहिनीको सती और देवीकी अंशसंभूता जान कर उसकी पूजा करती है। मोहिनीके शाप देनेके बाद फिर कोई भी हैहयवंशधरको विहिया जानेका साहस नहीं करते। यहां तक कि, वे लोग विहियामें अपनेके पूर्वपुरुषोंके प्रतिष्ठित दुर्गका खंडहर भी देखनेको नहीं जाते। उनका रूप रंग देख कर कोई कोई पाश्चात्य जातितत्त्वविद् उन्हें तामिल जातिके बतलाते हैं। परंतु पुराणवर्णित हैहय जातिके साथ उन लोगोंका संबंध स्वीकार करनेमें कोई आपत्ति नहीं देखी जाती।

पुराण पढ़नेसे हमें पता चलता है, कि हैहय लोगोंने यदुवंशीय तालजङ्घों के साथ मिल कर बाहुराजको परास्त किया था, पीछे वे लोग राजा सगरसे परास्त हुए। महामति कर्णल टाडकी उक्तिसे हमें मालूम होता है, कि बुन्देलखण्डके अन्तर्गत सहजपुरकी उपत्यकामें हैहयवंशकी एक शाखा विद्यमान है। उन लोगोंकी संख्या थोड़ी होने पर भी वे पूर्वपुरुषों की वंशधारासे अवगत हैं और युद्धविग्रहमें बहुत कुछ प्रसिद्धि लाभ कर चुके हैं।

दाक्षिणात्यके प्रतिष्ठाशाली हैहयवंशका उत्तर भारतवर्षमें आना और उपनिवेश बसाना असम्भव नहीं है। ऊपर कही गई किंवदन्ती या वंशाख्यायिकाके मूलमें और कोई सत्यता नहीं रहने पर भी यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा, कि यह हैहयवंश दक्षिण भारतसे उत्तरमें आ कर बस गये हैं तथा आगे चल कर उन्होंने दक्षिण भारतमें सुपरिचित स्वजाति और ज्ञातिवर्गकी गौरव-कहानीको विस्मृति-जलमें डुबा दिया है। राजस्थान-वर्णित हैहयवंशके परिचयसे उत्तर भारतमें दूसरी हैहय शाखाकी विद्यमानता प्रमाणित होती है।

ह्विया, होइ, हि, एइको, है, एइहा और हून आदि चीन तातारवासी दुर्द्धर्ष जातिके नामके साथ हैहय-शब्दका शब्दसादृश्य देख कर अध्यापक विलसनने कहा है, कि हैहय लोग शायद राजपूतोंकी तरह मध्य-एशिया-से भारतवर्षमें आये हैं तथा वे ऊपर कही गई तुर्कजाति-मेंसे एक हैं। दुःखका विषय है, कि इस मतको हम लोग समीचीन नहीं मान सकते।

हैहयसंवत्—हैहय या चेदिराजवंशका चलाया हुआ सम्वत्भेद। इसे कलचूरि संवत् भी कहते हैं। डाक्टर कीलहोर्णने प्रमाणित किया है, कि २४८ ई०की ५वीं सितम्बरसे इस अब्दका आरम्भ है।

हैहै (हिं० अव्य०) हाय, अफसोस।

होंठ (हिं० पु०) ओष्ठ।

होंठल (हिं० वि०) मोटे होंठोंवाला।

होंठी (हिं० स्त्री०) १ किनारा, बारी। २ छोटा टुकड़ा।

हो (सं० पु०) पुकारनेका शब्द या सम्बोधन। २ आह्वान। ३ विस्मय।

हो (लड़का कोल)—सिंहभूम जिलावासी कोलजातिकी

एक शाखा। हो शायद संथाल और मुंडाभाषाके होरो शब्दका अपभ्रंश है। इस शब्दसे मनुष्यका बोध होता है। हो जाति कई गोत्रोंमें विभक्त है। सगोत्रमें विवाह नहीं हो सकता। इसके अलावा मातृसम्पर्कीय नजदीकी रिश्तेदारसे विवाह करनेमें उन्हें कोई आपत्ति नहीं।

ये लोग अपनेको मुंडा बतलाते हैं। छोटानागपुर इनका आदिम वासस्थान है। शायद ये लोग कोल लोगोंकी ही एक शाखा है। सामाजिक हिसावसे होगण स्वातन्त्र्यप्रिय है। ये लोग किसो दूसरी जातिमें मिलना नहीं चाहते। यहां तक, कि आस पासमें विदेशियोंका बस जाना उन्हें मालूम होता है।

ये लोग एक अद्भुत सृष्टितत्त्व पर विश्वास करते हैं। बहुतोंका ख्याल है, कि ओत्वेराम और सिंबोङ्गाको किसीने भी सृष्टि नहीं की। वे आपसे आप उत्पन्न हुए हैं। सिंबोङ्गाने ही आदमानव और मिट्टी पहाड़, जड़ आदिकी सृष्टि की। पीछे घास और वृक्षसे पृथ्वी ढक दी गई। जब कुल मनुष्यको आराम मिल गया, तब सिंगबोङ्गाने एक बालक और बालिकाकी सृष्टि कर उन्हें एक गहरमें रख दिया।

ये दोनों इतने सरल और अनभिज्ञ थे, कि सङ्गमकी बिलकुल इच्छा न थी। अतः सिंबोङ्गाने अपना अपना उद्देश व्यर्थ होता देख दोनोंको धानका मद व्यवहार करना सिखाया। उसे पीनेसे दोनोंको कामका उदय हुआ। इस आदि जनक जननीसे १२ कन्या और १२ पुत्र उत्पन्न हुए। इसके बाद सिंबोङ्गाने एक भोजकी तैयारी की जिसमें बारह भाइयोंको एक एक बहन दे दी। इस प्रकार जब बारह जोड़े हुए, तब उन्होंने भोजमें जो सब वस्तु तैयार हुई थी उनमेंसे मनमुआफिक उठा लेने उन लोगोंसे कहा। पहले और दूसरे जोड़ेने भैंस और बैलका मांस लिया। उसी जोड़ेसे हो और भूमिजकी उत्पत्ति हुई। जिन्होंने शाकसब्जी ली, वे ही ब्राह्मण और क्षत्रियके आदि जनक-जननी हुए। मुंईयां लोगोंके आदि पिताने शामुक और संथालोंके पूर्वपुरुषने सूअरका मांस पसन्द किया था। इसी प्रकार मानवसाधारणकी समस्त जातिकी उत्पत्ति हुई। मद्यपान करना भगवान्‌का आदेश है, ऐसा समझ कर सभी होलोग खूब शराब पीते हैं।

ये लोग अन्यान्य अनार्य्यजातिसे बढ़ कर देखनेमें सुन्दर हैं। किसो किसीके मुंहकी गठन और लावण्य आर्यों सा है। स्त्रियोंमें सुन्दरीकी संख्या भी कम नहीं है। पुरुष अनेक समय नंगे रहते हैं, स्त्रियां साधारणतः कमरमें एक कपड़ा लपेट कर चलती फिरती हैं। केवल चाईवासा आदि शहरोंमें सुसभ्यकी तरह पोशाक पहनती हैं।

जब बच्चा जन्म लेता है, तब मातापिताको बीसो अर्थात् अशौच होता है। इस समय स्वामी स्त्रीको अपने हाथसे रसोई कर खिलाता है।

प्रत्येक ग्राममें अनेक अविवाहिता वृद्धा स्त्री हैं। उसका कारण यह है, कि कन्याका बाप बरके पिता आदिसे बहुत रुपया मांगता है, पर वे लोग इतना रुपया दे कर विवाह करना नहीं चाहते। इसके फलसे कितनी वृद्धा स्त्रियां आजीवन कुमारी ही रह जाती हैं। ऐसी अवस्थामें उनका व्यभिचारिणी होना असम्भव नहीं है। इन लोगोंकी विवाह-विधिमें कोई मन्त्रपाठ नहीं है। वर अपने बरतनसे मदिरा ढाल कर कन्याको देता है, कन्या उसमेंसे कुछ पी कर वरको लौटा देती है। यही हुई इन लोगोंकी विवाह-पद्धति।

ये लोग तीर धनुष चलानेमें बड़े सिद्धहस्त, व्यायाममें पटु और साधारणतः कृषिकर्मोपजीवी होते हैं। इन लोगोंका माघपर्व प्रधान उत्सव है। माघमासमें जब इन लोगोंका घर अनाजसे भरा रहता है, तब ये लोग खूब आमोद प्रमोद मनाते हैं। मृतदेहका ये लोग यथेष्ट सम्मान करना जानते हैं। इनकी मृतदेह-सत्कारकी प्रथा बहुत कुछ खासिया और गारो लोगोंसी है। शवदाह प्रथा ही प्रचलित देखी जाती है।

अभी इन लोगोंमें धर्ममतकी कोई स्वतन्त्रता नहीं है। वे अभी जिस धर्ममत पर विश्वास करते हैं, वह या तो हिन्दूपुराणसे या ईसाई पादरियोंके मुखसे निकली हुई बाइबिलसे लिया गया है। कोल शब्द देखो।

होइ-होइ—चीनसाम्राज्यमें औपनिवेशिक एक मुसलमान जाति। युपन प्रदेशमें मुगल-राजवंशके जमाने मुसल-

मानोंने उइगुर-होइ-होइको उपाधि पाई थी। आगे चल कर वह संक्षेप 'होइ-होइ' शब्द चीन देशकी सभी मुसलमान जातियोंके ऊपर आरोपित हुआ और इससे एक स्वतन्त्र जाति समझी जाने लगी। चीन और मंचू लोग अभी वाणिज्य व्यवसायके लिये चीन राज्यमें अधिष्ठित मुसलमान मात्रको ही इसी नामसे पुकारते हैं।

होइ-किं—बौद्ध धर्मावलम्बी एक चीन-परिव्राजक। ये सुप्रसिद्ध परिव्राजक फाहियान तथा अन्यान्य चीन-वासियोंके साथ ३९९-४०० ई०में खोतान (यु-हन्) नगरमें पहुंचे। इसके बाद फा-हियानके त्सु-बो, यु-होइ और त्सुलिङ्ग पर्वत लांघ कर किपच्छ (वर्त्तमान लादक) प्रदेश आने पर होइ किं दूसरे रास्तेसे तातार राज्य और काबुलके बीचसे होते हुए उनसे जा मिले। किपच्छसे दोनों परिव्राजक एक मास पश्चिमकी ओर चल कर थो-ली नामक स्थानमें पहुंचे थे। अनन्तर वे लोग भारतवर्षके नाना स्थानों तथा सिंहलद्वीपके अनेक बौद्ध तीर्थों, मठों और संघारामादिके दर्शन करते हुए नावसे जव-द्वीप गये। वहांसे उन लोगोंने फिर स्वदेशको यात्रा की थी। फाहियान उस समय भारतवर्षमें बौद्ध-धर्मका प्रभाव और वैष्णव धर्मका अभ्युत्थान देख कर उसे अपनी फो-किउ-कि नामक भ्रमण-विवरणीमें लिपिबद्ध कर गये हैं। फाहियान देखो।

होई (हिं० स्त्री०) दीवालीके आठ दिन पहले होनेवाला एक पूजन या त्योहार। इसमें ऐसी दो स्त्रियोंकी कथा कही जाती है जिनमेंसे एकको संतान होती ही नहीं थी और दूसरीको संतान हो हो कर मर जाती थी।

होगल (सं० पु०) तृणविशेष, एक प्रकारकी नरसल।

होगला (हिं० पु०) होगल देखो।

होजन (हिं० पु०) एक प्रकारका हाशिया या किनारा जो कपड़ोंमें बनाया जाता है।

होटल (अं० पु०) वह स्थान जहां मूल्य ले कर लोगोंके भोजन और ठहरनेका प्रबंध होता है।

होड़ (सं० पु०) १ नौकाविशेष, तरंदा। २ गौड़देशीय श्रोत्रीय ब्राह्मणविशेषकी उपाधि। ३ बङ्गालकी एक कायस्थ उपाधि।

होड़ (हिं० स्त्री०) १ शर्त, बाजी। २ एक दूसरेसे बढ़ जानेका प्रयत्न, स्पर्द्धा। ३ जिद, हठ। ४ समान होनेका प्रयास, बराबरी।

होड़ाबादी (हिं० स्त्री०) होड़ा-होड़ी।

होड़ाहोड़ी (हिं० स्त्री०) १ चढ़ा ऊपरी, दूसरेके बराबर होने या दूसरेसे बढ़ जानेका प्रयत्न। २ शर्त, बाजी।

होड़ (सं० पु०) चौर, चोर।

होढ़ (सं० त्रि०) चुराया हुआ, चोरीका।

होतव (हिं० पु०) होनहार, होनेवाला।

होतव्य (हिं० पु०) भवितव्य, होनेवाला।

होतव्यता (हिं० स्त्री०) भवितव्यता, होनेवाली बात।

होता (हिं० पु०) होतृ देखो।

होतृ (सं० पु०) जुहोतीति हु-(नप्तृनेष्टृत्वष्टृहोतृेति। उण् २।९६) इति तृण् निपातितश्च। १ ऋग्वेदवेत्ता। २ होमकर्त्ता, मन्त्र पढ़ कर अग्निकुंडमें हवनकी सामग्री डालनेवाला। यह चार प्रधान ऋत्विजोंमें है जो ऋग्वेदके मन्त्र पढ़ता और देवताओंका आह्वान करता है। इसके तीन पुरुष या सहायक होते हैं—मैत्रावरुण, अच्छावाक और ग्रावस्तुत्। ३ पुरोहित, यज्ञादिस्थलमें ऋक्प्रयोक्ता। ४ यष्टा, यजमान। (त्रि०) ५ यज्ञकर्त्ता।

होतृक (सं० पु०) होता।

होतृचमस (सं० पु०) होताका चमस, होमका उपयुक्त चमस।

होतृजप (सं० पु०) होताका जप।

होतृमत् (सं० त्रि०) ऋषियुक्त। (ऋक् १०।४१।२)

होतृवूर्य्य (सं० क्ली०) होतृवरणके योग्य कर्म, यज्ञ।

होतृवेद (सं० पु०) यज्ञ। (ऐत० ब्रा० ६।११)

होतृसदन (सं० क्ली०) यज्ञवेदी, वह स्थान जहां होता बैठ कर होम करते हैं।

होतृकार (सं० पु०) होताकी माता। व्याकरणके सन्धिसूत्रमें लिखा है, कि होतृ ऌ-कारके स्थानमें ऋकार और ऌकारमें सन्धि हो कर दीर्घ ऋकार हो 'होतॄकार' यह पद बना।

होत्र (सं० क्ली०) हूयते इति (हु यामाश्रुभसिभ्यस्त्रन्। उण् ४।१६७) इति त्रन्। १ हविः। २ होम।

होत्रक (सं० पु०) १ होता। (क्ली०) २ होम।

होलवह (सं० त्रि०) यज्ञवोढ़ा। (ऋक् ५।२६।७)

होलवाहन (सं० पु०) हव्यवाहन, अग्नि।

होला (सं० स्त्री०) हु-तन्-टाप्। १ स्तुति। २ आहूयमान देवता। (ऋक् २।१८।८)

होलाविद् (सं० त्रि०) होम या सप्तहोत्रकवेत्ता।

होलाशंसिन् (सं० पु०) होमसूचक, वह कार्य जो होता करते हैं।

होलिन् (सं० पु०) होत्रं विद्यते अस्य इति इन्। होता।

होलिय (सं० त्रि०) होतृसम्बन्धो, होताका स्वभूतचमस।

होली (सं० स्त्री०) हु-तृच्-ङीष्। यजमानरूपा शिवकी एक मूर्त्ति।

होलीय (सं० क्ली०) १ हविर्गेह। (त्रि०) २ होत्रसम्बन्धो।

होदाल—पंजाबके गुरगांव जिलेके अधीन एक वाणिज्य-प्रधान शहर। यह अक्षा० २७° ५३′ उ० तथा देशा० ७७° २३′ पू० दिल्ली और आगरा जानेके रास्ते पर अवस्थित है। जनसंख्या ८ हजारसे ऊपर है। भरतपुरके जाटराज सूरजमलका होदालके साथ वैवाहिक सम्बन्ध था। उन्हींके समय यहां बहुतसे प्रासाद और हर्म्य बनाने गये थे ; परन्तु अभी वहां लोकसमागमके बदले वानर-समागम होता है और वे सब बड़ी बड़ी इमारतें खंडहरमें पड़ी हैं। केवल एक चौकोन सीढ़ी लगी हुई पुष्करिणोका सौन्दर्य ही अभी अक्षुण्ण है। मराठोंके समय होदालमें फरासी और वायेनकी जागीर थी। पीछे लार्ड लेकने जब उन्हें परास्त किया, तब उन्होंने १८०३ ई०में यह महम्मद खांको जागीरसूत्रमें दे दिया। उनकी मृत्युके बाद १८१३ ई०में यह वृटिशराजके दखलमें आया। यहां सराय, स्कूल, डाकघर, अस्पताल और थाना हैं।

होनहार (हिं० वि०) १ भावी, जो होनेको है। २ अच्छे लक्षणोंवाला, जिसमें भावी उन्नतिके चिह्न हों। (पु०) ३ वह बात जो होनेको हो, भवितव्यता।

होना (हिं० क्रि०) १ अस्तित्व रखना, उपस्थित या मौजूद रहना। २ विकार-सूचक क्रिया, एक रूपसे दूसरे रूपमें आना। ३ साधित किया जाना, भुगतना। ४ निर्माण किया जाना, बनाना। ५ घटनासूचक क्रिया, कोई बात या संयोग आ पड़ना। ६ किसी रोग, व्याधि, अस्वस्थता, प्रेतबाधा आदिका आना, किसी मर्ज या बीमारीका घेरना। ७ प्रभाव या गुण दिखाई पड़ना, असर देखनेमें आना। ८ उद्भव पाना, जनमना। ९ बीतना, गुजरना। १० प्रयोजन या कार्य सधना, काम निकलना। ११ परिणाम निकलना, फल देखनेमें आना। १२ क्षति आना, हानि पहुंचना।

होनावर—१ बम्बई प्रदेशके दक्षिण कनाड़ा जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १३° ५३′ से १४° २६′ उ० तथा देशा० ७४° २६′ से ७४° ४७′ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ४२६ वर्गमील है। इसमें होनावर और भाटकल नामक २ शहर और १५ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या लाखसे ऊपर है। गरसोप्पा नदी इस तालुकसे होती हुई पूरबसे पश्चिमकी ओर चली गई है।

२ उक्त तालुकका प्रधान नगर और बन्दर। यह अक्षा० १४° १७′ उ० तथा देशा० ७४° २७′ पू०, कारवारसे ५० मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहां गेरसोप्पा या शिरावती नदी आ कर समुद्रमें मिल गई है यहांकी आबादी ७ हजारके लगभग है। बहुत पहलेसे यह स्थान समुद्रबन्दर और वाणिज्यके लिये प्रसिद्ध है। १३वीं सदीके शेष भागमें पहले अबुल फेदा, पीछे इबन् बतूता इस स्थानका अच्छी तरह उल्लेख कर गये हैं। उस समय यहां बहुतसे धनी लोग रहते थे। १६वीं सदीमें चावलके व्यवसायके लिये इस स्थानकी बड़ी प्रसिद्धि थी, इस कारण दूर दूर देशसे नाव जहाज यहां आते थे। १५०५ ई०में पुर्त्तगीजोंने यहां दुर्ग बनाया। पुर्त्तगीज देखो। पुर्त्तगीज प्रभाव विलुप्त होने पर यह स्थान बेदनूरके राजाके अधिकारमें आया था। पीछे हैदर अलीने इसे दखल किया। १७९९ ई०में टीपू सुलतानकी पराजयके बाद यह स्थान वृटिश अधिकारभुक्त हुआ है।

शहरमें एक सब-जजकी अदालत, एक अस्पताल, एक मिडिल स्कूल तथा चार अन्यान्य स्कूल हैं।

होनी (हिं० स्त्री०) १ उत्पत्ति, पैदाइश। २ वृत्तान्त, हाल। ३ भावी, होनेवाली बात या घटना। ४ वह बात जिसका होना संभव हो, हो सकनेवाली बात।

होबर (हिं० पु०) सोहन चिड़ियाका एक भेद, तिलूर।

होम (सं० पु०) हवनमिति (अर्तिस्तुसुहुसृधिति । उण् १।१३६) इति मन् । १ देवताओंके उद्देशसे अग्निमें घृत, जौ आदि डालना, आहुति देनेका कर्म । यज्ञादिमें विधिपूर्वक अग्नि जला कर जो घृतादिकी आहुति दी जाती है उसे होम कहते हैं । यह पञ्च महायज्ञके अन्तर्गत एक यज्ञ है । शास्त्रमें लिखा है, कि द्विजातियोंको प्रतिदिन पञ्चमहायज्ञका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये ।

सभी दिन होम किया जा सकता है और यह प्रति दिनका कर्त्तव्य है। पञ्च महायज्ञके मध्य देवताके उद्देशसे होम करनेका नाम दैवयज्ञ है । (मनु ३।७०)

विधिपूर्वक अध्ययन और अध्यापनका नाम ब्रह्मयज्ञ, अन्नादि या उदक द्वारा पितृलोकके तर्पण करनेका नाम पितृयज्ञ और होमका नाम दैवयज्ञ है। जो गृहस्थ प्रति दिन पञ्च महायज्ञका अनुष्ठान करते हैं तथा एक दिन भी उसे नहीं छोड़ते वे पञ्चसूनाजनित पापसे छुटकारा पाते हैं। (मनु ३।७५-६)

होम ही इस जगत्‌की रक्षा और स्थितिका मूल है। होमका सम्यक् अनुष्ठान नहीं करनेसे वृष्टि नहीं होती। वृष्टि नहीं होनेसे शस्य उत्पन्न नहीं होता, शस्यके उत्पन्न नहीं होनेसे प्रजा उत्पन्न नहीं होती। इस कारण जगत् धीरे धीरे ध्वंसको प्राप्त होता है। अतः होम ही चराचर जगत्‌स्थितिका मूल है।

प्रतिदिन होमजन्य संस्कृत अग्निमें पक्व अन्न द्वारा वक्ष्यमाण प्रणालीके अनुसार निम्नोक्त देवताओंका होम करे।

'अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा, अग्निषोमाभ्यां स्वाहा, विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा, धन्वन्तरये स्वाहा, कुह्वै स्वाहा, अनुमत्यै स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा, द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा, अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इत्यादि प्रकारसे होम करे। इनका होम अन्न द्वारा करना होता है। इसके बाद प्रति देवताका हविसे होम करके पूर्वादि दिक्क्रमसे दक्षिणावर्त्तमें सभी ओर इन्द्रादि देवताओंके उद्देशसे होम करना होता है। (मनु ३।८४)

साग्निक ब्राह्मण ही सायंप्रातर्होम करेंगे। जो सब ब्राह्मण निरग्निक हैं उन्हें यह होम करनेका अधिकार नहीं है।

इस नित्यहोमके अतिरिक्त विवाहादिसंस्कार, दुर्गोत्सवादि पूजा, व्रतप्रतिष्ठादि कर्म और वृषोत्सर्ग आदिमें जो होम होता है उसे नैमित्तिक होम कहते हैं। निमित्तवशतः होमानुष्ठान होनेके कारण इसका नैमित्तिक नाम पड़ा है। यह नैमित्तिक होम तान्त्रिक और वैदिकके भेदसे दो प्रकारका है। कालीपूजा, जगद्धात्री पूजा, दीक्षाकर्म आदि जो सब तन्त्रोक्त कर्म हैं उनमें तन्त्रोक्त होम करना होता है, इस कारण उन्हें तान्त्रिक होम कहते हैं। तन्त्रोक्त कार्यको छोड़ कर संस्कारादि कार्यमें वैदिक होम होता है। वैदिक होममें साम, ऋक् और यजुः इन तीन वेदोंकी सामान्य कुशण्डिकाके नियमानुसार कुशण्डिका कर होम करना होता है। सभी कार्योंके होमके लिये ही कुशण्डिका करनी होती है, इस कारण उसका सामान्य कुशण्डिका नाम पड़ा है। यह वेदभेदसे भिन्न भिन्न प्रकारकी होती है।

कुशण्डिका शब्द देखो।

यह वैदिक होम यथाविधान अग्नि स्थापन कर करना होता है। किस किस होममें अग्निका क्या क्या नाम होता है उसका विषय रघुनन्दनने संस्कारतत्त्वमें इस प्रकार लिखा है—

लौकिक कार्यमें अग्निका नाम पावक, गर्भाधानमें मारुत, पुंसवनमें चन्द्रमा, शुङ्गाकर्ममें शोभन, सीमन्तोन्नयनमें मङ्गल, जातकर्ममें प्रगल्भ, अन्नप्राशनमें शुचि, चूड़ाकर्ममें सत्य, उपनयनमें समुद्भव, गोदान संस्कारमें सूर्य, केशान्तमें अग्नि, विसर्गमें वैश्वानर, विवाहमें योजक, चतुर्थी होममें शिखी, धृतिहोममें अग्नि, प्रायश्चित्त होममें विधु, पाकयज्ञमें साहस, लक्षहोममें वह्नि, कोटिहोममें हुताशन, पूर्णाहुतिमें मृड़, शान्तिकर्ममें वरद, पौष्टिककर्म अर्थात् दुर्गोत्सवादि कर्ममें बलद, अभिचार कर्ममें क्रोध, कोष्ठमें जठर तथा अमृतभक्षणमें क्रव्याद, ये सब नाम होंगे। होमके समय अग्निका नामकरण, आवाहन और पूजन करके होम करना होता है। यथा—'अग्ने त्वममुकनामासि' इस प्रकार अग्निका नामकरण कर पद्धतिके अनुसार ध्यानादि करके पूजा करे। प्रज्वलित अग्निमें होम करना उचित है। अप्रज्वलित अग्निमें होम करनेसे होमका फल नहीं होता। होमकालमें घृतके साथ जौ तिल आदि

मिला कर होम करना होता है। भिन्न भिन्न कार्योंमें होम का समिध भी भिन्न भिन्न प्रकारका होता है। परन्तु सामान्य कुशण्डिका स्थलमें यज्ञडूमरके समिधसे होम किया जाता है। होमके शेषमें होमवैगुण्यका नाश करनेके लिये प्रायश्चित्त होम करना कर्त्तव्य है। महाव्याहृति द्वारा प्रायश्चित्त होम करना आवश्यक है। चरुहोमस्थलमें सामान्य कुशण्डिका करते करते उखलीमें मूसलसे धान कूट कर सूपसे फटक ले। पीछे उस चावलको दूधमें डाल होमाग्निमें पाक करे। जब चावल अच्छी तरह सिद्ध हो जाय, तब उसे उतार ले। उसी चरु द्वारा विधि पूर्वक होम करना होता है। चरु द्वारा होम और चरुपाक करनेकी प्रणाली पद्धतिमें सविस्तार लिखी है, विस्तार हो जानेसे भयसे उसका विवरण यहां नहीं दिया गया। होमकी अन्तिम पूर्णाहुति दे कर होम शेष करना होता है। वेदी पर बैठ कर होम करनेका विधान है। परन्तु पूर्णाहुति देनेके समय उठ कर आहुति देना आवश्यक है। इस समय यजमान यदि स्वयं होम न करके प्रतिनिधि द्वारा करावे, तो उसे प्रतिनिधिका स्कन्धदेश स्पर्श करना पड़ेगा।

होमके शेषमें पूर्णपात्र होतृदक्षिणा देनी होती है। अष्टमुष्टि अर्थात् आठ मुट्ठी चावलका एक कुंचि, ८ कुंचिको एक पुष्कल और ४ पुष्कलका एक पूर्णपात्र होता है। इतना ही चावल और तदुपयोगी उपकरण देना होता है। अथवा बहुभोक्ताकी जिससे अच्छी तरह तृप्ति हो उतनी ही वस्तु द्वारा पूर्णपात्र करे।

इसके बाद 'अग्ने त्वं समुद्रं गच्छ' यह कह कर दधि द्वारा अग्निको विसर्जन तथा 'पृथ्वि त्वं शीतला भव' इससे जल द्वारा पृथिवीको शीतल करे। होमके शेषमें हुतशेष भस्म द्वारा तिलक लगानेका विधान है।

तान्त्रिक होमस्थलमें नित्य और नैमित्तिक दो प्रकारके होम हैं। इनमेंसे प्रतिदिन जो होम किया जाता है उसे नित्य होम और दीक्षाकर्म तथा पूजादि निमित्तवशतः जो होम किया जाता है उसे नैमित्तिक होम कहते हैं। तन्त्रसारमें इस होमका विशेष विवरण लिखा है।

साधक यदि प्रतिदिन नित्यहोमका अनुष्ठान करे, तो उसे सर्वार्थकी सिद्धि होती है। साधक जिस देवताका उपासक है, उसी देवताके उद्देशसे होम करे। पूजा, तर्पण, और होम ये तीनों ही साधकके अभीष्ट फलप्रद हैं। पहले देवताकी पूजा, पीछे तर्पण और होम करनेका विधान है। यह नित्यहोम करनेमें पहले बालूसे चौकोन मण्डल बना कर उसमें तीन रेखा अंकित करे। उन तीन रेखाओंको अर्घ्योदक द्वारा प्रोक्षण कर विधिपूर्वक अग्नि लावे और 'क्रव्यादेभ्यो नमः' यह पढ़ कर अग्निस्थापन करे। इसके बाद जिस देवताका होम होगा, उसी देवताका मूलमन्त्र उच्चारण कर कुण्ड, स्थण्डिल या भूमि पर अग्नि प्रज्वलित करे। 'भूः भुवः स्वः' इन तीन व्याहृति द्वारा अग्निको प्रज्वलित करना होता है तथा 'भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, स्वः स्वाहा' इन तीन मन्त्र द्वारा अग्निमें घृताहुति देना उचित है। इसके बाद षडङ्ग द्वारा आहुति दे कर जिस जिस देवताका होम होगा, उस उस देवताकी पूजा करके मूलमन्त्रसे १६ बार आहुति प्रदान करे। इसके बाद इन्दुमण्डलमें होम विसर्जन करना होता है। इसी प्रणालीसे नित्य होम किया जाता है।

संक्षेपहोम—साधक नैमित्तिक पूजादि स्थलमें यदि वृहद्धोम न कर सके, तो संक्षेपमें होम करे। इस होमका विधान इस प्रकार है। बालुकामण्डलमें देवता भेदसे उस देवताका चक्र अंकित करके पूर्व और उत्तर ओर तीन तीन रेखा खींचे। अनन्तर जिस देवताका होम होगा, उस देवताके मूलमन्त्रमें स्थण्डिल अवलोकन, 'फट्' मन्त्रसे तारण और मूलमन्त्रसे प्रोक्षण करके हुं इस मन्त्रसे अभ्युक्षण करे। इस प्रकार स्थण्डिल संस्कृत होता है। स्थण्डिल संस्कार हो जाने पर मूलमन्त्रका उच्चारण करके 'कुण्डाय नमः' यह पढ़ कर कुण्डपूजा करे। पहले जो उत्तर और पूर्वकी ओर तीन रेखा खींची गई थीं, उन रेखाओंके पूरबकी ओर 'ओं मुकुन्दाय नमः ओं ईशानाय नमः, ओं पुरन्दराय नमः' यह पढ़ कर उनकी पूजा करे। अनन्तर उत्तर ओरकी तीन रेखाकी 'ओं ब्रह्मणे नमः, ओं वैवस्वताय नमः, ओं इन्द्रवे नमः' इस मन्त्रसे पूजा करनी होती है। यह होमकी साधारण विधि है। सुन्दरीपक्षमें कुछ विशेषता है। उन्हें षट्तारी-मन्त्रसे अर्थात् 'ऐं ह्रीं श्रीं ऐं

क्लीं सौः ब्रह्मणे नमः' इस मन्त्रसे पूजा करनी चाहिये।

होमवेदी पर पहले षट्कोण, उसके बाहर वृत्त और वृत्तके बाहरमें चार द्वारवाला चौकोन घर बना कर उसमें पुष्पाञ्जलि द्वारा देवताकी पूजा करे। पहले प्रणव द्वारा अभ्युक्षण और मूलमन्त्र द्वारा पुष्पाञ्जलि देनी होगी। होम-वेदीके अग्नि आदि कोणोंमें निम्नोक्त देवताओंकी पूजा करना उचित है। 'ओं धर्माय नमः, ओं ज्ञानाय नमः, ओं वैराग्याय नमः, ओं ऐश्वर्याय नमः', पूर्वादि ओर 'ओं अधर्माय नमः, ओं अज्ञानाय नमः, ओं अवैराग्याय नमः, ओं अनैश्वर्याय नमः' इस प्रकार होमवेदीके कोण और दिशाओंकी पूजा करके वेदीके मध्यमें पूजा करे। ओं अनन्ताय नमः, ओं पद्माय नमः, ओं अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः, उं सोममण्डलाय षोड़शकलात्मने नमः, वं वह्निमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः, इस प्रकार पूजा करके वेदीमें जो अष्टदल पद्म अङ्कित किये गये हैं, उनके केशरके पूर्वादि और तथा मध्यमें निम्नोक्त प्रकारसे पूजा करनेका विधान है। ओं पीतायै नमः, श्वेतायै नमः, ओं अरुणायै नमः, ओं कृष्णायै नमः, ओं धूम्रायै नमः, ओं तीव्रायै नमः, ओं स्फुलिङ्गिन्यै नमः, ओं रुचिरायै नमः, ओं ज्वालिन्यै नमः वं वह्न्यासनाय नमः। इस प्रकार पूजा करके अग्निका ध्यान करे। ध्यानमन्त्र इस प्रकार है—

"वागीश्वरीमृतुस्नातां नीलेन्दीवरलोचनां।
वागीश्वरेण्य संयुक्तां क्रीड़ाभावसमन्विताम्॥"

यह ध्यान करके "ओं ह्रीं वागीश्वराय नमः, ओं ह्रीं वागीश्वर्य्यै नमः" इस मन्त्रसे पञ्चोपचारमें पूजा करे। इस प्रकार पूजा करके सूर्य्यकान्तादि मणिसम्भूत या श्रोत्रियगृहमें स्थित अग्नि लावे। होमाग्निमें विशेष विधान यह है, कि कोई अग्नि ला कर उसमें होम नहीं करे, करनेसे होमका फल नहीं होता। पाषाणजात, अरणिजात, अरण्यस्थ या वेदविद् ब्राह्मणगृहस्थित अग्नि विशुद्ध है। यही विशुद्ध अग्नि ले कर उसमें होम करना उचित है।

वह्नि लाते समय सुन्दरी पक्षमें कुछ विशेषता है। उन्हें 'कामेश्वराय नमः' कह कर पूजा करनी होती है। इसका विशेष विवरण तन्त्रसारमें लिखा है।

"अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनं।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं सर्वतोमुखं॥"

इस मन्त्रसे अभ्युपस्थापन करके निम्नोक्त मन्त्रसे अग्निकी पूजा करना आवश्यक है। 'ओं अग्नेर्हिरण्यादिसप्तजिह्वाभ्यो नमः, ओं सहस्रार्च्चिषे हृदयाय नमः' ओं अग्निषडङ्गेभ्यो नमः, ओं अग्नये जातवेदसे इत्याद्यष्टमूर्त्तिभ्यो नमः, तद्बाह्ये ओं ब्राह्माद्यष्टशक्तिभ्यो नमः, तद्बहिः ओं पद्माद्यष्टनिधिभ्यो नमः, तद्बाह्ये ओं इन्द्रादिलोकपालेभ्यो नमः, तद्बाह्ये ओं वज्राद्यस्त्रेभ्यो नमः' इस प्रकार पूजा करे। पीछे जिस पात्रमें घृत रहेगा, उस पात्रमें प्रादेश परिमाणका दो कुशपत्र रख कर घृतको तीन भाग करके इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्नारूपमें उसका स्मरण करे। पीछे श्रुव द्वारा दक्षिण भागसे आज्य ग्रहण कर 'ओं अग्नये स्वाहा' इस मन्त्रसे अग्निके दक्षिण नेत्रमें आहुति तथा उसके वाम भागसे आज्य ले कर 'ओं सोमाय स्वाहा' मन्त्रसे वाम नेत्रमें आहुति तथा मध्य भागसे आज्य ले कर ओं अग्निषोमाभ्यां स्वाहा इस मन्त्रसे अग्निके ललाटनेत्रमें आहुति दे। पुनर्वार उस पात्रके दक्षिण ओरसे ओं नमः, इस मन्त्रसे घृत ले कर ओं अग्नये स्विष्टिकृते स्वाहा, इस मन्त्रसे अग्निमुखमें होम करे। इसके बाद महाव्याहृति होम करे। 'ओं भूः स्वाहा, ओं भुवः स्वाहा, ओं स्वः स्वाहा, ओं वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा' इस मन्त्रसे तीन बार आहुति दे।

उक्त प्रकारसे सभी आहुति दे कर अग्निमें जिस देवताके उद्देशसे होम होगा, उस देवताके मूलमन्त्र द्वारा पीठ पूर्वक देवताकी पूजा और होम करे। इसके बाद मूलदेवताकी पूजा करके केवल घृत द्वारा मूलदेवताके उद्देशसे मूलमन्त्र द्वारा पचास बार आहुति दे। इस प्रकार आहुति दी जाने पर वह्नि और देवताका एक साथ स्मरण करना होता है। इस प्रकार स्मरण करके मूलमन्त्र द्वारा फिर ग्यारह बार आहुति दे। यह आहुति देनेके बाद होमका सङ्कल्प करना होता है। जिस देवताका जो समिध कहा गया है, उसीसे साधारणतः उस देवताका होम करना उचित है। तान्त्रिक कार्यमें विल्व पत्र द्वारा होम

होता है। जितने विल्वपत्र द्वारा होम होगा उतने विल्वपत्रके संख्यानुसार संकल्प कर लेना होता है। घीके साथ तिल मिला लेना आवश्यक है। जिस देवताका होम होगा, उस देवताके मूलमन्त्र द्वारा तथा अन्तमें स्वाहा जोड़ कर निर्दिष्ट संख्यक विल्वपत्र द्वारा होम करे। उसकी संख्या ८, १८, १०८,१००८ आदि होती है। पर जिसकी जैसी शक्ति है, उसे उसी शक्तिके अनुसार होम करना उचित है। जिस बिल्वपत्र द्वारा होम किया जाता है, वह कटा, फटा और कोड़ोंका खाया न होना चाहिये। वह परिष्कार परिच्छन्न और तीन पत्तोंवाला होगा। तन्त्रसारमें वृहद्होमपद्धति विशद भावमें लिखी है। साधारणतः संक्षेपहोम द्वारा ही काम चलता है।

जहां घृत द्वारा होम होता है, वहां प्रत्येक आहुतिमें दो तोला करके घृत देना आवश्यक है। दुग्ध होम, पञ्चगव्य होम, मधु होम और दुग्धान्न होममें ये सब वस्तु प्रति आहुतिमें दो तोला करके देनी होती है। दधि होममें हस्त कोष परिमाण दधि ले कर होम करना उचित है। लाज, पृथुक और शक्तु होममें एक मुट्ठी, गुड़ और शर्करा होममें चार तोला, इक्षु होममें एक पर्व ; पत्र, पुष्प और पिष्टक होममें एक एक द्वारा आहुति देनी होती है। कदलीफल और नागरङ्ग होममें भी एक एक आहुति देना कर्त्तव्य है। मातुलुङ्ग होममें एकका चौथाई भाग, पनस होममें दशवां भाग, नारिकेल होममें आठवां भाग, विल्वहोममें तीसरा भाग, कपित्थ होममें दो भागमें एक भाग, ककड़ी होममें तीसरा भाग तथा अन्यान्य फलहोममें एक एकको आहुति देनी होती है।

समिध् होममें दशांगुल परिमाण समिध् द्वारा, दूर्वा होममें तीन दूर्वा द्वारा, गुड़ूची होममें चार उंगली भर गुड़ूचीखण्ड द्वारा तथा धान्य, मूंग, उड़द और यव होममें एक एक मुट्ठी ले कर प्रत्येक बार आहुति देनी होती है। तण्डुलहोममें एक मुट्ठीका दशांश, कोद्रव, गोधूम और रक्तशालि होममें एक मुट्ठी, तिल और सर्षप होममें गण्डूष प्रमाण, लवणहोममें दो तोला, मरिच होममें २० मरिच द्वारा, गुग्गुल और वदरी होममें वदरी प्रमाण ; चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुङ्कुम होममें इमलीकी गुठलीके समान ले कर होम करे। होमकी वस्तु ऊपर कहे गये परिमाणमें ले कर होम करना होता है। इससे कम या बेशी करना उचित नहीं।

द्रव्यविशेष द्वारा होमकालमें अग्निका विभिन्न रूपमें ध्यान करना होता है। समिध द्वारा होमकालमें अग्निदेवको अवस्थित कर, आज्यहोममें सुला कर तथा अन्यान्य द्रव्य द्वारा होम करनेमें बैठा कर, उनकी चिन्ता करनी होती है। सभी होममें अग्निके मुंहमें आहुति देना आवश्यक है। होमकालमें यदि अग्निके कानमें आहुति दी जाय, तो होमकर्त्ताको व्याधि, नेत्रहोममें अन्धता, नासिकाहोममें मनःकष्ट तथा मस्तक पर आहुति देनेसे धनक्षय होता है। अग्निका जो भाग काष्ठमय होगा वही भाग अग्निका कर्ण, इसी प्रकार धूममय भाग नासिका, जिस भागमें अल्पज्वलन होता है, वह भाग चक्षु, जिस भागमें अङ्गार रहता है वह भाग मस्तक तथा जिस भागमें समुज्ज्वल शिखा रहती है, वही भाग अग्निकी जिह्वा है। होमके समय प्रज्वलित शिखा-भागमें होम करना उचित है।

होमकालमें अग्निके वर्ण और गंधादि द्वारा शुभाशुभका निरूपण करना होता है। होमकालमें अग्निका वर्ण सुवर्ण, सिन्दूर, बालार्क अथवा मधुकी तरह होनेसे, नागकेशर, चम्पक, पुन्नाग, पाटल, यूथिका, पद्म, इन्दीवर, कल्हार, घृत अथवा गुग्गलकी सी गंध होनेसे तथा शिखा दक्षिणावर्त्त, कम्पविहीन और छत्राकृति होनेसे यजमानका शुभ होता है। होमाग्निका धूम कुन्दपुष्प और इन्दुवत् धवल होनेसे शुभ होता है। कृष्णवर्ण होनेसे यजमानका अशुभ, अग्निका वर्ण शुभ्र होनेसे राज्यविनाश और होमकालमें अग्निसे काक या गर्दभकी तरह शब्द होनेसे जानना चाहिये, कि यजमानका अनिष्ट होगा। अग्निसे दुर्गन्ध निकलने पर यजमानको दुःख होता है। अग्निकी शिखा छिन्न या वृत्ताकार होनेसे यजमानका धनक्षय और मृत्यु, अग्निका धूम शुकपक्षीके पंख या कबूतरके रंग जैसा होनेसे यजमानके घोड़े, गाय-बैल आदि विनष्ट होते हैं। होमकालमें यदि ये सब दोष देखे जांय, तो उसका प्रतिविधान करना आवश्यक है। इसके

प्रतिविधानके लिये मूलमन्त्रसे २५ वार आहुति देनी चाहिये।

२ एक प्रकारका मन्त्रपूर्वक दान जो श्राद्धके समय किया जाता है। श्राद्धकालमें अन्नदानके पहले यह होम करना होता है। चावलमें घी मिला कर उस चावलसे श्राद्धमें जो ब्राह्मण आमन्त्रण किया जाता है या कुशका जो ब्राह्मण बनाया जाता है उसके आगे होनेवाले श्राद्धको होम कहते हैं। श्राद्ध शब्द देखो।

होमकाष्ठी (सं० स्त्री०) यज्ञकी अग्नि दहकानेकी फुंकनी।

होमकुण्ड (सं० क्ली०) होमरूप कुण्ड। वह कुंड या गड्ढा जिसमें होम किया जाता है। तन्त्रशास्त्रमें लिखा है, कि याग, यज्ञ और देवपूजादि स्थलमें पहले वेदी बनानी होती है। इसी वेदीके ऊपर कुण्ड बना कर होम करनेका विधान है। मण्डप बनानेमें पहले जमीनकी परीक्षा कर लेना आवश्यक है। मण्डप शब्द देखो। यथाविधान मण्डप बना कर वेदिकाके वहिर्भागकी भूमिको तीन भागोंमें विभक्त करे। मध्य भागमें सर्वतोभद्रादि मण्डल बना कर उसके आठ ओर ८ प्रकारके कुण्ड बनाने होते हैं। चतुरस्रकुण्ड, योनिकुण्ड, अर्द्धचन्द्रकुण्ड, त्र्यस्रकुण्ड, वर्त्तुलकुण्ड, षड्स्रकुण्ड, पद्मकुण्ड और अष्टास्रकुण्ड यही आठ प्रकारके कुण्ड कहे गये हैं। इनके अलावा ईशानकोण और पूर्वकी ओर आचार्यकुण्ड बनाना होता है।

इन सब कुंडोंमें चतुरस्रकुण्ड सर्वकार्यसिद्धिप्रद, योनिकुण्ड पुत्रप्रद, अर्द्धचन्द्रकुण्ड शुभकर और त्र्यस्रकुण्ड शत्रुनाशक माना गया है। शान्तिकर्ममें वर्त्तुलकुण्ड, छेदनकार्यमें षड्स्र और मारणकार्यमें पद्मकुण्ड प्रशस्त है। अष्टास्रकुण्ड वृष्टिप्रद और रोगनाशक है। शान्ति, पुष्टि और आरोग्यसाधन कर्ममें चतुरस्रकुण्ड, आकर्षण कर्ममें त्रिकोणकुण्ड, उच्चाटन और मारण कर्ममें वर्त्तुलकुण्ड शुभ है। पुष्टिकर्ममें उत्तरकी ओर, शांतिकर्ममें पश्चिमकी ओर, उच्चाटनमें वायुकोणमें और मारणकार्यमें पद्मकुण्ड प्रशस्त है। किसी किसीके मतसे ब्राह्मण चतुरस्रकुण्ड, क्षत्रिय वर्त्तुल, वैश्य अर्द्धचन्द्राकृति और शूद्र त्रिकोण कुण्ड बना कर उसमें होम करे। किसी किसीका कहना है कि चतुरस्रकुण्ड सभी वर्णोंके सभी कार्योंमें शुभ है।

कहीं कहीं ताम्रनिर्मित कुण्डमें होम करते देखा जाता है। परन्तु ताम्रकुण्डमें होम करनेका कोई विधान देखनेमें नहीं आता। होमीय ताम्रकुण्ड प्रायः चतुरस्र या चौकोन हुआ करता है।

हाथ भर लंबी चौड़ी जमीनमें सूता गिरा कर सम-चतुरस्रकुण्ड बनावे। इसी कुण्डको चतुरस्रकुण्ड कहते हैं। अन्यान्य कुण्डोंके लक्षण और विशेष विवरण तन्त्रसारमें लिखे हैं।

साधारणतः देखा जाता है, कि होमकुण्ड बना कर होम कार्य नहीं होता। वेदी या भूमिके ऊपर चतुरस्र, त्र्यस्र आदि अंकन कर उसीके ऊपर होम किया जाता है।

होमतुरङ्ग (सं० पु०) यज्ञीयाश्व, अश्वमेध यज्ञका घोड़ा।

होमदुह (सं० त्रि०) १ होमार्थ दुग्धदोहनकारी, होमके लिये दूध दूहनेवाला। २ होममें देने योग्य दुधारिन गाय।

होमधान्य (सं० क्ली०) तिल। घृतके साथ तिल मिला कर होम करना होता है।

होमधूम (सं० पु०) होमीयाग्नि-धूम। शास्त्रमें लिखा है, कि यह शरीरमें लगनेसे शरीर पवित्र होता है।

होमधेनु (सं० स्त्री०) होमसाधन धेनु, वह गाय जिसके घीसे होम होता है।

होमन् (सं० क्ली०) होम।

होमना (हिं० क्रि०) १ देवताके उद्देशसे अग्निमें डालना, हवन करना। २ उत्सर्ग करना, छोड़ देना। ३ नष्ट करना, बरबाद करना।

होमभस्म (सं० क्ली०) हुत द्रव्यजात भस्म। होममें जिन सबकी आहुति दी जाती है, उनके भस्म होनेसे जो चूर्ण बन जाता है उसीको होमभस्म कहते हैं। यह होमभस्म अत्यन्त पवित्र है। इस होमभस्म द्वारा तिलक लगाना होता है। त्रिपुण्ड्रकादि स्थलमें होमभस्म द्वारा ही करना होता है। इस होमभस्मको विभूति भी कहते हैं।

होमर—पाश्चात्य जगत्‌में सुपरिचित ग्रीक महाकवि। ग्रीस राज्यके सात नगर महाकविके जन्मस्थान बताये जाते हैं, इससे लोग उनसातोंका बड़ा सम्मान करते हैं। कहते हैं, कि ये स्मर्णा-नगरनिवासिनी पितृमातृहीना एक कुमारीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। मेलिस

नदीके किनारे उनका मकान था। इस कारण माताने पुत्रका नाम मेलिसिगेनिस रखा था। फिमियस नामक एक व्यक्ति उस नगरमें सङ्गीत-विद्यालय खोल कर लड़कोंको काव्य और साहित्य पढ़ाते थे। उन्होंने मेलिसिगेनिसकी माताके रूप पर आकृष्ट हो कर उससे फिर विवाह कर लिया और महाकवि होमरको दत्तक ले कर अपना उत्तराधिकारी बनाया।

फिमियसकी मृत्युके बाद होमर सङ्गीत-विद्यालयके अध्यक्ष और अध्यापक हुए। इस समय उनके हृदयमें 'इलियड' रचनाकी वासना जाग उठी। उस ग्रन्थमें लोकचरित्रका पूर्ण चित्र प्रतिफलित करनेकी इच्छासे वे देशाटनको निकले। पीछे स्वदेश लौटने पर स्मिर्णा-वासीने उनके प्रति दुर्व्यवहार करना आरम्भ कर दिया। प्रतिवासी द्वारा इस प्रकार सताये जाने पर वे जन्मभूमि को छोड़ किओस नगर चले गये। यहां भी उन्होंने विद्यालय खोल कर लोगोंको सङ्गीत और काव्य सिखाया था। बुढापा आने पर ही वे अंधे हुए और इसी कारण उन्हें भारी दारिद्र्यदुःख भोग करना पड़ा था। महाकवि अन्तिम जीवनमें स्वरचित कीर्त्तिगाथा गान करते हुए नगर नगरमें भिक्षार्थ घुमते फिरते थे। साइक्लेडिश-के अन्तर्गत आइउस नामक एक छोटे द्वीपमें इनका देहान्त हुआ। इलियड ग्रन्थमें आगामेमननके प्रति आकिलिसका प्रतिहिंसा ग्रहण, ट्रायनगरके अवरोधमें ग्रीकोंकी दुर्गति, आकिलिस द्वारा हेक्टरवध आदि विवरण चौबीसवें सर्गमें लिखा हुआ है।

होमरका दूसरा ग्रन्थ 'ओडेसी' है। इस महाकाव्य-में ग्रीकवीर इउलिसका ट्रायसे स्वदेशकी ओर इथाका-यात्राका विवरण है। इस ग्रन्थमें बहुतसे अभिनव, विचित्र और अनैसर्गिक घटनावली भी चित्रित हुई है। इलियड-वर्णित हेलना-हरणवृत्तान्त भारतीय महाकवि वाल्मीकि-विरचित रामायणके सीताहरण-प्रसङ्गके साथ मिलता जुलता है।

इसके सिवा 'वाक्ट्राकोर्णियो माकिया' या भेक-मूषिकयुद्ध नामक एक दूसरा काव्य भी इनका रचा हुआ मिलता है। इनके रचे हुए बहुतसे स्तोत्रगीत भी पाये जाते हैं।

होमरका आदि काव्य आइओनिय भाषामें रचा गया। पीछे उनका प्रायः सभी सभ्य यूरोपीय भाषामें अनुवाद हुआ है। पाश्चात्य जगत्‌वासी इन्होंको पाश्चात्य साहित्यके आदिकवि मानते हैं।

होमवत् (सं० त्रि०) होमयुक्त, होम करानेवाला, सात्त्विक ब्राह्मण।

होमाग्नि (सं० पु०) यज्ञवह्नि, होमकी आग। होमाग्नि विशेष पवित्र है, इसलिये इस अग्निमें कोई अपवित्र वस्तु नहीं जलानी चाहिये। होमाग्नि बुझाना भी मना है। होम समाप्त होने पर वह अग्नि आपे आप बुझ जायेगी।

होमि (सं० पु०) १ अग्नि, आग। २ घृत, घी। ३ जल, पानी।

होमिन् (सं० पु०) १ होमकर्त्ता। जुहोतीति हु (उत्यु-कर्दिहोमिनः। उण् ३।८४) इति मिनि निपातितश्च। २ यजमान।

होमियोपैथिक (अं० वि०) १ चिकित्साकी होमियोपैथी नामक पद्धतिके अनुसार। २ होमियोपैथोंके अनुसार चिकित्सा करनेवाला।

होमियोपैथी (अं० स्त्री०) पाश्चात्य चिकित्साका एक सिद्धान्त वा विधान जो हालमें निकाला गया है। इसमें विषोंकी अल्पसे अल्प मात्रा द्वारा रोग दूर किये जाते हैं।

इस सिद्धान्तके अनुसार कोई रोग उसी द्रव्यसे दूर होता है जिसके खानेसे स्वस्थ मनुष्यमें उस रोगके समान लक्षण प्रकट होते हैं। इसमें संखिया, कुचला आदि अनेक विषोंको स्पिरिटमें डाल कर उनकी मात्राको निरन्तर हलकी करते जाते हैं।

होमीय (सं० त्रि०) होम सम्बन्धीय, होमका।

होम्य (सं० क्ली०) १ घृत, घी। २ होमीय द्रव्य मात्र।

होर (हिं० वि०) ठहरा हुआ, चलनेसे रुका हुआ।

होरमा (हिं० पु०) एक प्रकारकी घास या चारा, सांवक।

होरसा (हिं० पु०) पत्थरकी गोल छोटी चौकी जिस पर चन्दन घिसते या रोटी बेलते हैं, चौका।

होरा (सं० स्त्री०) १ ज्योतिषोक्त लग्न। २ एक राशि या लग्नका आधा भाग। ज्योतिषशास्त्रमें लिखा है, कि राशि-

के दो भागमेंसे एक भागका नाम होरा है। मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ ये छः विषम राशिके हैं। इन छः विषम राशिके प्रथमार्द्धके पति रवि और द्वितोयार्द्धके पति चन्द्रमा हैं। वृष, कर्कट, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन ये छः समराशि हैं। इन समराशियोंके प्रथमार्द्धके अधिपति चन्द्रमा और द्वितीयार्द्धके रवि हैं। षड्वर्गगणनास्थलमें राशि, होरा, द्रेक्काण, त्रिंशांश आदि स्थिर कर फल निरूपण करना होता है। एक उदाहरण दिया जाता है—मेष राशि या लग्नका परिमाण ४।८।१६ (चार दण्ड, आठ पल और सोलह विपल) है, इस राशिको आधा करनेसे २।४।८ (दो दण्ड, चार पल और आठ विपल) होता है। अतएव २ दण्ड, ४ पल और ८ विपलकी एक होरा हुई। मेष विषम राशि है, इसलिये विषम राशिके प्रथमाधिपतिके अधिपति सूर्य हैं, जातकका यदि उसके प्रथमार्द्धमें जन्म हो, तो जानना चाहिये, कि सूर्यकी होरामें उसने जन्म लिया है तथा अन्तिमकी होरामें होनेसे चन्द्रमाकी होरा होती है। इसी प्रकार सम और विषम राशिकी होरा तथा उसका अधिपति स्थिर करना होता है।

३ होराज्ञापक शास्त्रभेद, होराशास्त्र। यह ज्योतिषग्रन्थ है। ४ एक अहोरात्रका २४वां भाग, ढाई घड़ीका समय। इसी शब्दसे अङ्गरेजी Hour हुआ है। ५ पिपीलिका, च्युंटो।

होरिल (हिं० पु०) नवजात बालक, नया पैदा लड़का।

होरिल मिश्र—एक प्रसिद्ध स्मार्त्त पण्डित। इन्होंने परमेश्वरीदासाब्धि या स्मृतिसंग्रहकी रचना की।

होरी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी बड़ी नाव जो जहाजों परका माल लादने और उतारनेके काममें आती है।

होल (हिं० पु०) पश्चिमी एशियासे आया हुआ एक पौधा। यह घोड़ों और चौपायोंके चारेके लिये लगाया जाता है।

होलक (सं० पु०) आगमें भुनी हुई चने, मटर आदिकी हरी फलियां, होरा। यह कुछ वायुजनक तथा मेद, कफ और मिलित त्रिदोषका शान्तिकारक है।

होलकर—इन्दोर-राजधानीमें सुप्रतिष्ठित एक मराठा राजवंश। इस राजवंशके आदिपुरुष दक्षिण-भारतमें प्रवाहित नीरानदीतटवर्ती हल नामक ग्राममें रहते थे। गोचारण और कृषिकर्म ही उनकी उपजीविका थी। हलनामक ग्राममें रहनेके कारण वे लोग आगे चल कर हल कर या होलकर कहलाये।

इस कृषकवंशके कुण्डजी होलकरके पुत्ररूपमें होलकरकुलोज्ज्वल मलहाररावने जन्मग्रहण किया। (करीब १६९३ ई०)

बचपनसे ही मलहारकी निर्भीकता और साहसिकताका यथेष्ट प्रमाण पाया गया था। जब ये बड़े हुए, तब घृणित गोचारणवृत्ति छोड़ कर महाराष्ट्रीय सरदार कदम बन्दके अधीन सैनिकका काम करने लगे। वह सेनाविभागमें विशेष पारदर्शिता और सुख्याति लाभ कर १७२४ ई०में ये पेशवा बाजीरावके अधीन ५ सौ सेनानायकके पद पर नियुक्त हुए। यहां उनकी प्रतिभा दिनों-दिन चमकने लगी। १७२८ ई०में वे मालवके शासनकर्त्ता नियुक्त हुए। यहीं पर १७६६ ई०को उनकी मृत्यु हुई। मलहाररावने विख्यात पानीपतकी लड़ाईमें उपस्थित रह कर अपनी आंखोंसे महाराष्ट्रशक्तिका अधः पतन देखा था। यहां उतना क्षतिग्रस्त न हो कर वे रणक्षेत्रसे अपने सेनादलको निरापद स्थानमें ले गये। इस युद्धमें माधोजी सिन्देके सेनादलको बुरी तरह हार हुई थी। मलहारराव देखो।

मल्हार रावकी मृत्युके बाद उनके पौत्र मालीराव मालवके सिंहासन पर बैठे। राज्यारोहणके नौ मास बाद मालीराव उन्मादरोगसे आक्रान्त हो इस लोकसे चल बसे। राज्यका कोई उत्तराधिकारी न रहनेके कारण मालीरावकी माता प्रथितयशा अहल्याबाईने अपने शशुरके अधिकृत राज्यका शासनभार अपने हाथ लिया। वे मलहाररावके अधीनस्थ तुकोजी होलकर नामक एक विश्वस्त कर्मचारीके ऊपर अपने सेनादलका परिचालन भार सौंप कर निश्चिन्त हुईं।

तुकोजी मल्हाररावके स्वजातिमात्र थे। उन दोनोंमें कोई सम्पर्क नहीं था, परन्तु तुकोजी सरदारने बड़ी विश्वस्तताके साथ उन पर जो कार्य्य सौंपा गया था, चलाया था। १७९५ ई०में अहल्याबाईकी मृत्यु हुई और तुकोजी होलकरने शासनभार ग्रहण किया। दुःखका

विषय है, कि उनके भाग्यमें भी राज्यसुख अधिक दिन बदा न था। उनकी मृत्युके बाद आपसकी लड़ाईसे होलकरशक्ति नष्ट हो गई। १८वीं सदीके शेष भागमें जो घर-झगड़ा शुरू हुआ उसने सारे महाराष्ट्र-समाजमें फैल कर महाराष्ट्रशक्तिको एकदम सामर्थ्यहीन बना दिया। अहल्याबाई और तुकोजी होलकर देखो।

इस समय तुकोजीके दूसरे पुत्र यशोवन्तराव अपने भुजबलसे राज्यमें शांति स्थापन करनेकी कोशिश कर रहे थे। १८०२ ई०में उन्होंने अपनी सेनावाहिनी ले कर सिन्दे और पेशवाकी परिचालित मराठा सेना पर हमला कर दिया और उन्हें परास्त कर मार भगाया। अनन्तर उन्होंने पेशवाको अपनी मुट्ठीमें करके सारी महाराष्ट्रशक्तिको एकके अधीन रखनेका इरादा किया; परन्तु इस समय पेशवाके साथ अङ्गरेज गवमेंटकी 'बसई-सन्धि' हो गई थी। उसके अनुसार यशोवन्त-रावको फिर पेशवाके विरुद्ध युद्ध करनेका साहस नहीं हुआ।

१८०३ ई०में सिन्देराज और बरारके राजा मिल कर अङ्गरेजोंके विरुद्ध खड़े हो गये। यशोवन्तराव होलकरने प्रतिज्ञा की थी, कि युद्धकालमें वे उन लोगोंके साथ मिल कर अङ्गरेजोंके विरुद्ध युद्ध करेंगे। परंतु जब युद्ध छिड़ गया, तब वे अपनी स्वभाव-सिद्ध कूटराजनैतिक बुद्धिके वशवर्त्ती हो रणक्षेत्रमें नहीं उतरे। वरन् वे अपना मतलब गांठनेके लिये अपनी सेना ले कर अलग ही खड़े रहे। उनका उद्देश्य था, कि यदि इस युद्धमें प्रभावशाली महाराष्ट्रशक्तिका विलोप हो जाय, तो विना विघ्नबाधाके उनकी धाक महाराष्ट्र-समाजके ऊपर जम सकती है।

परंतु उनका यह उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ। अङ्गरेजों और सिन्देराजके बीच सुर्जी-अञ्जनगाममें संधि हो गई। होलकरने जब देखा, कि उस संधिके बल उनका प्रभाव भी सोमाबद्ध हुआ है, तब वे किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गये। कुछ समय बाद वे अङ्गरेजोंके विरुद्ध युद्ध करके दलबलके साथ परास्त हुए तथा उनकी सारी सेना तितर बितर हो गई।

बलवान् शत्रुके सामने होलकर बहुत देर खड़ा न रह सके और वे शतद्रु प्रवाहित प्रदेशमें भाग गये। अंगरेज-सेनापति लार्ड लेकने उन्हें पकड़नेके लिये कोशिश की, पर वे पकड़ न सके। यहां आ कर यशोवन्त राव सिख-लोगोंके साथ मिल गये तथा उन्हें अंगरेजोंके विरुद्ध उसकाने लगे। दुःखका विषय है, कि इसमें वे काम-याब न हो सके। १८०५ ई०की २४वीं दिसम्बरको उन्हें बाध्य हो कर अंगरेजोंके अनुकूल एक संधि-पत्र पर हस्ताक्षर करना पड़ा। इस घटनाकी आलोचना करनेसे उनका दिमाग खराब हो गया और वे उन्मादरोग-ग्रस्त हो पड़े। इसी हालतमें १८११ ई०को उनका देहान्त हुआ।

यशोवन्तके मलहार राव होलकर नामक एक अवैध पत्नीसे उत्पन्न पुत्र था। मृत्यु-कालमें वह बालक नाबा-लिग रहनेके कारण उनकी माता तुलसीबाईने स्वयं शासन-भार अपने हाथ लिया। राजा बालक था और राज्य चलानेवाली रानी थी, इसलिये राज्यमें अशान्ति फैल गई। राज्यके नाना स्थानोंमें भी सामन्तोंका राष्ट्र-विप्लव आरम्भ हो गया। इसके फलसे होलकरके अधि-कृत अनेक देश हाथसे जाते रहे। षड़यन्त्रकारियोंने छिपके आ कर तुलसीबाईको बड़ी निष्ठुरतासे मार डाला।

१८१८ ई०की ६ठी जनवरीको माहिदपुरके युद्धमें होलकरकी सेना सम्पूर्णरूपसे परास्त हुई। उसके साथ मन्दशोरकी प्रस्तावित संधि-शर्त्तके अनुसार उदयपुर जयपुर आदि राजपूत राजाओंको होलकरके शासनसे मुक्त कर अंगरेजोंके अधीन लाया गया तथा कोटाके राजा जालिमसिंहने होलकरके अधिकृत चार जिले खजाना दे कर बंदोबस्त कर लिये। इस प्रकार सतपुरा शैलमालाके दक्षिण और उक्त शैलके मध्यवर्त्ती भूभागमें होलकरके अधिकृत स्थान दूसरोंके हाथ चले गये। जो कुछ होलकरके पास बच गया, वह भी अंगरेजगवमेंट-की देखरेखमें रहा।

१८३३ ई०के अक्तूबर मासमें २८ वर्षकी उमरमें मल-हार राव होलकर बिना कोई सन्तान छोड़ इस लोकसे चल बसे। पीछे मलहारकी विधवा पत्नी और माताने मार्त्तण्ड राव नामक एक ३।४ वर्षके स्वजातीय बालक-

को गोद लिया। १८३४ ई०की १३वीं जनवरीको वही बालक गद्दी पर बैठाया गया। मलहार रावकी माताने यही सोच कर एक छोटे बच्चेको गद्दी पर बैठाया था, कि यह बहुत दिनों तक अपने हाथसे राज-कार्य चला सकेगी। परन्तु उसका यह काम लोगोंको पसन्द नहीं आया। राज्यके पदस्थ और संभ्रान्त व्यक्तियोंने मृत राजाके ज्ञातिभ्राता हरि राव होलकरको सिंहासन पर बैठाना चाहा। इसके पहले ही राजनैतिक सुव्यवस्थाके लिये १८१६ ई०में हरिराव होलकरको कारागारमें बंद रखा गया था। राज्यके सम्भ्रान्त व्यक्तियों तथा उनके अनुगत हिताकांक्षियोंने मिल कर १८३४ ई०को २री फरवरीकी रातको बलपूर्वक हरिरावको कारामुक्त किया। पीछे प्रजामण्डली और सेना-दलके आग्रहसे वे ही राजा मनोनीत हुए।

राजपद कौन पावेगा, इस विषयकी मीमांसा करनेके लिये अंगरेज गवर्मेण्टने बीचमें पड़ना नहीं चाहा। फलतः दोनों ही दल अपनी अपनी शक्तिके अनुसार अपनी अपनी धाक जमाने लग गये। इस राष्ट्रविप्लवसे राज्य भरमें घोर अराजकता फैल गई।

अन्तमें मार्त्तण्ड रावके पक्षवालोंकी हार हुई। मार्त्तण्ड राव राज्यसे निकाल भगाये गये। उनके सिंहासनका दावा छोड़ देने पर दूसरे पक्षने उन्हें मासिक ५ सौ रुपयेकी वृत्ति स्थिर कर दी। १८३५ ई०की ८वीं सितम्बरको विपक्षियोंने नये महराज और उनके मन्त्रीको मार डालनेकी इच्छासे राजप्रासाद पर पुनः आक्रमण कर दिया। उन लोगोंका यह षड़यन्त्र पहलेसे ही मालूम था, इस कारण वे लोग आक्रमणकारी आततायियोंको दलबलके साथ संहार करनेमें समर्थ हुए।

१८४६ ई०में पूना शहरमें अपुत्रक मार्त्तण्ड राव होलकरका देहान्त हुआ। इसके बादसे ही विप्लवका अवसान हुआ। १८३५ ई०में जब हरिरावको मारनेके लिये षड़यन्त्रकारी अग्रसर हुए, तब उनकी ओरसे अंगरेज गवर्मेण्टसे सहायता मांगी गई थी, परन्तु अंगरेज-गवर्मेण्टने पहलेकी शर्तके अनुसार आभ्यन्तरिक विषयमें हस्तक्षेप करना नहीं चाहा।

१८४१ ई०में महाराज हरिरावने खण्डेराव नामक एक तेरह वर्षके बालकको अपना उत्तराधिकारी बनाया १८४३ ई०की २४वीं अक्तूबरको उनकी मृत्यु हुई। १८४४ ई०के फरवरी मासमें बालक-राज खण्डेराव भी इस लोकसे चल बसे। उनके अविवाहित और अपुत्रक अवस्थामें परलोकवासी होने पर राजप्रतिनिधि सर रावर्ट् हमिलटनने भाव होलकरके छोटे लड़केको तुकोजी राव होलकर नाम दे कर सिंहासन पर अभिषिक्त किया। इस समय अंगरेज गवर्मेण्टने N L XXO. ii संख्यक पत्र द्वारा सूचित किया कि तुकोजी राव इस पत्रके मर्मानुसार राज्यशासन करेंगे तथा वह पत्र सनदके समान समझा जायेगा।

नये राजा तुकोजी राव होलकरने १८३२ ई०में जन्म ग्रहण किया। १८४३ ई०में अंगरेजोंने उनके पक्षमें खड़े हो कर उन्हें सिंहासन पर बैठाया। १८५२ ई०में राजा तुकोजी बालिग हुए। राज्यशासन कार्यमें उनकी विशेष दक्षता और प्रजाके हितसाधनमें उनकी ऐकान्तिक कर्त्तव्यनिष्ठा देख कर अंगरेजोंने उनके हाथ राज्य भार सौंपा। अब वे इधर उधर पड़े हुए छोटे छोटे राज्योंको एक सीमामें लानेकी कोशिश करने लगे। उनके जमानेमें होलकरराजका अधिकार ८०७५ वर्ग मील स्थान तक फैल गया था। अङ्गरेजराजने उन्हें गोद लेनेका अधिकार दे कर एक सनद दी थी।

होलकर-कुलकेतु यशोवन्त रावने एक समय सारी महाराष्ट्र शक्तिका अधिनायकत्व ग्रहण करनेकी इच्छासे अपने सैन्यबलकी वृद्धि की। इस समय उनके प्रायः लाखसे अधिक वेतनभोगी पदातिक और ६० हजार घुड़सवार सेना थी। १३० बड़ी बड़ी कमान रणक्षेत्रमें उन्हें मदद पहुंचाती थी। इसके सिवा चांदोर और गलिनगढ़ नामक दो दुर्भेद्य दुर्ग उनके अधिकारमें रहनेसे उनकी राजशक्ति और भी बढ चली थी। क्योंकि उस समय होलकरका मुकाबला करनेवाला कोई भी नजर नहीं आता था। १८०४ ई०के फरवरीसे ले कर १८०५ ई०की २री अप्रिल तक अंगरेज सेनापति तथा देशी अन्यान्य राजे उनके विरुद्ध रणक्षेत्रमें खड़े हुए थे, परन्तु दुःखका विषय है, कि कोई भी उनकी इस विपुल बलशाली सेनावाहिनीके सामने ठहर न सके।

अभी इन्दौर नगरमें वर्त्तमान होलकरपति श्रीमान् महाराजाधिराज राजराजेश्वर सवाई श्री यशोवंत राव होलकर बहादुरके ५२५० पदातिक, ३३०० अश्वारोही, ३४० कमानवाही सेना और २४ कमान हैं।

महाराष्ट्र देखो।

होला (सं० स्त्री०) १ होलीका त्योहार। (पु०) २ सिखोंकी होली जो होलीके दूसरे दिन होती है। ३ आगमें भुनी हुई हरे चने या मटरकी कलियां। ४ चनेका हरा दाना।

होलाक (सं०पु०) स्वेद विशेष। आगकी गरमी पहुंचा कर पसीना लानेकी एक क्रिया।

चरकके सूत्रस्थानमें लिखा है, कि जिस पुरुषको स्वेद देना होगा, उस पुरुषकी शय्याके बराबर गाय या गदहे आदिकी विष्ठाकी एक धीतिका (सूखे और कच्चे गोबर आदिका बना हुआ लंबा गोल अग्न्याश्रय) बनावे। जब यह अच्छी तरह जल जायेगा धूआँ कुछ भी नहीं निकलेगा, तब उसके ऊपर खाट, पलंग आदि रख कर जिस पुरुषको स्वेद देना होगा उसे सुलावे। सुलानेके पहले उसका शरीर तेल आदिसे लिप्त और कपड़ेसे ढका होना चाहिये। इस प्रकार सुला कर जो स्वेद दिया जाता है उसीका नाम होलाकस्वेद है। यह उत्तम सुखजनक स्वेद है। स्वेद देखो।

होलाका (सं० स्त्री०) १ वसन्तोत्सव, होलीका त्योहार। २ फाल्गुनी पौर्णमासी। इस तिथिमें होलिका आचरण करना होता है, इसीसे इसका नाम होलिका हुआ है। यह पूर्णिमा तिथि सायाह्नव्यापिनी होनेसे उसी दिन इसका अनुष्ठान करना उचित है। उस दिन सायंकालमें पूजादि तथा पूर्वाह्न कालमें गौ आदिकी क्रीड़ा करे।

युक्तप्रदेशमें यह उत्सव विशेषरूपसे प्रचलित है। वहां इस पूर्णिमाके दिन भगवान् श्रीकृष्णके उद्देशसे दोलयात्रा होती है। दोलयात्रा शब्द देखो।

होलाकाधिकरण (सं० क्ली०) जैमिन्युक्त अधिकरणभेद। जैमिनिके प्रथमाध्यायके द्वितीय पादमें यह अधिकरण न्याय दिखलाया गया है।

होलाष्टक (सं० पु०) होलीके पहलेके आठ दिन जिनमें विवाहकृत्य नहीं किया जाता।

होलिका (सं० स्त्री०) १ होलीका त्योहार। २ लकड़ी घास फूल आदिका वह ढेर जो होलीके दिन जलाया जाता है। ३ एक राक्षसीका नाम।

होली (हिं० स्त्री०) १ हिन्दुओंका एक बड़ा त्योहार। विशेष विवरण दोलयात्रा शब्दमें देखो। २ एक प्रकारका गीत जो होलीके उत्सवमें गाया जाता है। ३ लकड़ी घास फूस आदिका ढेर जो होलीके दिन जलाया जाता है। ४ एक कंटीला झाड़ या पौधा।

होल्डर (अं० पु०) अङ्गरेजी कलमका वह हिस्सा जो हाथसे पकड़ा जाता है और जिसमें लिखनेकी निब या जीभ खोंसी जाती है।

होल्हना (हिं० क्रि०) धानके खेतमें घास पात दूर करनेके लिये हल चलाना।

होश (फा० पु०) १ बोध या ज्ञानकी वृत्ति, संज्ञा, चेतना। २ स्मरण, सुध। ३ बुद्धि, अक्ल।

होशमन्द (फा० पु०) बुद्धिमान, समझदार।

होशियार (फा० वि०) १ बुद्धिमान्, समझदार। २ दक्ष, निपुण। ३ सचेत, सावधान। ४ जिसने होश संभाला हो, सयाना। ५ चालाक, धूर्त्त।

होशियारपुर—पंजाबके जालंधर दोआबका एक जिला। यह अक्षा० ३०° ५९´ से ३२° ५´ उ० तथा देशा० ७५° ३०´ से ७६° ३८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २२४४ वर्गमील है। इसके उत्तर-पूर्वमें कांगड़ा जिला तथा बिलासपुर, उत्तर पश्चिममें वितस्ता नदी और गुरुदासपुर जिला, दक्षिण-पश्चिममें जालन्धर जिला और कपूरथला राज्य एवं दक्षिणमें शतद्रु नदी और अम्बाला जिला है। जिलेका सदर होशियारपुर है।

यह जिला पहाड़ी भूमि तथा समभूमिमें विभक्त है। दोनोंका रकवा समान होगा। शिवालिक पर्वत इस जिलेकी प्रधान शैलमाला है। दक्षिणांशमें यह पहाड़ क्रमशः बालू पहाड़के छोटे छोटे पहाड़ोंसे क्रमशः ऊंची नीची मालभूमिमें मिल गया है। यह ऊंची भूमि खेतीबारीके लायक बिलकुल नहीं है। शतद्रुके पास इस पर्वतमालाकी मध्यवर्त्ती स्थान ऊसर है, इस लिये यहां अच्छी फसल नहीं लगती है।

मुसलमानी आगमनके पहले यह जिला कतोचवंशीय

जालन्धरराजके अधीन था। जब यह राजपूतवंश अनेक शाखाओंमें विभक्त हो गया, तब होशियारपुर कतोचवंशी यशवान द्वारा और दितारपुर इसी राजवंशकी दूसरी शाखा द्वारा शासित होता था। मुसलमानोंके आगमनके बाद भी यहां उन लोगोंका शासन अव्याहत था। १७५९ ई०से सिख लोग होशियारपुर जिला जीतनेके लिये सेना भेजने लगे। अन्तमें पंजाब-केशरी रणजित् सिंहने इस पर दखल जमा ही लिया। इस जिलेका अधिकांश स्थान ही उनके अधीनस्थ छोटी छोटी जागीरोंमें विभक्त हो गया था।

१८४६ ई०में सिख-युद्धका अवसान होने पर यह जिला वृटिश गवमेंटके दखलमें आया। दितारपुर और यशवानके राज्यच्युत राजाओंको गवमेंटकी ओरसे मासिक वृत्ति मिलने लगी, परन्तु इस पर संतुष्ट न हो कर उन लोगोंने गवमेंटके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। युद्धमें वे सहजमें परास्त हुए। दितारपुरके राजा जगत्‌सिंहका ३० वर्ष गवमेंटकी वृत्ति भोगनेके बाद वाराणसीमें देहान्त हुआ। यशवानके राजा उमेदसिंहको भी वृत्ति मिली थी। परन्तु जब महारानी विक्टोरियाने भारतवर्षका शासनभार ग्रहण किया, तब उमेदसिंहके प्रपौत्रको पूर्व जागीर मिली।

इस जिलेमें १२ शहर और २११७ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या २ हजारसे ऊपर है। अधिवासियोंमेंसे अधिकांश जाट हैं। मुसलमानोंकी संख्या सैकड़े पीछे ३२ और सिख लोगोंकी ८ है। यहांकी भाषा पंजाबी है। विद्याशिक्षामें इस प्रान्तके २८ जिलोंमें इस जिलेका स्थान बारहवां पड़ता है। अभी कुल मिला कर १५ सिकेण्ड्री, १५० प्राइमरी, ८० एलिमेण्ट्री, ३ ऐङ्गलोवर्नाक्युलर हाई स्कूल, १ वर्नाक्युलर हाई स्कूल और ८ मिडिलस्कूल हैं। स्कूलके अलावा एक सिविल अस्पताल और १५ चिकित्सालय हैं।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० ३१° २१´से ३१° ५०´ उ० तथा देशा० ७५° ४०´से ७६° ७´ पू० के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५०८ वर्गमील और जनसंख्या ३ लाखके करीब है। इसमें होशियारपुर नामक एक शहर और करीब ५०० सौ ग्राम लगते हैं।

३ होशियारपुर जिलेका सदर और शासनकेन्द्र। यह अक्षा० ३१° ३२´ उ० तथा देशा० ७५° ५२´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या २० हजारके लगभग है। शायद १४वीं सदीमें यह शहर बसाया गया है। १८०९ ई०में रणजित्‌सिंहने इसे दखल कर यहां सेनानिवास स्थापित किया था। वृटिश गवमेंटने जब यह जिला वृटिश राज्यमें मिला लिया तब उस सेनानिवासमें उन्होंने कुछ सेना रखी थी। इसके बाद यह छोड़ दिया गया। शहरमें ३ हाई स्कूल और एक सिविल अस्पताल है।

होशियारी (फा० स्त्री०) १ समझदारी, बुद्धिमानी। २ दक्षता, निपुणता। ३ युक्ति, कौशल।

होसकोट—१ बङ्गलूर जिलेके अन्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा० १२° ५१´से १३° १५´ उ० तथा देशा० ७७° ३८´से ७७° ५९´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण २७२ वर्ग मील और जनसंख्या ८० हजारके करीब है। इसमें २ शहर और ३६५ ग्राम लगते हैं।

२ बङ्गलूर जिलेका एक शहर और होसकोट तालुकका सदर। यह अक्षा० १३° ४´ उ० तथा देशा० ७७° ४८´ पू०के मध्य पिनाकिनी नदीके बाएं किनारे बङ्गलूर शहरसे १८ मील उत्तरपूर्वमें अवस्थित है। यहांके सरदारने १५९५ ई०में इस नगरको बसाया। यहां एक बड़ा तालाब है। वर्षमें दो बार मेला लगता है। प्रत्येक मेलेमें प्रायः ५००० आदमी इकट्ठे होते हैं। १७६१ ई०में होसकोट हैदरअलीके यत्नसे महिसुर राज्यमें मिलाया गया।

होसगदी—मन्द्राज विभागके दक्षिण कनाड़ा जिलान्तर्गत एक गिरिसङ्कट। यह अक्षा० १३° ४०´ उ० तथा देशा० ७५° १´ पू०के मध्य बेदनूर तथा मालवाके उपकूल-पथ पर अवस्थित है। टीपू सुलतानके साथ जब युद्ध चल रहा था उस समय यह गिरिसङ्कट अनेक बार काममें आया था।

होसङ्गाबाद—मध्यप्रदेशके नर्मदा विभागका जिला। यह अक्षा० २१° ५३´से २२° ५९´ उ० तथा देशा० ७६° ४७´से ७८° ४४´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३६७६ वर्गमील है। इसके उत्तरमें भूपाल और सिन्दे राज्य, दक्षिणमें पश्चिम बेरार, बेतुल और छिन्दवाड़ा प्रदेश,

पूर्वमें नरसिंहपुर और पश्चिममें निमार जिला है। जिलेकी उत्तरी सीमामें नर्मदा नदी बहती है। यह नदी भूपाल, सिन्धेराज्य और होलकर राज्यसे इस जिलेके पृथक् करती है।

इस जिलेका इतिहास महाराष्ट्र-आक्रमणके पहलेका कुछ भी मालूम नहीं। मण्डलाके राजवंशसे यहांके चार गोंड़ राजाओंने अपनी उपाधि ली थी। होसङ्गावादका पूर्वांश इन्हीं लोगोंके अधीन था। मुगल-सम्राट् अकबरके समय हण्डियां होसङ्गावादका एक सरकार समझा जाता था। परन्तु जिलेका पूर्वांश अकबरके समयमें देशी स्वाधीन गोंडराजे शासन करते थे। १७२० ई०में भूपाल-राजवंशके प्रतिष्ठाताने होसङ्गावाद शहर अधिकार कर सिवनोसे तारा तकका भूभाग इसमें मिला दिया। १७४२ ई०में बालाजी बाजो राव यह उपत्यका अतिक्रम कर मण्डला पर चढ़ाई करते समय हण्डिया परगनेको अपने अधिकारमें लाये। आठ वर्षके बाद नागपुरके महाराष्ट्रराज रघुजी भोंसलेने भूपाल राज्यको छोड़ बाकी समूचे जिले पर दखल जमाया। इस समयसे तीन राजपरिवार इस जिलेके विभिन्न स्थानका शासन करने लगे। १७६५ ई०में भोंसलोंके साथ भूपालके राजाओंका विवाद खड़ा हुआ। भोंसलोंने होसङ्गावाद दखल किया। परन्तु अन्तमें उनलोगोंने जो राज्य बड़े कष्टसे पाया था, वह भूपाल-राजके पड़यन्त्रसे जाता रहा। भूपालके राजा महम्मद और भोंसलोंमें जब विवाद चल रहा था, उस समय इस जिलेमें जो अत्याचार हुआ था, वह अकथनीय है। प्रजा घर-द्वार छोड़ कर भाग गयी थी। पिण्डारियोंने आ कर समूचे जिलेको लूट लिया था। वृटिश-शासन सुप्रतिष्ठित होनेके बाद इस जिलेमें शान्ति विराजने लगी। १८६० ई०की संधि-शर्त्तके अनुसार होसङ्गावाद वृटिश साम्राज्यमें मिलाया गया। १८५७ के गदरमें यहां किसी प्रकारकी अराजकता नहीं दिखाई दी थी।

इस जिलेमें ६ शहर और १३३४ ग्राम लगते हैं जनसंख्या ४ लाखसे ऊपर है। अधिवासियोंमें गोंड़की संख्या ज्यादा है। जौ इस जिलेकी प्रधान उपज है। यहां रुई भी कम नहीं उपजती। जिले भरमें २ हाई स्कूल, ५ मिडिल इङ्गलिश और ७ मिडिल वर्नाक्युलर स्कूल, १२६ प्राइमरी स्कूल और ६-१० बालिका स्कूल हैं। स्कूलके अलावा १ अस्पताल भी है।

२ उक्त जिलेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २२° ४६´ उ० तथा देशा० ७७° ४४´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या १५ हजारके लगभग है। कहते हैं, कि मालवके घोरी-राजवंशीय होसङ्गशाहने इस शहरको बसाया था। उनका देहान्त यहीं हुआ और यहीं पर उनको लाश भी दफनाई गई। परंतु अन्तमें उनकी हड्डी माण्डूमें लाई गई थी। यहां की बांसकी बनी टहलनेकी छड़ी बड़ी अच्छी होती है। शहरमें एक हाई स्कूल तथा और भी अन्यान्य स्कूल हैं।

होसदुर्ग—१ महिसूर राज्यके चित्तलदुर्ग जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १३° ३५´ से १४° ५´ उ० तथा देशा० ७६° ६´ से ७६° ३४´ पू०के मध्य अवस्थित है। इसमें होसदुर्ग नामक एक शहर और २५२ ग्राम लगते हैं। वेदवती नदी तालुकके बीचसे हो कर बह गई है। यहां लोहे और तांबेका काम होता है।

२ चित्तलदुर्ग जिलेके अंतर्गत होसदुर्गका सदर। यह अक्षा० १३° ४८´ १०´´ उ० तथा देशा० ७६° २०´ पू०के मध्य विस्तृत है। १६७५ ई०में यहां एक दुर्ग बनाया गया था। उसी दुर्गके नामानुसार इस शहरका नामकरण हुआ है।

होसपेट—१ मंद्राजके बेलरी जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १५° ०´ से १५° २६´ उ० तथा देशा० ७६° १७´ से ७६° ४८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५४० वर्गमील और जनसंख्या लाखसे ऊपर है। इसमें होसपेट और कम्पली नामक दो शहर तथा १२१ ग्राम लगते हैं। ईख और धान यहांकी प्रधान उपज है।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १५° १६´ उ० तथा देशा० ७६° २४´ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या २० हजारके करीब है। कहते हैं, कि नागल देवीके सम्मानार्थ विजयनगरके राजा कृष्णदेवने १५०६-से १५२० ई०के अन्दर इस शहरको बसाया। शहरमें फौजदारी अदालत, स्कूल, डाकघर और दो सुन्दर मन्दिर है।

होसिटकभट्ट—कर्णावतंसकाव्यके प्रणेता।

होसूर—१ मन्द्राजके सलेम जिलेका उत्तरी तालुक। यह अक्षा० १२° ६' से १२° ५४' उ० तथा देशा० ७७° २१' से ७८° १६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १२१७ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः २ लाख है। तालुकका अधिक भाग जंगलसे ढका है। इसमें होसूर नामक १ शहर और १५० ग्राम लगते हैं।

२ उक्त तालुकका शहर। यह अक्षा० १२° ४४' उ० देशा० ७७° ५०' पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या ७ हजारके लगभग है। शहरमें स्कूल, पुलिसष्टेशन, तहसीलदार और मुन्शफी कचहरी तथा सब-कलकृरका सदर है। इसके ४ मील दक्षिण मत्तकेरी नामक स्थान से ही मन्द्राजकी घुड़सवार और गोलन्दाज सेना शिक्षित हो कर तमाम भेजी जाती है।

होहो (सं० अव्य) हुति, सम्बोधन, आह्वान।

हौंस (अ० स्त्री०) हौस देखो।

हौ (सं० अव्य०) १ सम्बोधन। २ आह्वान।

हौआ (हिं० पु०) लड़कोंको डरानेके लिये एक कल्पित भयानक वस्तुका नाम, हाऊ, भकाऊं।

हौका (हिं० पु०) १ मरभुखापन, खानेका गहरा लालच। २ तृष्णा, प्रबल लोभ।

हौज (अ० पु०) १ पानी जमा रहनेका चहबच्चा, कुंड। २ कटोरेके आकारका मिट्टीका बहुत बड़ा बरतन, नांद।

हौतभुज (सं० त्रि०) हुतभुज-अण्। १ नक्षत्रवर्ग। वृहत् संहितामें लिखा है—पुष्या, आग्नेय, विशाखा, भरणी पित्र, मज और भाग्यसंख्यक नक्षत्रमें हौतभुज वर्ग होता है।

अग्नि इनके अधिष्ठात्री देवता हैं, इसीसे इनको हौतभुज कहते हैं। २ अग्निसम्बन्धीय।

हौताशन (सं० त्रि०) हुताशन सम्बन्धीय।

हौतृक (सं० त्रि०) होतुरागतं (ऋतष्ठञ्। पा ४।३।७८ इति ठञ्। होतृसम्बन्धीय।

हौत्र (सं० पु०) यजमान।

हौत्र (सं० पु०) होताका भाव या कर्म।

हौत्रिक (सं० त्रि०) होताका उच्चारण सम्बंधीय।

हौद (अ० पु०) १ कुंड, बंधा हुआ बहुत छोटा जलाशय। २ कटोरेके आकारका मिट्टीका बहुत बड़ा बरतन। इसमें चौपाए खाते पीते हैं तथा रंगरेज, धोबी आदि कपड़े डुबाते हैं।

हौदा (फा० पु०) १ हाथीकी पीठ पर कसा जानेवाला आसन। इसके चारों ओर रोक रहती है और पीठ टिकानेके लिये गद्दी रहती है। २ कटोरेके आकारका मिट्टी पत्थर आदिका बहुत बड़ा बरतन। इसमें चौपाओंको चारा दिया जाता है।

हौम्य (सं० क्ली०) १ घृत, घी। (त्रि०) २ होमीय द्रव्ययुक्त, होमद्रव्य सम्बन्धीय।

हौम्यधान्य (सं० क्ली०) होमधान्य, तिल। इससे होम किया जाता है, इसीसे इसको होमधान्य कहते हैं।

हौरा (हिं० पु०) शोर, गुल।

हौल (अ० पु०) भय, डर।

हौलदिल (फा० स्त्री०) १ कलेजा धड़कना, दिलका धड़कन। २ दिल धड़कनेका रोग। (वि०) ३ जिसका दिल धड़कता हो। ४ दहसतमें पड़ा हुआ, डरा हुआ। ५ व्याकुल, घबराया हुआ।

हौलदिला (फा० वि०) डरपोक, बुजदिल।

हौलनाक (फा० वि०) भयानक, डरावना।

हौली (हिं० स्त्री०) वह स्थान जहां मद्य उतारता और बिकता है, आबकारी।

हौले (हिं० क्रि० वि०) १ मन्दगतिसे, धीरे। २ हलके हाथसे, जोरसे नहीं।

हौवा (अ० स्त्री०) पैगम्बरी मतोंके अनुसार सबसे पहली स्त्री जो पृथ्वी पर आदमके साथ उत्पन्न की गई और जो मनुष्य जातिकी आदिमाता मानी जाती है।

हौवीरपति—सिन्धुनदप्रवाहित पंजाबको एक सुप्रसिद्ध राजा। पाश्चात्य ऐतिहासिक दिओदोरसके मतसे रानी सेमिरामिस ई०सन्के पहले १२३५से १२२५के मध्य बहुत सी सेना ले कर सिन्धुनद पार कर गई और हौवीरपति पर चढ़ाई कर दी। सरस्वती और गङ्गा प्रवाहित देश पर्यन्त इन्हीं राजाके अधिकारभुक्त था। इन्हें हम लोग भागवतवर्णित सिन्धुसौवीरके पणिपति या उसी वंशके कोई अधिपति मानते हैं।

हौस (अ० स्त्री०) १ प्रबल इच्छा, चाह। २ हर्षोत्कंठा उमंग। ३ साहसपूर्ण, इच्छा, उत्साह।

हौसला (अ० पु०) १ किसी कामको करनेकी आनन्द-पूर्ण इच्छा, उत्कंठा । २ आनन्दपूर्ण साहस, उत्साह । ३ प्रफुल्लता, उमंग ।

हौसलामंद (फा० वि०) १ लालसा रखनेवाला । २ उमंगवाला, बढ़ी हुई तबीयतका । ३ उत्साही, साहसी ।

ह्यस (सं० अव्य०) गतदिन, कल ।

ह्यस्तन (सं० त्रि०) ह्योभवं ह्यस् (एषामोह्यश्वसोऽन्य-तरस्यां । पा ४।२।१०५) इति पक्षे ट्युट्युलौ । गतदिव-सीय, कलका ।

ह्यस्त्य (सं० त्रि०) ह्यस्तन, परदिवसीय ।

ह्यु एनसियं—हुयंसियं देखो ।

ह्योगोदोह (सं० पु०) गोदोहन करनेका पूर्वदिन ।

ह्रणिया (सं० स्त्री०) हिणीया, लज्जा ।

ह्रद (सं० पु०) १ बड़ा ताल, झील । जो जलभाग चारों ओर जमीनसे घिरा हो उसे ह्रद कहते हैं । ह्रदकी उत्पत्ति स्वभावतः होती है, कृत्रिम उपायसे ह्रद नहीं बनाया जाता । अंगरेजीमें इसे लेक कहते हैं । यह एक स्वाभाविक जलधाराके सिवा और कुछ भी नहीं है ; परन्तु जमीन पर जहां तहां जो जलकुंड दिखाई देता है, उसको ह्रद नहीं कहेंगे ।

साधारणतः नदीसे ही ह्रदकी उत्पत्ति होती है। नदीका स्रोत पर्वत-पृष्ठ परसे नीचे उतर कर जमीन पर जहां गहरा गड्ढा रहता है वहीं जमा हो जाता है और उस गड्ढेको भर देता है । पीछे वह जल एक दूसरे रास्तेसे निकल कर समुद्रकी ओर दौड़ता है । इस प्रकार जलके निकास होने पर भी यदि वह गड्ढा हमेशा भरा रहे तथा प्राकृतिक नियमसे वह वाष्पीभूत होनेके साथ ही साथ यदि पहाड़ी सोतोंके जलसे पूर्ण हो कर जलपृष्ठकी समता सम्पादन करनेमें समर्थ हो, तो उस जलखण्डको ह्रद कहेंगे ।

ह्रदकी इस प्रकार परिणति देखनेसे मालूम होता है, कि किसी एक नदीकी आकस्मिक जल-विस्तृति अथवा नदी नालाकी समष्टि या संयोगस्थल बहुत विस्तृत हो कर ह्रदाकारमें परिणत हो गया है और पीछे उससे फिर नदीकी भी उत्पत्ति हुई है।

लेक विक्टोरिया नयेञ्जा और अलवर्ट नयेञ्जासे नील नद, लेक टंगानिकासे कङ्गोनदी और नायेसा ह्रदसे जाम्बेजी नदीकी एक शाखा निकली है । फिर यनेसी नदीके जलसे मीठे जलसे भरे हुए वैकाल ह्रदकी उत्पत्ति हुई है। इसी प्रकार वलगा और अक्षु नदीके जलविस्तार-से लवणजलमय काम्पीय और अलसागर उत्पन्न हुआ है ।

ज्वालामुखी देशोंमें भी बहुतसे ह्रद देखे जाते हैं। कई जगह बुझे हुए आग्नेयगिरिके विस्तृत मुख-विवरमें जलराशिके संचित होनेसे ह्रदकी सृष्टि हुई है । फिर कहीं कहीं जमीनमेंसे आग निकलनेके बाद एक बहुत लंबाचौड़ा गड्ढा बन जाता है और पीछे यही ह्रदमें परिणत होता है। इटली, अजोरस और जर्मनीमें इस श्रेणीके अनेक ह्रद देखनेमें आते हैं।

समुद्रके किनारे बालूसे ढके हुए निम्न प्रदेशमें भी छोटे छोटे ह्रद देख पड़ते हैं। इन्हें अंगरेजीमें Lag-oons कहते हैं । समुद्रके किनारे तेज हवा चलनेसे बालू-का कहीं तो ढेर लग जाता और कहीं गड्ढा बन जाता है । उस गड्ढेमें ज्वार (Tide) का जल संचित होता है और पीछे वह धीरे धीरे छोटा ह्रद बन जाता है। वाल्टिक समुद्रके किनारे, वाल्टिक नदी और गारोन नदीके मुहाने पर ऐसी अनेक ह्रदमाला दिखाई देती है। कभी कभी समुद्रगर्भका कुछ अंश बालूचर या स्थल-भागसे धीरे धीरे संक्रान्त हो तथा पीछे उसको पूर्णरूप-से ग्रास कर ह्रद बना देता है। वङ्गोपसागरका चिलका-ह्रद इसका एक उदाहरण है ।

१८६६ ई०के प्रबल भूकम्पसे वङ्गालका पूर्वतन शिलं नगर जमीनमें धंस गया था जिससे वहां एक छोटा ह्रद बन गया है। आसमानसे बातें करनेवाला पहाड़ भी इसी प्रकार भूकम्पसे गिर पड़ता और वहां गड्ढा बन जाता है । पीछे जलराशिके सञ्चित हो जानेसे ह्रदकी उत्पत्ति हुआ करती है। मानसरोवर, रावण ह्रद आदि ह्रद हिमालय पहाड़की सबसे ऊंची चोटी पर अवस्थित है। कोकनूर ह्रदकी ऊंचाई समुद्रको तहसे १०५०० फुट है। दक्षिण अमेरिकाका टिटिकाका लेक समुद्रपृष्ठसे १२५०० फुट ऊंचेमें अवस्थित है ।

परीक्षा करनेसे मालूम हुआ है, कि वैकाल ह्रदका

गहराई ४०८० फुट और कास्पीय सागरकी ३६०० फुट है। ऐसा गहरा ह्रद कहीं भी नहीं देख पड़ता। वैकाल-की जलराशि समुद्रपृष्ठसे १३६० फुट ऊंची है तथा उसका तलदेश समुद्रसे २७२० फुट नीचा है।

डेडसो या मृतसागरकी गहराई १३०० फुट है। यह गहराई देख कर कोई कोई पण्डित डेडसीको लोहित-सागरगर्भका एक भाग मानते हैं। उनके मतसे मध्य-वर्त्ती देशभाग पूर्ण हो कर उसे अलग करता है। पास्केल आदिके मनीषिगण इस मतके पक्षपाती नहीं हैं।

वैद्यकशास्त्रके मतसे ह्रदके जलका गुण अग्निकर, मधुर, कफ और कफनाशक हैं।

२ किरण। ३ मेढा। ४ ध्वनि, आवाज। ५ सरोवर, तालाव।

ह्रदक (सं० त्रि०) ह्रद आकर्णणादित्वात् कन्। (पा ५।२।६४) ह्रदमें कुशल।

ह्रदग्रह (सं० पु०) ह्रदस्य ग्रहः। कुम्भीर, नाक नामक जन्तु।

ह्रदिन् (सं० त्रि०) ह्रदयुक्त, जलीय।

ह्रदिनी (सं० स्त्री०) १ नदी। २ विद्युत्, विजली।

ह्रदोदर (सं० पु०) दैत्यभेद।

ह्रद्य (सं० त्रि०) ह्रद-यत्। ह्रदभव, जो ह्रद या तालाव-में होता है।

ह्रसित (सं० त्रि०) छोटा किया हुआ, घटा हुआ।

ह्रसिमन् (सं० पु०) ह्रस्वस्य भावः (पृथादिभ्य इमनिज वा। पा ५।१।१२२) इति इमनिच् (स्थूलदूरयुवह्रस्वेति। पा ६।४।१५६) इति ह्रसादेश। ह्रस्वता, लघुता, क्षुद्रता।

ह्रसिष्ठ (सं० त्रि०) अतिशय ह्रस्व, वहुत छोटा।

ह्रस्व (सं० क्ली०) (सर्व्वनिघृष्वरिष्वेति। उण् १।१५) इत्यत्र ह्रसशब्दे वाहुलकात् वन्। १ परिमाणविशेष। २ गौरसुवर्ण शाक। ३ पुष्पकसीस, हीराकसीस। (पु० स्त्री०) ४ वामन, वौना। ५ दीर्घकी अपेक्षा कम खोंच कर बोला जानेवाला स्वर। जैसे,— अ, इ, क, कि, कु ह्रस्व वर्ण हैं और आ, ई, ऊ, का, की, कू दीर्घ। ६ ज्योतिषके मतानुसार मेष, वृष, कुम्भ और मीन इन चार राशियोंको ह्रस्वराशि कहते हैं। (ज्योतिस्तत्त्व) (त्रि०) ७ छोटा, जो वड़ा न हो। ८ नाटा, छोटे कदका। ९ कम, थोड़ा। १० नीचा। ११ तुच्छ, नाचीज।

ह्रस्वक (सं० पु०) १ ह्रस्व। २ पूग वृक्ष, सुपारीका पेड़।

ह्रस्वकन्द (सं० पु०) तैलसारु नामक प्रसिद्ध कन्द-विशेष।

ह्रस्वकर्कन्धु (सं० स्त्री०) वनवदर, जंगली वेर।

ह्रस्वकर्ण (सं० पु०) १ राक्षस। (रामा० ५।१२।१३) (त्रि०) २ ह्रस्वकर्णविशिष्ट, छोटे कानवाला। वृहत्सं-हितामें लिखा है, कि जिसके छोटे कान होते हैं, वह कृपण होता है।

ह्रस्वकुश (सं० पु०) श्वेतकुश, सफेद दाभ।

ह्रस्वगर्भ (सं० पु०) कुश।

ह्रस्वगवेधुका (सं० स्त्री०) गाङ्गेरुकी, गोरख इमली।

ह्रस्वजम्बु (सं० पु०) क्षुद्र जम्बु, छोटा जामुन।

ह्रस्वजातरोग (सं० पु०) ह्रस्वजात्य देखो।

ह्रस्वजात्य (सं० पु०) आंखका एक रोग। इस रोगमें दिनके समय वड़ी वस्तु भी छोटी दिखाई देती है तथा रातके समय वस्तुका प्रकृत प्रमाण देखनेमें आता है। इसे ह्रस्वदृष्टि भी कहते हैं। यह रोग होने पर वड़ी सावधानीसे सुविज्ञ चिकित्सक द्वारा चिकित्सा करानी चाहिये। नेत्ररोग शब्द देखो।

ह्रस्वतण्डुल (सं० पु०) राजान्न, राजभोग धान।

ह्रस्वता (सं० स्त्री०) अल्पता, लघुता, छोटाई, छोटापन।

ह्रस्वत्रिफला (सं० त्रि०) वैद्यकोक्त गम्भारी फल, खजूर और फालसा।

ह्रस्वदर्भ (सं० पु०) श्वेत कुश।

ह्रस्वदा (सं० स्त्री०) शल्लकी वृक्ष, सलईका पेड़।

ह्रस्वपञ्चमूल (सं० क्ली०) वैद्यकोक्त वृहती; वृहती, कण्ट-कारी, पृश्निपर्णि, शालपर्णि, ये सब द्रव्य। इसका गुण— लघु, वलकर, स्वादु, पित्त और वायुनाशक, नात्युष्ण, वृंहण, ग्राहक, ज्वर, श्वास और अश्मरीरोगनाशक।

ह्रस्वपत्रक (सं० पु०) गिरिजमधुकवृक्ष, पहाड़ी महुआ।

ह्रस्वपत्रिका (सं० स्त्री०) अश्वत्थिका, पिपली।

ह्रस्वपर्ण (सं० पु०) ह्रस्वप्लक्ष वृक्ष, पाकरका पेड़।

ह्रस्वपर्व्वन् (सं० पु०) कृष्ण इक्षु, काला गन्ना। यह ईख वहुत लंबी होती है।

ह्रस्वपुष्प (सं० पु०) जलमधुक, जलमहुआ।

ह्रस्वप्लक्ष (सं० पु०) क्षुद्र प्लक्ष वृक्ष, पाकरका पेड़। गुण—कटु, कषाय, शिशिर, त्रिदोषनाशक, विशेषतः मूर्च्छा, भ्रम और प्रलापनाशक। (राजनि०)

ह्रस्वफल (सं० पु०) १ मधुर नारिकेल, खजूर या छुहारा। २ छोटा फल। (त्रि०) ३ क्षुद्र फलयुक्त, जिसमें छोटे छोटे फल लगते हैं।

ह्रस्वफला (सं० स्त्री०) भूमिजम्बू, छोटी जातिकी जामुन जो नदियोंके किनारे होती है।

ह्रस्वबाहु (सं० त्रि०) क्षुद्रबाहु, छोटा हाथ।

ह्रस्वमूल (सं० पु०) १ कृष्ण इक्षु, काला गन्ना। २ रक्त इक्षु, लाल गन्ना।

ह्रस्वमूला (सं० स्त्री०) उष्ट्रकाण्डी क्षुप, ऊंटकटरा।

ह्रस्वरोमन् (सं० पु०) विदेहराजभेद, स्वर्णरोमके पुत्र।

ह्रस्ववृक्ष (सं० पु०) १ कुश। २ क्षुद्र वृक्ष, छोटा पेड़।

ह्रस्वशाखाशिफ (सं० पु०) क्षुप, झाड़ी।

ह्रस्वशिग्रुक (सं० पु०) छोटा सहिंजनका पेड़।

ह्रस्वा (सं० स्त्री०) ह्रस्व-टाप्। १ मुद्गपर्णी, वनमूंग। २ नागबला, गुलसकरी। ३ श्वेत अपराजिता। ४ भूमिजम्बु, छोटी जातिकी जामुन जो नदियोंके किनारे होती है। ५ चित्रक वृक्ष, चिता।

ह्रस्वाग्नि (सं० पु०) अर्कवृक्ष, आकका पौधा।

ह्रस्वाङ्ग (सं० पु०) १ जीवकौषध, जीवक नामका पौधा। २ ऋषभक, लहसुनकी तरहकी एक ओषधि। (त्रि०) ३ नाटा, ठेंगना।

ह्राद (सं० पु०) ह्रद-घञ्। १ शब्द, ध्वनि। २ अव्यक्त ध्वनि। ३ वाद्यादिका शब्द; बाजे आदिका शब्द। ४ हिरण्यकशिपुके एक पुत्रका नाम, प्रह्लादका भाई। हिरण्यकशिपु देखो। ५ एक नागका नाम। ६ मेघगर्जन, बादलकी गरज। (त्रि०) ७ शब्दकारक, गर्जन करनेवाला

ह्रादक (सं० त्रि०) ह्रादे कुशलः (आकर्षादिभ्यः कन्। पा ५।२।६४) इति कन्। शब्दविषयमें कुशल।

ह्रादिन् (सं० त्रि०) १ आह्लादयुक्त, प्रसन्न। २ अव्यक्त ध्वनिविशिष्ट।

ह्रादिनी (सं० स्त्री०) ह्राद-णिनि-ङीष्। १ विद्युत्, बिजली। २ नदी। ३ शल्लकी वृक्ष, सलईका पेड़।

ह्रादुनि (सं० स्त्री०) विद्युत, बिजली।

ह्रादुनीवृत् (सं० त्रि०) अशनि या विद्युत्प्रवर्त्तक।

ह्रास (सं० पु०) ह्रस-घञ्। १ शब्द, आवाज। २ क्षीणता, कमी, घटती। ३ शक्ति, वैभव गुण आदिकी कमी।

ह्रासन (सं० क्ली०) ह्रास-ल्युट्। १ शब्द, आवाज। २ ह्रास, घटाना।

ह्रास्व (सं० क्ली०) ह्रस्वस्य भावः (पृथ्वादिभ्योष्य् वा। पा ५।१।१२२ वृत्ति) इति अण्। ह्रस्वका भाव, ह्रस्वता, कमती, घटती।

ह्रिणीया (सं० स्त्री०) ह्रिणी-यक् भावे अ-टाप्। लज्जा, शरम।

ह्रिति (सं० स्त्री०) हृति, हरण।

ह्री (सं० स्त्री०) १ लज्जा, शरम। २ दक्ष प्रजापतिकी कन्या जो धर्मकी पत्नी मानी जाती है।

ह्रीक (सं० पु०) नेवला।

ह्रीका (सं० स्त्री०) ह्री (ह्रियेः रच। उण् ३।४८) इति कन् टाप्। १ त्रास, डर। २ लज्जा, हया।

ह्रीकु (सं० त्रि०) ह्री (ह्रियः कुक् रच। उण् ३।८५) इति कुक्। १ लज्जित, लजीला। (पु०) २ विड़ाल, बिल्ली। ३ लाह, लाख। ४ वङ्ग, रांगा।

ह्रीजित (सं० त्रि०) लज्जाशील, लजीला।

ह्रीण (सं० त्रि०) लज्जित, शरमिंदा।

ह्रीत (सं० त्रि०) लज्जित, लजाया हुआ।

ह्रीतमुख (सं० त्रि०) लज्जितमुखविशिष्ट, लजीला मुंहवाला।

ह्रीतमुखिन् (सं० त्रि०) सलज्जामुखयुक्त, शरमिंदा मुंहवाला।

ह्रीति (सं० स्त्री०) ह्री-क्तिन्। लज्जा, शरम।

ह्रीम् (सं० अव्य०) तन्त्रोक्त बीजमन्त्रविशेष, दुर्गादेवीका बीजमन्त्र। दुर्गापूजामें इस मन्त्रसे पूजा करनी होती है।

ह्रीमत् (सं० त्रि०) लज्जायुक्त, हयादार।

ह्रीमत्त्व (सं० क्ली०) ह्रीमान्का भाव या धर्म, लज्जा।

ह्रीमान् (हिं० वि०) १ लज्जाशील, शर्मदार। (पु०) २ विश्वेदेवामेंसे एक।

ह्रीमूढ़ (सं० त्रि०) लज्जासे घबराया हुआ, लाजसे दबा हुआ।

ह्रीवेर (सं० क्ली०) सुगन्ध द्रव्यविशेष, (Pavonia odorata)

सुगंधवाला। इसे महाराष्ट्रमें सुगन्धवालाऔर कलिङ्ग-में करम्वाल कहते हैं। गुण—छर्दि, हृल्लास, तृष्णा और अतिसाररोगनाशक।

ह्रीवेरादिपाचन (सं० क्ली०) ज्वरातीसारोक पाचन-भेद। (भैषज्यरत्ना०)

ह्रीवेराद्यतैल (सं० क्ली०) रक्तपित्तरोगाधिकारोक तैलौषधविशेष। बनानेका तरोका—तिलतैल ४ सेर, लाहका काढ़ा १६ सेर, दूध १सेर। कल्कार्थ सुगंधवाला, खसकी जड़, लोध, पद्मकेशर, तेजपत्र, नागेश्वर, बेलसोंठ, नागरमोथा, कचूर, लाल चन्दन, आकनादि, इन्द्रयव, कूटजकी छाल, त्रिफला, सोंठ, वहेड़ेकी छाल, आमकी गुठली और लाल कमलका मूल प्रत्येक २ तोला। इन सव कल्क द्वारा तैलपाकके विधानानुसार यह तैल पाक करे। इस तेलकी मालिश करनेसे रक्तपित्त, खांसी और उरःक्षतरोगकी शान्ति तथा बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है।

ह्रीवेल (सं० पु०) ह्रीवेर पृषोदरादित्वात् रस्य लः, पक्षे स्वार्थे कन्। ह्रीवेर देखो।

ह्रीवेलक (सं० पु०) ह्रीवेल देखो।

ह्रुत (सं० स्त्री०) हिंसक, हिंसाकारी। (ऋक् ६।४।५)

ह्रुम् (सं० अव्य०) तन्त्रोक्त वीजमन्त्रविशेष। ह्राम, ह्रीम् ह्रुम, इत्यादि वीजमन्त्रसे षड़ङ्गन्यास करना होता है।

ह्रेषा (सं० स्त्री०) अश्वध्वनि, घोड़ेकी हिनहिनाहट।

ह्रेषाण (सं० क्ली०) गमन, गति।

ह्रेषिन् (सं० त्रि०) ह्रेषारवयुक्त,

ह्रौम (सं० अव्य०) तन्त्रोक्त वोजमन्त्रविशेष।

ह्राद (सं० पु०) ह्रद-घञ्। १ आनंद, खुशी। २ हिरणकशिपुके एक पुत्रका नाम। (विष्णुपु० १।५। अ०)

ह्रादक (सं० त्रि०) ह्राद-ण्वुल्। १ आह्लादक, खुश करनेवाला। ह्रादे कुशल कन् (पा ५।२।६४) २ आह्लाद विषयमें कुशल।

ह्रादन (सं० क्ली०) ह्राद-ल्युट्। १ आह्लाद, खुशी। (पु०) २ शिव, महादेव।

ह्रादिका (सं० स्त्री०) आह्लादयित्री, प्रसन्न करनेवाली।

ह्रादिकावत् (सं० त्रि०) आह्लादजनक वस्तुविशिष्ट, प्रसन्न करनेवाली वस्तुसे युक्त। (ऋक् १०।१५।१४)

ह्रादिन् (सं० त्रि०) ह्रदि-णिनि। आह्लादविशिष्ट, आनन्दयुक्त।

ह्लादिनी (सं० स्त्री०) ह्लादिन्-ङीप्। १ ईश्वरकी एक शक्ति। शक्ति देखो। २ एक नदीका नाम। आर्य देखो। ३ बिजली, वज्र। ४ धूपका पौधा।

ह्लादुक (सं० त्रि०) आह्लादयुक्त, प्रसन्न, खुश।

ह्लादुकावत् (सं० त्रि०) ह्लादिकावत्, आह्लाजनक, आनंदित करनेवाला।

ह्लादुनि (सं० स्त्री०) ह्रादुनि, बिजली।

ह्लीक (सं० स्त्री०) ह्लीक। ह्लीक देखो।

ह्लीका (सं० स्त्री०) ह्ली लज्जायां (ह्लियोरश्च लो वा। उणा् ३।४८) इति कन्, रस्य लः। लज्जा, शरम।

ह्लीकु (सं० स्त्री०) १ जतु, लाह। २ त्रपु, रांगा, सोसा। (त्रि०) ३ लज्जित, शर्ममें पड़ा हुआ।

ह्लेषा (सं० स्त्री०) ह्रेषा, घोड़ोंकी हिनहिनाहट।

ह्वलन (सं० पु०) इधर उधर झुकना या गिरना पड़ना, थहराना।

ह्वातव्य (सं० त्रि०) ह्वा तव्य। आह्वानयोग्य, बुलानेलायक।

ह्वातृ (सं० त्रि०) ह्वे-तृच्। आह्वानकारक, बुलानेवाला।

ह्वान (सं० क्ली०) ह्वे-ल्युट्। आह्वान, बुलावा।

ह्वार (सं० पु०) कुटिल। "वातचोदितो ह्वारो न" (ऋक १।१४१।७) 'ह्वारः' कुटिलः' (सायण)

ह्वार्य (सं० त्रि०) ह्वा ण्यत्। कुटिलगामी, वक्रगामी। "पुत्रो न ह्वार्याणां" (ऋक् ५।९।४)

ह्विप (अं० पु०) १ पार्लमेण्ट या व्यवस्थापिका सभाका एक सदस्य। यह अपनी पार्टी या दलके सदस्योंको किसी महत्त्वके प्रश्न पर वोट या मत लिये जानेके समय सभामें अधिकाधिक संख्यामें उपस्थित कराता है। २ चाबुक। ३ कोचवान।

ह्विस्की (अं० स्त्री०) एक प्रकारकी अंगरेजी शराब।

ह्वेल (अं० पु०) एक बहुत बड़ा समुद्री जन्तु तिमि शब्द देखो।

समाप्त

